CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी के मंदिर और मूर्तियाँ

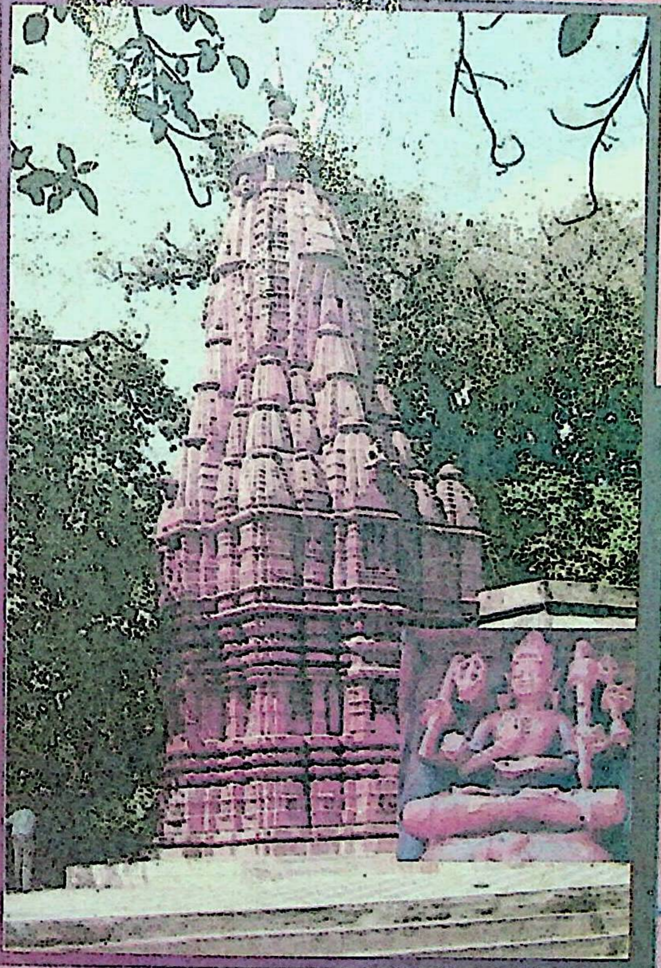

सर्वेक्षण एवं लेखन
डॉ. कमल गिरि
डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी
डॉ. विजय प्रकाश सिंह

जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

8.3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी के मंदिर और मूर्तियां

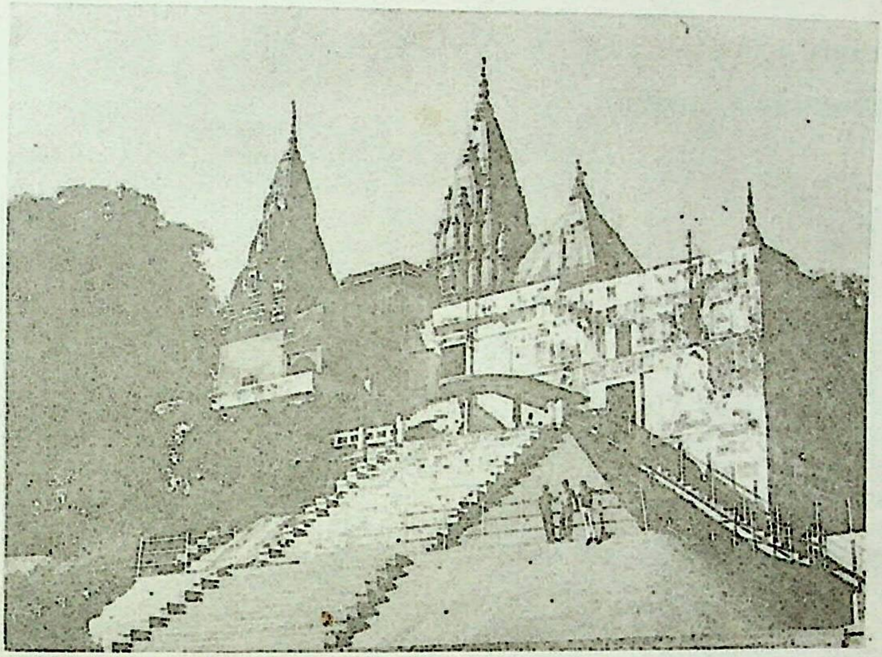

सर्वेक्षण एवं लेखन

डॉ. कमल गिरि डॉ. मारुतिनन्दन तिवारी

डॉ. विजय प्रकाश सिंह

जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी

संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी के मन्दिर और मूर्तियां

संयोजन एवम् प्रकाशन

जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी

सर्वेक्षण एवम् लेखन

डा. कमल गिरि

डा. मारुतिनन्दन तिवारी

डा. विजय प्रकाश सिंह

कम्पोजिंग

एवम्

प्रकाशन सहयोग

कल्पनाकार

पब्लिसिटी सेन्टर, वाराणसी

स्वत्वाधिकार

जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी

मुद्रक: रत्ना ऑफसैट्स लिमिटेड, कमच्छा, वाराणसी-10

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आमुख

वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्व सेविता।
प्रविष्टा त्रिपथा गंगा तस्मिन् क्षेत्रे ममप्रिये।।

मत्स्यपुराण १०३.६-७

विद्या, धर्म और संस्कृति की केन्द्रस्थली काशी विश्व की प्राचीनतम सांस्कृतिक नगरियों में से एक है। बुद्ध की उपदेशस्थली, जैन तीर्थंकर महावीर की धमदिशनास्थली तथा सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ जैन तीर्थंकरों की जन्मस्थली होने के साथ ही काशी रामानन्द, शंकराचार्य, कबीर, रैदास, तुलसीदास, विवेकानन्द, डॉ. भगवान दास, पं. गोपीनाथ कविराज, ठाकुर जयदेव सिंह जैसे महान चिन्तकों एवं आचार्यों और जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहित्यकारों की कर्मभूमि भी रही है। सांस्कृतिक चेतना के निर्वाध प्रवाह और धार्मिक तथा सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से इस नगरी का विश्व की अन्य किसी भी प्राचीन नगरी से अधिक महत्व रहा हे। राजनीतिक उतार - चढ़ाव काशी की संस्कृति की मूलधारा को प्रभावित करने में असमर्थ रहा है। जहां देश के अन्य नगर कालानुसार परिवर्तनों से प्रभावित होकर अपनी मूलधारा का परित्याग करते रहे वहीं काशी ने परिवर्तनों एवं समन्वय के साथ अपनी सांस्कृतिक मूलधारा का अस्तित्व बनाये रखा। यही कारण है कि आज के आधुनिक दौर में भी इस नगरी की प्राचीन और पारम्परिक विरासत संस्कृति के विविध आयामों में देखने को मिलती है, चाहे वह विद्या हो, धर्म हो, संगीत हो, साहित्य हो, कला हो अथवा खान - पान और रहन -सहन हो।

धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्य की दृष्टि से समृद्ध इस नगरी में कला का विशेष स्थान रहा है। काशी से प्राप्त पुरातात्त्विक अवशेष इसके प्रमाण हैं। ई. पू. की शताब्दियों से लेकर १९वीं -२० वीं शती तक के कला सामग्रियों के उपलब्ध उदाहरण इस नगरी के अतीत को उजागर करते हैं। प्रस्तरकला, मृण्कला, चित्रकला, वास्तुकला, धातुकला के ये उदाहरण संग्रहालयों की शोभा बने हुए हैं, या वर्तमान में नगर की गलियों, घाटों, मंदिरों, हवेलियों, रईसों के निवासों में अपने गौरव को समेटे, कुछ सुरक्षित और कुछ असुरक्षित, अपनी गाथा कह रहे हैं। कला के क्षेत्र में सदा से इस नगर के शिल्पियों ने विविध विशेषताओं को ग्रहण करके उसे एक नया आयाम देने की चेष्टा की है। ई. पू. की शताब्दियों से लेकर वर्तमान तक की एक लम्बी यात्रा में यह नगर कला और शिल्प के विविध मोड़ों से गुजरा है जिसके उदाहरण मुख्यरूप से राजघाट, सारनाथ, कंदवा तथा काशी के अन्य क्षेत्रों से मिले हैं।

मौर्य और गुप्त - काल में एक प्रमुख कलाकेन्द्र के रूप में काशी का महत्व सर्वविदित है। मंदिर और मूर्ति निर्माण की परम्परा अविच्छिन्न रूप से बाद की शताब्दियों में भी मिलती है जिसके प्रभूत उदाहरण सातवीं से १३वीं शती के बीच नगर के विभिन्न क्षेत्रों से मिलते हैं। मौखरी, पाल, प्रतिहार, चन्देल और कल्चुरी वंश के शासकों का काशी से संबंध सर्वज्ञात है। गहड़वालों (११वीं - १२ वीं शती) के समय तो काशी को विशेष प्रतिष्ठा मिली जिनके शासनकाल में नगर में अनेक मंदिरों और मूर्तियों का निर्माण हुआ। दुर्भाग्यवश कालान्तर में काशी के मंदिरों और मूर्तियों को इतिहास की विसंगतियों का शिकार होना पड़ा। यही कारण है कि वर्तमान में कंदवा के कर्दमेश्वर मंदिर के अतिरिक्त अन्य किसी प्राचीन मंदिर के सुरक्षित उदाहरण उपलब्ध नहीं हैं।

१८ वीं से २० वीं शती के मध्य का काल काशी के धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था। इस अवधि में काशी के विश्व प्रसिद्ध घाटों और उनके किनारे तथा नगर के विभिन्न क्षेत्रों में एक बड़ी संख्या में मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। इन मंदिरों, मूर्तियों तथा घाटों के निर्माण में लगभग सम्पूर्ण भारतवर्ष के शासक वर्गों एवं समृद्धजनों का सहयोग रहा है। इस प्रकार ये अवशेष सांस्कृतिक दृष्टि से पूरे भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। १८ वीं से २० वीं शती के मंदिरों में स्थापत्य एवं शिल्प की विविध शैलियां द्रष्टव्य हैं। सम्मुख योजना में पीठ या जगती पर निर्मित मंदिरों में उत्तर भारतीय मंदिरों के समान अधिष्ठान, मण्डोवर या जंघा, वरण्डिका और आमलक एवं कलश तथा शीर्षस्थ भाग में त्रिशूल या चक्र से युक्त शिखर देखे जा सकते हैं। काशी के मंदिरों की शिखर योजना में अंगशिखरों की योजना की विविधता विशेषतः द्रष्टव्य है।

१८ वीं से २० वीं शती के कुछ मुख्य मंदिरों में भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर (१८वीं - १९वीं शती), आदिकेशव स्थित आदिकेशव मंदिर समूह (१८ वीं - १९ वीं शती का उतरार्द्ध), ललिताघाट स्थित समराजेश्वर महादेव मंदिर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(काष्ठ निर्मित नेपाली मंदिर - १८४३ ई.), काशी विश्वनाथ मंदिर (काशी विश्वेश्वर- १७७५ - ८० ई.), रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर (सुमेरु मंदिर - लगभग १८०० ई.), मणिकर्णिकाघाट स्थित अमेठी शिव मंदिर (१९ वीं शती) और विश्वनाथगली स्थित रामेश्वर मंदिर (१९ वीं शती) विशेष उल्लेखनीय हैं। काशी प्रधानतः शिव की नगरी रही है, इसी कारण यहां के अधिकांश मंदिर शिव को समर्पित हैं। मंदिरों के गर्भगृहों में मूलस्थान तो शिवलिंग को ही प्राप्त हुआ है किन्तु मंदिरों की चारों ओर की भित्तियों पर क्रमशः शक्ति, विष्णु, सूर्य एवं गणेश की भी मूर्तियां उकेरी गईं। पंचायतन - पूजन के अन्तर्गत आने वाली इन देवमूर्तियों का उकेरन काशी में पंचायतन या पंचदेव - पूजन की परम्परा और समन्वयात्मक धार्मिक आस्था का साक्षी है। यही नहीं साम्प्रदायिक ऐक्य का भाव अभिव्यक्त करने वाली प्राचीन मूर्तियों के अन्तर्गत अर्धनारीश्वर, हरिहर, हरिहरपितामह, हरिहरहिरण्यगर्भ मूर्तियों के उदाहरण भी यहां उपलब्ध हैं।

१८ वीं से २० वीं शती के मध्य के इन मंदिरों से प्रतिमालक्षण की दृष्टि से अनेक दुर्लभ मूर्तियां मिली हैं। इनके कुछ विरल उदाहरण हैं :- समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर) की काम संबंधी मूर्तियां एवं १८ हाथों वाली महिषमर्दिनी तथा विविध लक्षणों वाली भैरव एवं सप्तमातृका मूर्तियां, लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिरों की अलग - अलग लक्षणों वाली हनुमान तथा विष्णु के विविध अवतार - स्वरूपों और विट्ठल की मूर्तियां, आदिकेशव मंदिर समूह में सूर्य, गणेश एवं विष्णु के साथ ही पंचदेव वाहन- पट्ट, रामनगर के दुर्गा मंदिर पर विष्णु के विविध अवतारों एवं सूर्य की आकृतियों के अंतिरिक्त परशुराम - सहस्त्रबाहु युद्ध, उड़ीसा शैली के शिखर वाले देवालय में प्रतिष्ठित जगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्र की आकृतियां, बलराम का यमुनाकर्षण, नर - नारायण, कृष्ण के चीरहरण, गोवर्धनधारण, शेषशायी - विष्णु तथा गंगा - यमुना - सरस्वती की आकृतियां और मणिकर्णिकाघाट स्थित अमेठी शिव मंदिर की कृष्णलीला एवं पुत्तलियों की आकृतियां।

मंदिरों में अनेकशः प्राचीन देव - मूर्तियां भी सुरक्षित हैं, जो कला की उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस दृष्टि से तिलभाण्डेश्वर स्थित तिलभाण्डेश्वर मंदिर की शिव दक्षिणामूर्ति, शुकुलपुरा स्थित शुष्केश्वर मंदिर की गहड़वालकालीन विष्णु एवं सूर्य मूर्तियां, शंकुधारा स्थित द्वारिकाधीश मंदिर की चेदि - कल्चुरी शैली की विष्णु मूर्ति, लोलार्ककुण्ड स्थित पूर्व - प्रतिहार काल की सातवीं शती ई. की चौमुखी मूर्ति (उमा - महेश्वर, पार्वती, गणेश एवं विष्णु की आकृतियां), त्रिलोचन स्थित त्रिलोचन महादेव मंदिर की पूर्वी भारत की शैली में निर्मित विष्णु एवं कार्तिकेय की मूर्तियां, मानसरोवर स्थित राम मंदिर की चन्देल शैली की विष्णु मूर्ति, भैरवनाथ स्थित सोरईया महादेव मंदिर की रावणानुग्रह मूर्ति, मणिकर्णिकाघाट स्थित देवकुलिका की कल्याणसुन्दर मूर्ति, केदारघाट स्थित केदारेश्वर मंदिर की दक्षिण भारतीय शैली की विष्णु, शिव, दक्षिणामूर्ति, दत्तात्रेय, गणेश एवं ब्रह्मा की मूर्तियां तथा द्वारिकाधीश मंदिर का १९ वीं शती का रूपमण्डन के आधार पर निर्मित चतुर्विंशति केशवपट्ट सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

काशी स्थित सारनाथ बौद्ध परम्परा और कला का अति विशिष्ट कलाकेन्द्र रहा है। बुद्ध की प्रथम धर्मोपदेशस्थली होने के कारण सारनाथ न केवल भारत वरन् विश्व के बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए पवित्रतम स्थल है। स्थापत्य की दृष्टि से सारनाथ के धमेख, धर्मराजिका और चौखण्डी स्तूपों का विशेष महत्व है। यहां से कुषाण - गुप्त काल से १२ वीं शती के मध्य तक के स्थापत्य एवं मूर्त्त उदाहरण मिले हैं, जो मुख्यतः सारनाथ के पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित हैं। सारनाथ के मौर्यकालीन पुरावशेष काशी की बौद्ध कला के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। सारनाथ का मौर्यकालीन सिंहशीर्ष स्तम्भ आज भारत के राष्ट्रीय चिन्ह के रूप में गौरव प्राप्त कर रहा है। स्वाभाविक और ओजपूर्ण रचना वाला यह सिंहशीर्ष स्तम्भ एक ओर अशोक के चक्रवर्तित्व को प्रकट करता है तो दूसरी ओर बुद्ध की चतुर्दिक फैली 'धम्मवाणी' को। गुप्तकाल में सारनाथ की कला श्रेष्ठतम स्तर पर अभिव्यक्त हुई। यहां की गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में शैली का परिष्कार और ओज सहज स्वाभाविक स्तर पर तथा भावभूमि और शारीरिक सौन्दर्य की दृष्टि से अप्रतिम है। बुद्ध की ध्यानमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा, भूमिस्पर्शमुद्रा में बैठी और अभय एवं वरदमुद्रा में खड़ी भावपूर्ण मूर्तियों में आध्यात्मिक चिन्तन और करुणा भाव की अभिव्यक्ति तथा पारदर्शक वस्त्रों का मनोहारी अंकन अलौकिक है।

जैन परम्परा में भी काशी का विशेष महत्व था। संभवतः यही कारण है कि यहां जैन धर्म और कला को पल्लवित होने का पूरा अवसर प्राप्त हुआ। जैन ग्रन्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कल्पप्रदीप में काशी का एक प्रमुख जैन तीर्थ के रूप में उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत ग्रंथ में भेलूपुर के निकट जिन प्रतिमाओं से युक्त ११ वीं - १२ वीं शती के पार्श्वनाथ मंदिर की भी चर्चा है। काशी में गुप्तकाल से २० वीं शती तक के जैन मूर्तियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं। १०वीं से २० वीं शती के मध्य की तीर्थंकर, यक्ष - यक्षी तथा जैन युगल मूर्तियां जहां स्थानीय जैन मंदिरों में सुरक्षित हैं वहीं गुप्तकाल से १२ वीं शती के उदाहरण नगर एवं नगर के बाहर के संग्रहालयों में देखे जा सकते हैं। काशी की जैन मूर्तियों में तीर्थंकर मूर्तियों की प्रधानता रही है जिनमें सबसे अधिक मूर्तियां सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ तीर्थंकरों की हैं।

काशी में लोकधर्म से संबंधित यक्ष, नाग, वृक्ष एवं पशु पूजन की परम्परा भी प्राचीन काल से लोकप्रिय रही है, जो आज भी व्यवहार में है। काशी के विभिन्न क्षेत्रों से इनके मूर्त उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें यक्ष आकृतियों के अतिरिक्त भोंसला मंदिर का १६ वीं शती का नागपट्ट और १६ वीं शती का आदिकेशव मंदिर का पंचदेवों से संबंधित वाहनपट्ट मुख्य हैं। पंचदेव वाहनपट्ट पर सूर्य के अश्व, शक्ति के सिंह, गणेश के मूषक, विष्णु के गरुड और शिव के नन्दी वाहनों का एक साथ अंकन हुआ है।

यद्यपि पूर्व में कई भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने काशी के विभिन्न पक्षों पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किये हैं तथापि उनमें अधिकांशतः काशी के धर्म, दर्शन तथा संस्कृति के विविध पक्षों की ही चर्चा हुई है। मंदिरों एवं मूर्तियों का ऐतिहासिक एवं उनके विकासक्रम की दृष्टि से विशद् सर्वेक्षण और उसके आधार पर काशी की कला तथा संस्कृति के विविध आयामों का विवेचन **'काशी के मंदिर और मूर्तियां'** शीर्षक प्रस्तुत पुस्तक में पहली बार प्रस्तुत हुआ है। प्रस्तुत सर्वेक्षण एवं लेखन कार्य जिला सांस्कृतिक समिति, वाराणसी द्वारा सांस्कृतिक धरोहरों की सुरक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत किया गया है। इस पुण्य कार्य के दायित्व निर्वहन में लेखकगण कहां तक सफल रहे हैं, इसका निर्णय सुधी पाठकों पर है। विश्वास है कि काशीप्रेमी एवं विद्यानुरागियों द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का स्वागत होगा।

पुस्तक की पूर्णता के लिए लेखकगण काशीवासियों के विशेष आभारी हैं जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में सहयोग प्रदान किया है। अन्त में हम शिव, गंगा और काशी तीनों को नमन करते हुए काशीवासियों और संपूर्ण जगत के लिए उनके अनुग्रह की कामना करते हैं।

कमल गिरि, मारुतिनन्दन तिवारी
विजय प्रकाश सिंह

आभारः

चित्र सं० १८, ४२, ४७ एवं ५७ - भारत कला भवन, वाराणसी
५४, ५५, ५६ - अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑफ इंडियन स्टडीज, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विषय - सूची

		पृष्ठ
आमुख		I-III
अध्याय		
प्रथम :	काशी का इतिहास और संस्कृति	१-१०
द्वितीय :	काशी के मंदिर सामान्य ११, कर्दमेश्वर मंदिर १५, लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर १६, आदिकेशव मंदिर समूह १७, दुर्गा मंदिर (सुमेरु मंदिर) २०, अमेठी शिव मंदिर २१, रामेश्वर मंदिर २१, समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर) २२	११-२४
तृतीय :	संघाट या समन्वय मूर्तियां अर्धनारीश्वर २६, हरिहरहिरण्यगर्भ २७, हरिहरपितामह या दत्तात्रेय २७, गजलक्ष्मी-सरस्वती (?) २८, पंचदेव २८	२५-३०
चतुर्थ :	शिव सामान्य ३१, एकमुख शिवलिंग ३३, चतुर्मुख शिवलिंग ३३, सहस्रलिंग ३४, पंचमुख शिवलिंग ३४, धारालिंग ३४, लिंगोद्भव ३४, यंत्रलिंग ३४, नरविग्रह मूर्तियां ३५, उमा-महेश्वर ३७, लकुलीश ४१, दक्षिणामूर्ति ४१, कल्याण - सुन्दर ४२, गंगाधर मूर्ति ४४, रावणानुग्रह मूर्ति ४३, अंधकारि मूर्ति ४३, नटराज ४४, भैरव ४५, नन्दी ४७	३१-४७
पंचम :	विष्णु सामान्य ४८, शेषशायी मूर्ति ५५, विट्ठल ५६, लक्ष्मी - नारायण ५६, चतुर्विंशति मूर्तियां ५७, विष्णु की अवतार मूर्तियां ५८, मत्स्यावतार ५६, कूर्म अवतार ५६, वराह ६०, नृसिंह ६०, वामन ६१, बलराम ६१, कृष्ण ६२, राम ६२, जगन्नाथ ६३, गजेन्द्रमोक्ष ६३, हयग्रीव ६३, नर - नारायण ६३, परशुराम - सहस्रबाहु ६४	४८-६४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ : शक्ति या देवी ६५ - ७५
सामान्य ६५, लक्ष्मी ६७,
पार्वती ६८, दुर्गा ६६, महिषमर्दिनी ६६,
सप्तमातृका ७१, सरस्वती ७३,
गंगा - यमुना ७३, अन्नपूर्णा ७४,
काली ७४, शीतला ७५
सप्तम : अन्य ब्राह्मण देव मूर्तियां ७६ - ६२
ब्रह्मा ७६, सूर्य ७८, गणेश ८१,
कार्त्तिकेय ८४, नवग्रह ८६, नाग ८६,
दिक्पाल ६०, हनुमान ६१, शिवगण ६२
अष्टम : बौद्ध स्थापत्य और मूर्तियां ६३ - ६६
नवम : जैन मंदिर और मूर्तियां ६७ - १०३
दशम : धर्मेतर मूर्तियां १०४-१०७
कामशिल्प १०६,अप्सरा १०६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु– 11 वीं-12 वीं. शती ई., राम मंदिर, मानसरोवर, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय

काशी का इतिहास और संस्कृति

काशी परम्परा और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से विश्व की प्राचीनतम नगरियों में एक है। यहां वैदिक काल से आजतक भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप की अजस्र धारा का प्रवाह देखा जा सकता है। काशी को वाराणसी और बाद में बनारस नाम से भी जाना गया। वस्तुतः काशी और वाराणसी एक दूसरे के पर्यायवाची रहे हैं। महाकाव्यों, बौद्ध जातकों एवं जैन ग्रन्थों में वाराणसी का अनेकशः उल्लेख हुआ है। इनमें वाराणसी का स्वतंत्र और काशी की राजधानी दोनों ही रूपों में उल्लेख है। काशी या वाराणसी की प्राचीनता की तुलना विश्व के अन्य प्राचीनतम नगरों जेरूसलम, रोम, एथेन्स एवं पीकिंग से की गयी है। शिव की नगरी (अविमुक्त क्षेत्र) होने के साथ ही काशी बुद्ध की उपदेश स्थली (सारनाथ) एवं सुपार्श्वनाथ (भदैनी), पार्श्वनाथ (भेलूपुर), चन्द्रप्रभ (चन्द्रपुरी, वाराणसी से १५ कि. मी. दूर गंगा के किनारे (?)) और श्रेयांसनाथ (सिंहपुरी - वर्तमान सारनाथ) तीर्थंकरों की जन्मस्थली भी रही है। शिव के अतिरिक्त काशी में ब्राह्मण धर्म के चार अन्य प्रमुख देवताओं - सूर्य, विष्णु, शक्ति एवं गणेश की उपासना भी लोकप्रिय थी। गंगा के तटपर बसी यह सुरम्य नगरी प्राचीनकाल से ही सर्वधर्म समन्वय की स्थली रही है जिसे यहां की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा तथा मंदिरों एवं मूर्तियों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। काशी में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित कला अवशेषों के उदाहरण मुख्यतः सारनाथ, राजघाट, कन्दवा (कर्दमेश्वर मंदिर - १२ वीं शती ई.) एवं वाराणसी के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होते हैं। बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ (कैंट रेलवे स्टेशन से ल. ६ कि. मी. दूर स्थित) से मौर्य शासक अशोक (ल. ३०० ई. पू.) के काल से १२ वीं - १३ वीं शती ई. के मध्य की प्रभूत बौद्ध मूर्तियों के उदाहरण मिले हैं। इनमें आठवीं से १२ वीं शती ई. के बीच की ब्राह्मण देव मूर्तियां भी उपलब्ध हैं। ये मूर्तियां मुख्यतः सारनाथ संग्रहालय, भारत कला भवन, वाराणसी, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं भारत के अन्य संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। राजघाट प्राचीन काशी का वह मुख्य स्थान है जहां से ल. ८०० ई. पू. से १३ वीं शती ई. के बीच के पुरावशेष उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। यहां से प्राप्त कुछ मुख्य उदाहरणों में शुंगकालीन यक्ष मूर्ति तथा गुप्तकालीन शिव एवं पार्वती की मृण्मूर्तियां तथा छठी से आठवीं शती ई. के मध्य की अजितनाथ, नेमिनाथ और महावीर तीर्थंकरों की लांछन और यक्ष - यक्षी युगलों से युक्त मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

काशी में शिव की प्रधानता के कारण ही यहां १७वीं से २० वीं शती ई. के मध्य अनेक छोटे - बड़े शिव मंदिर बने जिनमें गर्भगृह में सर्वदा शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं जबकि उनकी भित्तियों पर चारों ओर क्रमशः शक्ति (महिषमर्दिनी या अन्नपूर्णा), विष्णु (एकल विष्णु या लक्ष्मी -नारायण), सूर्य (चतुर्भुज और मुख्यतः आदित्य रूप में) एवं गणेश (सामान्य एवं नृत्य गणेश) की मूर्तियां उकेरी हैं जो काशी में पंचायतन पूजन या पंचोपासना की लोकप्रियता की साक्षी हैं।

काशी किस प्रकार ब्राह्मण धर्म के विभिन्न देवों की निवास स्थली बनी इसका स्पष्ट उल्लेख स्कन्दपुराण के काशीखण्ड (३९/४३-६५, १३ वीं शती ई.) में मिलता है। पारम्परिक कथा के अनुसार किसी समय शिव तथा अन्य सभी देवता दिवोदास को काशी का राज्य सौंपकर यहां से बाहर चले गये। किन्तु शिव का पूर्ववत काशी के प्रति लगाव बना रहा और उन्होंने यहां पुनः आने के लिए दिवोदास को धर्मच्युत करने के उद्देश्य से देवियों (६४ योगिनी), सूर्य, ब्रह्मा, गणेश और विष्णु को अलग - अलग काशी भेजा।[1] विष्णु के पूर्व काशी

१- द्रष्टव्य, काशीखण्ड ४६/ ३७, ३८, ४२, ५२/ ७१ -७५; डायना, एल० एक०, बनारस - सिटी ऑफ लाइट, लन्दन, १९८३, पृ. १५०-५४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु– 11 वीं-12 वीं. शती ई., राम मंदिर, मानसरोवर, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रथम अध्याय

काशी का इतिहास और संस्कृति

काशी परम्परा और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से विश्व की प्राचीनतम नगरियों में एक है। यहां वैदिक काल से आजतक भारतीय संस्कृति के समन्वयात्मक स्वरूप की अजस्र धारा का प्रवाह देखा जा सकता है। काशी को वाराणसी और बाद में बनारस नाम से भी जाना गया। वस्तुतः काशी और वाराणसी एक दूसरे के पर्यायवाची रहे हैं। महाकाव्यों, बौद्ध जातकों एवं जैन ग्रन्थों में वाराणसी का अनेकशः उल्लेख हुआ है। इनमें वाराणसी का स्वतंत्र और काशी की राजधानी दोनों ही रूपों में उल्लेख है। काशी या वाराणसी की प्राचीनता की तुलना विश्व के अन्य प्राचीनतम नगरों जेरुसलम, रोम, एथेन्स एवं पीकिंग से की गयी है। शिव की नगरी (अविमुक्त क्षेत्र) होने के साथ ही काशी बुद्ध की उपदेश स्थली (सारनाथ) एवं सुपार्श्वनाथ (भदैनी), पार्श्वनाथ (भेलूपुर), चन्द्रप्रभ (चन्द्रपुरी, वाराणसी से १५ कि. मी. दूर गंगा के किनारे (?)) और श्रेयांसनाथ (सिंहपुरी - वर्तमान सारनाथ) तीर्थंकरों की जन्मस्थली भी रही है। शिव के अतिरिक्त काशी में ब्राह्मण धर्म के चार अन्य प्रमुख देवताओं - सूर्य, विष्णु, शक्ति एवं गणेश की उपासना भी लोकप्रिय थी। गंगा के तटपर बसी यह सुरम्य नगरी प्राचीनकाल से ही सर्वधर्म समन्वय की स्थली रही है जिसे यहां की धार्मिक और सांस्कृतिक परम्परा तथा मंदिरों एवं मूर्तियों में स्पष्टतः देखा जा सकता है। काशी में ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन धर्मों से सम्बन्धित कला अवशेषों के उदाहरण मुख्यतः सारनाथ, राजघाट, कन्दवा (कर्दमेश्वर मंदिर - १२ वीं शती ई.) एवं वाराणसी के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होते हैं। बुद्ध की प्रथम उपदेश स्थली सारनाथ (कैंट रेलवे स्टेशन से ल. ६ कि. मी. दूर स्थित) से मौर्य शासक अशोक (ल. ३०० ई. पू.) के काल से १२ वीं - १३ वीं शती ई. के मध्य की प्रभूत बौद्ध मूर्तियों के उदाहरण मिले हैं। इनमें आठवीं से १२ वीं शती ई. के बीच की ब्राह्मण देव मूर्तियां भी उपलब्ध हैं। ये मूर्तियां मुख्यतः सारनाथ संग्रहालय, भारत कला भवन, वाराणसी, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता एवं भारत के अन्य संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। राजघाट प्राचीन काशी का वह मुख्य स्थान है जहां से ल. ८०० ई. पू. से १३ वीं शती ई. के बीच के पुरावशेष उत्खनन में प्राप्त हुए हैं। यहां से प्राप्त कुछ मुख्य उदाहरणों में शुंगकालीन यक्ष मूर्ति तथा गुप्तकालीन शिव एवं पार्वती की मृण्मूर्तियां तथा छठी से आठवीं शती ई. के मध्य की अजितनाथ, नेमिनाथ और महावीर तीर्थंकरों की लांछन और यक्ष - यक्षी युगलों से युक्त मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।

काशी में शिव की प्रधानता के कारण ही यहां १७वीं से २० वीं शती ई. के मध्य अनेक छोटे - बड़े शिव मंदिर बने जिनमें गर्भगृह में सर्वदा शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं जबकि उनकी भित्तियों पर चारों ओर क्रमशः शक्ति (महिषमर्दिनी या अन्नपूर्णा), विष्णु (एकल विष्णु या लक्ष्मी -नारायण), सूर्य (चतुर्भुज और मुख्यतः आदित्य रूप में) एवं गणेश (सामान्य एवं नृत्य गणेश) की मूर्तियां उकेरी हैं जो काशी में पंचायतन पूजन या पंचोपासना की लोकप्रियता की साक्षी हैं।

काशी किस प्रकार ब्राह्मण धर्म के विभिन्न देवों की निवास स्थली बनी इसका स्पष्ट उल्लेख स्कन्दपुराण के काशीखण्ड (३९/४३-६५, १३ वीं शती ई.) में मिलता है। पारम्परिक कथा के अनुसार किसी समय शिव तथा अन्य सभी देवता दिवोदास को काशी का राज्य सौंपकर यहां से बाहर चले गये। किन्तु शिव का पूर्ववत काशी के प्रति लगाव बना रहा और उन्होंने यहां पुनः आने के लिए दिवोदास को धर्मच्युत करने के उद्देश्य से देवियों (६४ योगिनी), सूर्य, ब्रह्मा, गणेश और विष्णु को अलग - अलग काशी भेजा।[1] विष्णु के पूर्व काशी

१- द्रष्टव्य, काशीखण्ड ४६/३७, ३८, ४२, ५२/ ७१ -७५; डायना, एल० एक०, बनारस - सिटी ऑफ लाइट, लन्दन, १९८३, पृ. १५०-५४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आने वाले सभी देवता असफल होकर काशी में ही रह गये। अन्त में विष्णु इस कार्य में सफल हुये और परिणामतः शिव काशी लौटे। ज्ञातव्य है कि कथा में वर्णित देवताओं में ब्रह्मा को छोड़कर अन्य सभी देवता पंचोपासना के अन्तर्गत आते हैं।

लोकधर्म से संबंधित यक्ष, नाग, वृक्ष पूजन की परम्परा भी काशी में प्रारम्भ से ही समृद्ध रही है जो आज भी काशी की सांस्कृतिक परम्परा में देखी जा सकती है। नागपूजन की व्यापकता न केवल शिव वरन् काशी में जन्में सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ के मस्तकों पर दिखाये जाने वाले सर्पफणों के रूप में भी देखी जा सकती है। काशी की धार्मिक एवं सांस्कृतिक समन्वय की अनुपम झांकी आदिकेशव से अस्सी तक फैले हुए लगभग ७६ घाटों की श्रृंखला में भी द्रष्टव्य है। इन घाटों का वर्तमान स्वरूप और उनसे सम्बद्ध अवशेष मुख्यतः १७ वीं से १६ वीं शती ई. के मध्य के हैं। इन घाटों के निर्माण में सम्पूर्ण भारतवर्ष के शासक वर्गों का सहयोग रहा है जिसके फलस्वरूप इन घाटों के मंदिरों, मठों एवं अन्य अवशेषों में पूरे भारतवर्ष का धार्मिक और सांस्कृतिक स्वरूप मूर्तिमान रूप में देखा जा सकता है।

उपर्युक्त धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वरूप के कारण ही यह कहा गया है कि काशी में सम्पूर्ण जगत ही सूक्ष्मरूप में उपस्थित है। पृथ्वी पर जो कुछ भी पवित्र और शक्तिशाली है वह सूक्ष्मरूप में काशी में विद्यमान है। पारम्परिक मान्यता के अनुसार भारत के सभी पवित्र स्थल एवं नदियां तथा देवता काशी में निवास करते हैं। **मत्स्यपुराण** (१८०.५४) में काशी को अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है जिसे शिव कभी नहीं छोड़ते। इसे महाश्मशान, आनन्दकानन और मोक्षदा अर्थात मोक्ष देने वाली सप्तपुरियों (अयोध्या, मथुरा, माया -यानी हरिद्वार, काशी, कांची, अवन्तिका - यानी - उज्जैन, द्वारिका) में एक माना गया है। भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन विभिन्न पुराणों में हुआ है जिनमें स्कन्दपुराण का **काशीखण्ड** (ल. १२ वीं - १३ वीं शती ई.) और **ब्रह्मवैवर्तपुराण** का **काशीरहस्य** (ल. १५वीं शती ई.) सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

इनके अतिरिक्त **कृत्यकल्पतरु** (लक्ष्मीधर कृत - ल. १२ वीं शती ई.) एवं जैन ग्रन्थ **विविधतीर्थकल्प** या **कल्पप्रदीप** (१४ वीं शती ई.) और **प्रबन्धकोश** (१३वीं शती ई.) में भी काशी के संबंध में विस्तृत उल्लेख मिलते हैं। साथ ही नारायण भट्ट कृत **त्रिस्थली सेतु** (ल० १५६० ई.) एवं वरदराज कृत **गीर्वाणपद मंजरी** (१७ वीं शती ई.) भी महत्वपूर्ण परवर्ती साहित्यिक साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। काशी के सांस्कृतिक और धार्मिक महत्व ने ही प्राचीनकाल से विभिन्न धर्माचार्यों एवं मनीषियों को काशी की यात्रा एवं यहां ध्यान और चिन्तन के लिए प्रेरित किया था। इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि बुद्ध एवं ऐतिहासिक पुरुषों के रूप में मान्य पार्श्वनाथ तथा महावीर तीर्थंकर और रामानन्द (१४वीं शती ई.), कबीर, रैदास, तुलसी जैसे मध्ययुगीन भक्तिमार्गी और निर्गुण - सगुण उपासना से सम्बन्धित युग पुरुष मुख्यतः काशी की धरती से ही संबंधित थे। काशी की यह सांस्कृतिक चेतना विभिन्न धार्मिक उत्सवों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और साथ ही साहित्य (प्रेमचन्द्र, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामचन्द्र शुक्ल, शिव प्रसाद सिंह आदि) , दर्शन, राजनीति एवं चिन्तन (डा. भगवानदास, लाल बहादुर शास्त्री, पं. मदन मोहन मालवीय, ठाकुर जयदेव सिंह, पं. गोपीनाथ कविराज), कला (वासुदेवशरण अग्रवाल, राय कृष्णदास, मोतीचन्द्र) तथा संगीत (मोतीबाई, गिरिजा देवी, बिसमिल्ला खां, कण्ठे महाराज, बिरजू महाराज, पं. सामता प्रसाद, पं. किशन महाराज) जैसे जीवन से अविछिन्न रूप से सम्पृक्त साधना के क्षेत्रों में काशी के अग्रगामी योगदान में भी देखी जा सकती हैं।

काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व के कारण ही लगभग १० वीं से १२ वीं शती ई. के मध्य कई ऐसे शिलापट्ट भी बने जिन्हें वाराणसी से बाहर वाराणसी शिलापट्ट के रूप में स्थापित किया गया। ग्वालियर, झांसी एवं लखनऊ संग्रहालयों में सुरक्षित तथा काशी से प्राप्त कुछ वाराणसी शिलापट्टों पर मध्य में गंगा और वाराणसी देवी तथा अन्य भाग पर योनिपीठस्थ शिवलिंग, आदित्य, केशव, शक्ति तथा शिव के कुछ विशिष्ट स्वरूपों एवं पंच - विनायकों की आकृतियां बनी हैं। वाराणसी से बाहर स्थापित शिलापट्ट और उनका पूजन काशी यात्रा का फल प्रदान करता था। डा. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी ने वाराणसी शिलापट्टों को प्रकाशित कर काशी के बाहर के लोगों की दृष्टि में काशी के विशिष्ट धार्मिक महत्व को उजागर किया है। वाराणसी शिलापट्टों के निर्माण की यह परपंरा भुवनदेव कृत **अपराजितपृच्छा** (१३वीं शती ई.) से भी समर्थित है। **अपराजितपृच्छा** (७४. २०-२५) में वाराणसी शिलापट्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर १४ शिवलिंग, एकादश रुद्र, द्वादश आदित्य, द्वादश गणपति, पांचलीला (ललीया), नवदुर्गा, पांच लोकपाल, तीन अग्नि, दिक्पाल, आठ मातृका, चार समुद्र, गंगा और मध्य में पद्मासन में विराजमान वाराणसी देवी के उत्कीर्णन का विधान मिलता है। इस ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि इन वाराणसी पट्टों के दर्शन से वाराणसी वास का पुण्य लाभ मिलता है। साथ ही इनके पूजन से नित्य गंगा स्नान और पूजन का फल तथा मोक्ष भी प्राप्त होता है।

वाराणसी नगर अर्ध - चन्द्राकार रूप में गंगा के बायें किनारे पर २५°१८' उत्तरी अक्षांश एवं ८३°१' पूर्वी देशान्तर पर स्थित है।[२] प्राचीन वाराणसी की मूल स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। एम. ए. शेरिंग, जे. मरडाक, ई. ग्रीब्ज और ए. पारकर आदि विद्वानों के मतानुसार प्राचीन वाराणसी वर्तमान नगर के उत्तरी भाग में थी।[३] पुरातात्विक उत्खननों से यह ज्ञात होता है कि राजघाट से वरुणा तक का भाग कभी मुख्य वाराणसी था। हैवेल की दृष्टि में वाराणसी नगर की मूल स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है, प्राचीन काल से ही उसका वर्तमान स्वरूप सुरक्षित था।[४] वाराणसी के नाम के संदर्भ में भी अनेक धारणाएं प्रचलित हैं। **पद्म** (५.५८) एवं **कूर्म** पुराणों के अनुसार दक्षिणोत्तर में 'वरुणा' और पूर्व में 'असि' की सीमा से घिरे होने के कारण इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा। कुछ विद्वानों की यह भी धारणा है कि वाराणसी शब्द 'वरुणा' और 'नासी' शब्द के योग से बना है। **अथर्ववेद** एवं **महाभारत** में वाराणसी नदी का उल्लेख मिलता है जो वर्तमान वरुणा का समानार्थक है। कनिंघम ने वाराणसी को 'वरुणा' और 'असि' के मध्य स्थित माना है। मोतीचन्द्र वाराणसी के सन्दर्भ में वरुणा और असि की संगति की अवधारणा को काल्पनिक मानते हैं। यह भी संभव है कि असि तक वाराणसी नगर का विस्तार होने के कारण इस नगर का नाम वाराणसी पड़ा हो।

प्राचीनकाल में काशी एक जनपद के रूप में विख्यात थी। वाराणसी इसी जनपद की राजधानी थी। चीनी यात्री फाह्यान ने अपने यात्रा विवरण में इस बात की पुष्टि की है। **हरिवंशपुराण** में पुरुरवा के वंश के राजा 'काश' बताये गये हैं। इन्हीं 'काश' के वंशज काशी कहलाए। संभव है उपर्युक्त आधार पर ही इस जनपद का नाम काशी पड़ा हो। **काशीखण्ड** के एक पौराणिक कथा के अनुसार पार्वती के मुक्तामय कुण्डल गिर जाने के कारण विष्णु ने काशी को मुक्ति क्षेत्र की संज्ञा दी और इसके अकथनीय दिव्य या परम ज्योति के कारण इस तीर्थ को काशी नाम दिया। काशी में काश नामक घास के घने जंगल थे। इस घास को वर्तमान में कुश कहा जाता है। ऐसी भी संभावना व्यक्त की गई है कि इस घास के नाम पर ही इस जनपद का नाम काशी पड़ा हो।

आर्यों के आगमन से पूर्व काशी के इतिहास के विषय में कुछ भी कह पाना कठिन है। किन्तु प्राचीनता की दृष्टि से बुद्ध (ल. छठी शती ई. पू.) के पूर्व काशी की स्थिति प्रमाणित है। संभवतः जनपदों में कौशाम्बी के बाद काशी का ही उद्भव हुआ। षोडश जनपदों में कोशल के साथ काशी का भी उल्लेख मिलता है। **शतपथ ब्राह्मण** के एक प्रसंग से स्पष्ट है कि आठ सौ ईसा पूर्व तक काशी वैदिक सांस्कृतिक क्षेत्र में नहीं आई थी। काशी का उल्लेख सर्वप्रथम **अथर्ववेद** की पैप्पलाद शाखा में मिलता है, जहां मंत्रकार जूड़ी ज्वर से प्रार्थना करते हुए कहता है कि वह उसे छोड़कर काशी, कोशल और मगध के लोगों पर अपना अधिकार जमाये। **रामायण** में काशी का जनपद के रूप में उल्लेख हुआ है। दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ में काशीराज को भी आमंत्रित किया था। उत्तरकाण्ड में काशीराज पुरुरवा का उल्लेख मिलता है। **महाभारत** के आदिपर्व में काशीराज की पुत्रियों के स्वयंवर एवं विवाह का भी उल्लेख हुआ है। तीर्थ के रूप में काशी का सर्वप्रथम **महाभग्रत** (वनपर्व ८४.१८, ७९,८७) में ही वर्णन हुआ है। **महाभारत** के वनपर्व में अज्ञातवास की अवधि में पाण्डवों के काशी आने का उल्लेख है। वनपर्व में काशी के कपिलाह्रद नामक तीर्थ को एक प्रसिद्ध तीर्थ बताया गया है। **महाभारत** में एक स्थान पर काशी के जलाये जाने का वर्णन है जिसकी पुष्टि **विष्णुपुराण** से भी होती है। विद्वानों ने इस उद्धरण को शैवों एवं वैष्णवों के संघर्ष का परिणाम माना है। **महाभारत** में वाराणसी के संस्थापक दिवोदास और वाराणसी नगर का भी वर्णन मिलता है। वाराणसी के संस्थापक के रूप में दिवोदास

२- मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास (द्वितीय संस्करण), वाराणसी, १९८५, पृ. १; राम लोचन सिंह, बनारस ए स्टडी इन अर्बन ज्योग्राफी, बनारस, १९५६, पृ. १४।

३- एम० ए० शेरिंग, दि सेक्रेड सिटी आफ हिन्दूज, लन्दन, १९६८, पृ. १९-३४।

४- इ० बी० हैवेल, बनारस दि सेक्रेड सिटी, कलकत्ता, १९६८, पृ. ४१-५०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उल्लेख पुराणों में भी हुआ है।

पुराणों में शिवपुरी के नाम से अभिहित वाराणसी की धार्मिक समृद्धि की चर्चा मिलती है। पद्मपुराण (३३.१०२) में वाराणसी की गणना सात मोक्ष पुरियों में की गई है। ब्रह्मपुराण में शिव द्वारा पार्वती को काशी का महत्व समझाने एवं मत्स्यपुराण में काशी को अपना प्रिय क्षेत्र कहने का संदर्भ आया है।[५] शिवपुराण में वाराणसी को भारत के प्रमुख द्वादश क्षेत्रों में से एक बताया गया है। अग्निपुराण एवं मत्स्यपुराण में वाराणसी के विस्तार का भी संदर्भ मिलता है। मत्स्यपुराण के अनुसार वाराणसी नदी से गंगा नदी तक, भीमचण्डी से पर्वतेश्वर तक काशी का विस्तार था। यहां वाराणसी शब्द का प्रयोग वरुणा नदी के लिए जान पड़ता है। पद्मपुराण में एक स्थान पर वाराणसी के चतुर्दिक सीमाओं का उल्लेख हुआ है जिसमें नगर की सीमा उत्तर में वरुणा नदी, दक्षिण में असि, पूर्व में गंगा तथा पश्चिम में पाशपाणि गणेश तक निश्चित की गई है। पुराणों में नगर के शासकों के वंशक्रम का भी उल्लेख प्राप्त होता है। परवर्ती काल में वाराणसी का धार्मिक महत्व क्रमशः बढ़ता ही गया। एक अभिलेख से वाराणसी में दस अश्वमेध यज्ञों के सम्पादित होने का भी संदर्भ मिलता है।[६]

जैन साहित्य में भी वाराणसी के प्रचुर संदर्भ मिलते हैं। चार जैन तीर्थंकरों (सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, श्रेयासंनाथ, पार्श्वनाथ) का जन्म वाराणसी में हुआ था।[७] महावीर स्वयं वाराणसी आये थे। बुद्धचरित (अश्वघोष कृत - १५.१०१) में वाराणसी एवं काशी को एक ही नगर माना गया है। जैन साहित्य में काशी में यक्ष - आयतन के भी संदर्भ मिलते हैं। उत्तराध्ययन निर्युक्ति में गंडिर्तिदुक नामक यक्ष का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण में हरिकेश यक्ष एवं महायक्ष कुबेर के संदर्भ मिलते हैं। जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र में सोलह जनपदों की सूची में काशी जनपद और उसकी राजधानी के रूप में वाराणसी का नाम मिलता है। बौध्द ग्रन्थों में भी वाराणसी का उल्लेख काशी जनपद की राजधानी के रूप में हुआ है। बुद्ध के पहले वाराणसी एक समृद्ध एवं स्वतंत्र राज्य था। बौद्ध ग्रन्थों में वाराणसी को वरुणा नदी पर स्थित बताया गया है। दीघनिकाय के महापरिनिब्बानसुत्त में तत्कालीन छः प्रसिद्ध नगरों (चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी, साकेत, वाराणसी) में वाराणसी का उल्लेख भी मिलता है। बौद्ध साहित्य में काशी में बुद्ध के ठहरने और सारनाथ में प्रथम उपदेश देने का उल्लेख है। बुद्ध के समय (छी शती ई. पू.) काशी उत्तर भारत में शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था।

बुद्ध के समय काशी वाणिज्य और व्यापार का भी एक प्रमुख केन्द्र था। यह नगर स्थल तथा जल मार्गों द्वारा भारत के अन्य नगरों से जुड़ा था। बौद्ध ग्रन्थों में काशी से वैशाली और राजगृह जाने वाले मार्गों का उल्लेख आया है। बाद में व्यापार एवं पाण्डित्य में काशी का महत्व इतना बढ़ा कि दक्षिण - पूर्व एशिया से इसका सम्बन्ध स्थापित हुआ। काशी के व्यापारियों के समुद्र पार जाने का भी उल्लेख मिलता है। महावग्ग में शक्ति सम्पन्न काशीराज बृहद्रथ को विपुल धन का स्वामी, भोग विलास की सामग्री से परिपूर्ण और बहुत बड़ी सेना का स्वामी बताया गया है।[८] बुद्ध के समय काशी अपने सुन्दर एवं बहुमूल्य वस्त्रों के लिए भी विख्यात थी। जातकों में काशी के बने वस्त्रों को काशीकुत्तम तथा कासीय कहा गया है। संयुक्त निकाय में काशी के वस्त्रों को सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। वस्त्रों के अतिरिक्त काशी चन्दन के लिए भी प्रसिद्ध था। काशी काष्ठ व्यवसाय का भी एक प्रमुख केन्द्र था। यहां के बढ़ई एक, दो या कई मंजिलों वाले भवन बनाने में दक्ष थे। काशी में हाथी दांत का व्यापार भी उन्नत था। जातकों में नगर में दन्तकार वीथिका का उल्लेख है जहां हाथी दांत की वस्तुएं बनती थीं। उपरोक्त सन्दर्भों से काशी की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति का प्रमाण मिलता है।

पुरातात्विक प्रमाणों से काशी में मिट्टी के बर्तन और खिलौनों के निर्माण की भी पुष्टि होती है। काशी के निवासी उत्सवप्रिय थे। महाजनपद युग में 'दीपावली' एक प्रमुख त्यौहार था। इस अवसर पर स्त्रियां केसरिया रंग के वस्त्र पहनकर बाहर निकलती थीं। 'हस्तिमंगल' उत्सव भी वाराणसी का एक प्रमुख त्यौहार था। इसके

५- वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्व सेविता।
प्रविष्टा त्रिपथगा गंगा तस्मिन् क्षेत्रेममप्रिये।।
मत्स्यपुराण १०३/६-७

६- एपिग्राफिया इण्डिका. ८।२६६।

७- कल्पसूत्र ६।१४६-१६६. द्रष्टव्य. सागरमल जैन. 'जैन परम्परा में काशी', युग - युगों में काशी. वाराणमी. १६८६. पृ. २७८।

८- महावग्ग १०.२.३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त 'मदिरोत्सव' (जिसमें सुरापान की व्यवस्था होती थी) और छत्र - मंगल उत्सव भी मनाये जाते थे।

काशी पर अन्य जनपदों का आधिपत्य भी स्थापित हुआ जिनमें कोशल महत्वपूर्ण रहा है। कोशल के विजयी राजा कंस के लिए 'वाराणसिग्गहो' (वाराणसी का विजेता) उपाधि का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रन्थ महावंश में बुद्ध परिनिर्वाण के सौ वर्ष के अन्दर काशी पर अजातशत्रु, उदयभद्र एवं कालाशोक आदि राजाओं के शासन का उल्लेख मिलता है।[९] मौर्य शासक अशोक (तीसरी शती ई. पू .) के समय वाराणसी की स्थिति का अनुमान सारनाथ से प्राप्त पुरावशेषों से होता है। सारनाथ के अवशेषों से स्पष्ट है कि इस समय तक बौद्ध धर्म की स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी। अशोक द्वारा सारनाथ में निवास करने वाले भिक्षु एवं भिक्षुणियों के आचार को नियंत्रित करने का आदेश देने का विवरण मिलता है।[१०] सारनाथ का सिंह शीर्ष स्तम्भ एवं धर्मराजिका स्तूप तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म की व्यापकता के द्योतक हैं। राजघाट से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों से वाराणसी पर शुंग शासकों के आधिपत्य का भी प्रमाण मिलता है। ईसवी सन् के प्रथम शती के अंत में वाराणसी पर कुषाण शासकों का आधिपत्य स्थापित हुआ। कुषाण शासकों में सबसे प्रसिद्ध कनिष्क था। विद्वानों का अनुमान है कि प्रथम शती में प्रयाग एवं वाराणसी का क्षेत्र कनिष्क के अधिकार में आ गया था। कनिष्क के तीसरे राज्य वर्ष में त्रिपिटक भिक्षुबल द्वारा सारनाथ में बोधिसत्व प्रतिमा तथा उससे जुड़े छत्र की स्थापना करने का संदर्भ मिलता है।[११]

बौद्ध, शैव एवं जैन धर्मों के साथ - साथ काशी में जनसाधारण में प्रचलित लोकधर्म के अन्तर्गत यक्ष, नाग, वीर की पूजा का भी प्रचलन था जिसका प्रमाण आज भी स्थानों के नामों के संदर्भ एवं यत्र - तत्र बिखरे मूर्त उदाहरणों में मिलता है। राजघाट से प्राप्त तीन यक्ष आकृतियों वाला लगभग पहली शती ई. पू. का स्तम्भ ई. पू. में काशी में यक्ष - पूजन का प्रमाण है। कुषाणकालीन साहित्य में द्वितीय शती ई. में वाराणसी के क्षेत्रपाल के रूप में महाकाल यक्ष का उल्लेख मिलता है। राजघाट से प्राप्त कुषाणकालीन बलराम की आकृति वैष्णव धर्म की उपस्थिति का प्रतीक है।

कुषाणों के बाद चौथी शती ई. में गुप्त शासकों का साम्राज्य स्थापित हुआ। गुप्तकाल में पांचवीं - छठी शती ई. में सारनाथ कला एवं धर्म के क्षेत्र में चरमोत्कर्ष पर पहुंचा। परमभागवत् की उपाधि धारण करने वाले वैष्णव धर्मावलम्बी गुप्त शासकों के काल में ब्राह्मण धर्म का भी पुनरुत्थान हुआ। फलस्वरूप वाराणसी में राजघाट तथा अन्य स्थलों पर पर्याप्त ब्राह्मण देवमूर्तियां बनीं। इनमें शिव, दक्षिणामूर्ति, अर्धनारीश्वर, गोवर्धनधारी - कृष्ण एवं कार्त्तिकेय की ओजपूर्ण तथा सहज स्वाभाविक भाव वाली मूर्तियां मुख्य हैं। वाराणसी पर गुप्त शासकों के अधिकार का उल्लेख सारनाथ के अभिलेख में भी मिलता है।[१२] वायुपुराण (९९.३८३) में वाराणसी को चन्द्रगुप्त की राज्य सीमा के अन्तर्गत बताया गया है। तत्कालीन सारनाथ का वर्णन पांचवी शती ई. के चीनी यात्री फाह्यान ने किया है। सारनाथ से मुख्यतः बौद्ध तथा वाराणसी के अन्य क्षेत्रों से ब्राह्मण एवं जैन धर्मों से संबंधित गुप्तकालीन मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां गुप्त शासकों के धर्मसहिष्णु होने का प्रमाण हैं। राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन मुद्राओं से इस बात का पता चलता है कि उस समय बौद्ध और शैव दोनों ही धर्मों का तेजी से प्रसार हो रहा था। गुप्त शासक कुमारगुप्त की मुद्राओं पर कार्त्तिकेय का अंकन मिलता है जबकि स्कन्दगुप्त का वाराणसी से घनिष्ठ संबंध था। स्कन्दगुप्त के राज्यकाल में पांचवी शती ई. में निर्मित विष्णु मंदिर के अवशेष गाजीपुर के निकट भीतरी ग्राम से प्राप्त हुए हैं। इस विष्णु मंदिर की व्यवस्था के लिए एक गांव भी दान में दिया गया था।

गुप्तकाल में ही वाराणसी शैव धर्म का एक प्रमुख केन्द्र बना और यहां अनेक शिवलिंगों की स्थापना हुई। अग्निपुराण (३५.२१) में तत्कालीन काशी को मुक्तिदायक बताया गया है। राजघाट से प्राप्त कुछ मुद्राओं से काशी के कुछ मंदिरों के संबंध में भी सूचना मिलती है। वाराणसी के बकरिया कुण्ड से प्राप्त गोवर्धनधारी - कृष्ण की विशाल प्रतिमा इस बात का प्रमाण है कि उस स्थान पर कोई विशाल वैष्णव मंदिर रहा होगा। इस प्रकार गुप्तकाल में काशी के विभिन्न क्षेत्रों में शैव, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन धर्मों का समवेत विकास हुआ।

---

९ - महावंश. ४. १-८: दीपवंश ५. पृ. १-१०।

१०- डी० सी० सरकार, सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, भाग - १, कलकत्ता, १९६५, पृ. ७३।

११- एपिग्राफिया इण्डिका, भाग ८, पृ. १७६।

१२- इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, भाग १०, पृ. ११०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन मुद्राएं इस बात का स्पष्ट प्रमाण हैं कि गुप्तकाल में वाराणसी वाणिज्य, व्यापार एवं शिक्षा का भी एक प्रमुख केन्द्र था। राजघाट से प्राप्त गुप्तकालीन मुद्राओं से ज्ञात होता है कि गुप्तकाल में वाराणसी में विद्याध्ययन एवं वेदों की शिक्षा के लिए पाठशालाएं थीं।

गुप्तकाल के पश्चात् वाराणसी पर मौखरी वंश के शासन का प्रमाण मिलता है। थानेश्वर के पुष्यभूति वंश के शासक प्रभाकर वर्धन की पुत्री का विवाह अंतिम मौखरी राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। ग्रहवर्मा को मालवा के राजा देवगुप्त ने युद्ध में पराजित किया जिसे हर्ष ने पराजित कर कन्नौज से बनारस तक का राज्य अपने अधिकार में कर लिया था। हर्ष के राज्यकाल (ल. ६०६-६४६ ई.) में चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में वाराणसी की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।[१३] ह्वेनसांग ने नगर के गंगातट पर स्थित होने एवं उसके विस्तार का भी वर्णन किया है। उसने लिखा है कि नगर की आबादी घनी थी और लोग बहुत समृद्ध थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि नगर में बौद्ध भिक्षुओं के निवास के लिए कई संघाराम भी थे। ह्वेनसांग ने नगर में सौ से अधिक देव मंदिरों के होने का उल्लेख किया है। चीनी यात्री ने नगर के धार्मिक अनुयायियों में शैवधर्मावलम्बियों की संख्या सबसे अधिक बतायी है। ह्वेनसांग ने नगर में बीस शैव मंदिरों के होने का भी उल्लेख किया है। उसने मंदिरों के शीर्ष एवं छज्जों के नक्काशीदार लकड़ियों एवं पत्थरों से युक्त होने का जिक्र किया है। शिव के एक मंदिर में कांसे की बनी एक सौ फीट ऊंची महेश्वर मूर्ति के प्रतिष्ठित होने की बात भी इस चीनी यात्री ने लिखी है। यह कांस्य प्रतिमा सजीव एवं प्रभावपूर्ण कांति से युक्त थी। ह्वेनसांग ने सारनाथ का भी विस्तृत वर्णन किया है। सारनाथ में अशोक द्वारा निर्मित सौ फीट ऊंचे स्तूप के होने का संदर्भ इस चीनी यात्री ने दिया है जिसके निकट एक चमकदार स्तम्भ स्थित था। सारनाथ में एक ऊंची चहारदीवारी से घिरा मृगदाव विहार था जिसमें पन्द्रह सौ बौद्ध भिक्षु रहते थे। चहारदीवारी के अंदर २०० फीट ऊंचा एक मंदिर था जिसका आमलक स्वर्ण मंडित था। इस मंदिर की जगती एवं सीढ़ियां पत्थर की बनी थीं जिसमें स्वर्ण मंडित बुद्ध की प्रतिमा प्रतिष्ठित थी। विहार के मध्य में बुद्ध की धर्मचक्र-प्रवर्तनमुद्रा में कांस्य निर्मित एक विशाल प्रतिमा स्थापित थी। हर्ष के समय काशी शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र थी। यद्यपि नगर में सभी धर्मों के अनुयायी थे किन्तु वैदिक धर्म के मानने वालों की संख्या सबसे अधिक थी।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय के लिए मगध के गुप्त राजा जीवितगुप्त द्वितीय का पूर्वी उत्तर भारत से लेकर बिहार तक आधिपत्य था जिसमें वाराणसी भी सम्मिलित थी। हर्ष के बाद 'प्रकटादित्य' नामक राजा का उल्लेख मिलता है जिसने काशी में विष्णु का मंदिर बनवाया। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कई छोटे - छोटे शासकों का आधिपत्य स्थापित हुआ जिनमें समय - समय पर सत्ता के लिए संघर्ष हो रहा था। आपसी संघर्ष ने कला, साहित्य और संस्कृति के विकास को भी प्रभावित किया। आठवीं शती ई. में पालवंश का उदय हुआ। धर्मपाल पालवंश का सबसे प्रतापी शासक था। धर्मपाल ने कन्नौज के साथ - साथ काशी पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। ए. एस. अल्तेकर ने धर्मपाल की सेना का मुख्य केन्द्र वाराणसी को बताया है।[१४] पाल शासक जयपाल द्वारा सारनाथ में दस चैत्यों के निर्माण का संदर्भ मिलता है। सारनाथ से प्राप्त पाल अभिलेखों में काशी की तत्कालीन धार्मिक दशा का अच्छा उल्लेख मिलता है।

पालों के पश्चात् नवीं शती ई. में काशी प्रतिहार शासकों के अधीन हो गई। प्रतिहारों पर राष्ट्रकूटों की विजय से काशी क्षेत्र पर शीघ्र ही राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया। राष्ट्रकूटों के पतन के पश्चात् चन्देल शासक धंग (९५० - १००२ई.) का काशी पर आधिपत्य स्थापित हुआ।

११वीं शती ई. के प्रथम चरण में काशी कल्चुरि वंश के शासन के अन्तर्गत आ गई। कल्चुरि शासक गांगेय देव (१०००-१०५० ई.) के राज्यकाल की सबसे प्रमुख घटना अहमद नियालतिगिन द्वारा १०३३ ई. में बनारस की लूट - पाट थी। इस घटना का वर्णन अलबैहाकी ने अपनी पुस्तक **'तारीखस्सुबुक्तिगिन'** में भी किया है। गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्ण (१०४१-७२ई.) राजा हुआ। कर्ण द्वारा काशी में कर्णमेरु मंदिर के निर्माण का उल्लेख मिलता है। इस मंदिर का उल्लेख

१३- टी० वाटर्स, ऑन युवान च्वांग ट्रैवेल इन इण्डिया, भाग २, दिल्ली, १९६१, पृष्ठ ४६।
१४- ए० एस० अल्तेकर, हिस्ट्री ऑफ बनारस, वाराणसी, १९३७, पृ. ७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रबंधचिंतामणि में भी किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आठवीं से ११ वीं शती ई. तक काशी की धार्मिक और सामाजिक स्थितियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। नगर में शैव धर्म की प्रधानता थी जबकि सारनाथ में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव था। तत्कालीन धार्मिक स्थिति पर कुछ प्राचीन लेखों से भी प्रकाश पड़ता है। इस संदर्भ में पंथ का आठवीं शती का लेख, महीपाल के समय का १०२६ई. का लेख, कर्ण के १०५६ ई. एवं १०६५ ई. के लेख प्रमुख हैं। पुराणों में तत्कालीन काशी के धार्मिक महत्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। **काशीखण्ड** में पंथ द्वारा भवानी का मंदिर बनवाने और चंडी की एक मूर्ति स्थापित करने का सन्दर्भ है। आठवीं शती ई. में ही शंकराचार्य को अपने मत की पुष्टि के लिए काशी आना पड़ा था। इसी समय सारनाथ में वज्रयानियों का प्रभाव बढ़ा, फलस्वरुप वहां बोधिसत्वों और देवियों की पूजा बढ़ी। इस प्रकार क्रमशः शैव, शाक्तों और वज्रयानियों का भेदभाव कम होने लगा। परिणामस्वरूप बौद्ध भी शैव और शाक्त प्रतिमाएं स्थापित करने लगे। इस संदर्भ में सारनाथ से प्राप्त स्थिरपाल एवं बसन्तपाल का १०२६ ई. का लेख उल्लेखनीय है जिसमें महीपाल के बौद्ध होने के बाद भी ईशान एवं चित्रघंटा के मंदिर बनवाने का उल्लेख है।[१५] मध्यकाल में सारनाथ और नगर में तांत्रिक प्रभाव के फलस्वरूप अनेकशः उग्र स्वरूपों वाली देव मूर्तियों का निर्माण हुआ।

काशी पर गहड़वाल वंश का आधिपत्य अत्यन्त महत्वपूर्ण था। गहड़वाल शासकों ने काशी को एक बार पुनः उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का प्रयास किया। गहड़वाल शासकों के शासनकाल में अनेक विहारों, चैत्यों एवं स्तूपों का निर्माण हुआ। गहड़वाल नरेश गोविन्दचंद्र (१११४ से ११५४ई.) का अधिकांश समय मुसलमानों के आक्रमण से काशी की रक्षा करने में बीता। कुमार देवी के सारनाथ लेख से स्पष्ट है कि गोविन्दचंद्र ने सारनाथ में एक बौद्ध विहार की स्थापना करायी थी तथा ग्रीष्मकाल में भिक्षुओं के लिए एक विश्रामशाला का निर्माण भी कराया था। इस विश्रामशाला में गोविन्दचंद्र द्वारा बुद्ध मूर्ति की स्थापना का संदर्भ मिलता है। गोविन्दचंद्र के समय काशी बौद्ध विद्वानों के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थी। गहड़वाल शासक चन्द्रदेव (१०९० से १११० ई.) ने गंगा - वरुणा संगम घाट पर विशाल और भव्य आदिकेशव मंदिर का निर्माण कराया था जिसका परवर्ती संशोधित रूप आज भी द्रष्टव्य है। गहड़वाल शासकों के काल में काशी में अनेक मंदिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ। यद्यपि वर्तमान में कन्दवा के कर्दमेश्वर मंदिर को छोड़कर अन्य सभी गहड़वालकालीन मंदिर नामशेष हो चुके हैं किन्तु तत्कालीन मूर्तियों के प्रचुर उदाहरण विभिन्न स्थानीय संग्रहालयों एवं वाराणसी के परवर्ती मंदिरों में सुरक्षित हैं। मुहम्मदगोरी के आक्रमण के कारण १२वीं शती ई. के अन्तिम दशक में गहड़वाल वंश का अंत हो गया।

गहड़वाल युगीन काशी में वेदों, स्मृतियों और पुराणों के पठन - पाठन पर विशेष ध्यान दिया जाता था। समाज में ब्राह्मणों का सम्मानजनक स्थान था। शिव की निवास स्थली काशी में गंगातट के घाटों को सम्पूर्ण तीर्थों में श्रेष्ठ माना जाता था। इस काल के घाटों, मंदिरों, मूर्तियों एवं तीर्थों का उल्लेख **कृत्यकल्पतरु** तथा **प्रबोधचन्द्रोदय** के अतिरिक्त गहड़वाल शासकों के दानपत्रों में भी हुआ है। गहड़वाल लेखों में मुख्यतः आदिकेशव, वेदेश्वर, ज्ञानेश्वर, कपालमोचन, त्रिलोचन एवं लोलार्क घाटों का उल्लेख हुआ है। नगर का प्रमुख धर्म शैव - धर्म था। इस काल में पर्याप्त संख्या में शैव मंदिरों का निर्माण हुआ था। विश्वनाथ का सर्वप्रथम उल्लेख गहड़वाल लेख में मिलता है। काशी में शैव धर्म की प्रधानता होते हुए भी वैष्णव धर्म का बहुत आदर था। नगर में विभिन्न धर्मावलम्बियों को धार्मिक स्वतंत्रता एवं राज्य द्वारा सभी धर्मों को समान अधिकार प्राप्त थे। गहड़वाल नरेश गोविन्दचंद्र के लेख से तत्कालीन नगर के कुछ शैव और वैष्णव मंदिरों की सूचना मिलती है। गहड़वाल युग में निर्मित बौद्ध प्रतिमाओं से स्पष्ट है कि वज्रयान सम्प्रदाय अपनी प्रखरता को प्राप्त करने के बाद पतन की ओर उन्मुख था। इस युग में काशी एक प्रमुख तीर्थ के रूप में स्थापित हो चुकी थी।

११ वीं - १२ वीं शती में काशी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का सबसे बड़ा नगर था। मुहम्मद गोरी के आक्रमण के बाद काशी की महत्ता और भी बढ़ गई क्योंकि समस्त उत्तर भारत से भारतीय धर्म और संस्कृति के रक्षक- प्रवर्तक - पंडित आकर वाराणसी में बस गये। अलबरूनी ने काशी को स्मार्त धर्म का प्रमुख केन्द्र बताया है जहां प्रायः सम्पूर्ण भारत से सन्यासी

१५- आर्कियोलाजीकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट, १९०३-०४, पृ. २२१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकर बसते थे।[१६] गणपति कृत **माधवानल कामकंदला** (१५२८ ई.) नामक ग्रन्थ में तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति का वर्णन मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में नगर की आर्थिक समृद्धि एवं राजा और प्रजा के अच्छे संबंधों का विवरण भी दिया गया है। अलबरूनी ने ११वीं शती ई. में काशी को कश्मीर के समान संस्कृति, ज्ञान - विज्ञान और शिक्षा का केन्द्र बताया है।

वाराणसी के मंदिरों एवं मूर्तियों के विनाश में मुसलमानों का विशेष हाथ रहा है। कुतुबुद्दीन (१११७ई.) के एक अधिकारी ने बनारस से मूर्तिपूजा को हटाने का पूरा प्रयत्न किया था। गुलामवंश के शासकों के समय काशी के मंदिरों को खंडित कर उनके अवशेषों से मस्जिदें बनवाने का भी उल्लेख मिलता है जिसमें वर्तमान दारानगर के समीप हनुमान फाटक मुहल्ले के रास्ते पर ढाई कंगूरे की मस्जिद प्रमुख है। इस मस्जिद का निचला भाग हिन्दू मंदिरों के ध्वंसावशेषों से बना है जिसका गुंबद दर्शनीय है। इस मस्जिद की दूसरी मंजिल पर ११९०ई. का संस्कृत में एक लेख है जिसमें कुछ मंदिरों एवं अन्य स्मारकों के बनने का उल्लेख है। मोतीचन्द्र ने चौखम्भा मुहल्ले की चौबीस खम्भों वाली मस्जिद को भी इसी युग का बताया है। हिन्दू मंदिरों के अवशेषों से मस्जिदों के निर्माण किये जाने के उदाहरण काशी में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। गुलजार मुहल्ले में मकदूम साहब नामक कब्रगाह की उत्तर पश्चिम की ओर वाली दालानें और भदऊ मुहल्ले की मस्जिद हिन्दू मन्दिरों के स्तम्भों से बनी हैं। इसी प्रकार राजघाट के एक मस्जिद के दालान के स्तम्भ भी गहड़वालयुगीन हैं। ज्ञानवापी की मस्जिद भी वस्तुतः गहड़वालकालीन स्थापत्यगत ध्वंसावशेषों पर ही बनी है। काशीवासियों का धार्मिक विश्वास अटूट था, परिणामस्वरुप मुस्लिम आघातों को सहते हुए भी यहां के लोग मंदिरों के पुनर्निर्माण एवं नवनिर्माण को अक्षुण्ण बनाए रख सके। फलस्वरूप १३ वीं शती ई. तक वाराणसी में मंदिर पुनः शोभा बढ़ाने लगे। काशी के नागरिकों की धार्मिक आस्था का प्रमाण अलाउद्दीन खिलजी जैसे कट्टर मूर्ति पूजन विरोधी शासक के समय पद्म साधु द्वारा पद्मेश्वर नामक विशाल मन्दिर और वीरेश्वर नामक व्यक्ति द्वारा मणिकर्णेश्वर मन्दिर के निर्माण से मिलता है।[१७]

१३९४ ई. में काशी शर्की सुल्तानों के अधीन हो गई। शर्की शासक इस्लाम धर्म के प्रसारक थे। परिणामस्वरूप उन्होंने कई मस्जिदों का निर्माण कराया। इन मस्जिदों के निर्माण के लिए पत्थर के स्तम्भ एवं अन्य सामग्रियां काशी के मंदिरों को नष्ट कर लें जाई गईं। इस तथ्य की पुष्टि जौनपुर के लाल दरवाजा मस्जिद में लगे एक शिलालेख से भी होती है। प्रस्तुत लेख काशी के पद्मेश्वर मंदिर का एक शिलालेख है।[१८] लेख से यह भी ज्ञात होता है कि १४४७ ई. के आस - पास काशी का पद्मेश्वर मंदिर खंडित किया गया। शर्की वंश के पश्चात् लोदी वंश का आधिपत्य स्थापित हुआ। लोदी वंश के शासक सिकंदर लोदी द्वारा पन्द्रहवीं शती ई. में काशी के सभी मंदिरों को खंडित करने का उल्लेख मिलता है। इस विनाश ने काशीवासियों को अपने धर्म के प्रति अत्यन्त निराश कर दिया। काशी का विश्वेश्वर मंदिर भी इस समय खण्डहर के रूप में रह गया था। काशी में मंदिरों के विध्वंश का विवरण **त्रिस्थली सेतु** (१६वीं शती ई.) तथा **वीर मित्रोदय** (१७वीं शती ई.) में भी दिया गया है।

१४ वीं शती ई. के प्रारंभ से काशी के धार्मिक क्षेत्र में विशेष परिवर्तन हुआ। तत्कालीन समाज में रामानन्द और कबीर जैसे सन्तों का आगमन हुआ। रामानन्द भक्तिमार्ग की सगुण उपासना के प्रबल प्रवर्तक थे जिन्होंने जाति - पांति का भेद समाप्त कर भक्ति का मार्ग सभी के लिए खोल दिया और समाज में चरित्र के उच्चतम आदर्श की स्थापना की दृष्टि से मानव चरित्र के प्रतिमान राम - सीता - लक्ष्मण को अपना आराध्यदेव बनाया। दूसरी ओर निर्गुण उपासना के प्रवर्तक कबीर ने मंदिर निर्माण और मूर्ति पूजा का विरोध किया। हिन्दू हो या मुसलमान दोनों के धर्मों ने रामानन्द, कबीर और रैदास की परम्परा के अन्तर्गत समान महत्व प्राप्त किया। इसी परम्पराक्रम में बल्लभाचार्य का काशी में उदय हुआ जिनके द्वारा काशी में विशुद्धाद्वैत सम्प्रदाय का प्रारंभ हुआ। १४ वीं से १६वीं - १७वीं शती ई. के मध्य रामानन्द, कबीर, तुलसीदास, रैदास, बल्लभाचार्य जैसे सन्तों का काशी में प्राकट्य हुआ। इसके उपरान्त काशी में और भी अनेक महात्माओं, सन्तों तथा धर्म प्रवर्तकों का प्रादुर्भाव हुआ। यद्यपि इन सन्तों और

१६-ई० सी० सचाउ, अल्बेरुनीज 'इण्डिका, भाग '- १-२, लेन्दन, १८८८, पृ. २२,१४६-४७,१७३.
१७- कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पटना, १९७७, पृ २६।
१८- कुबेरनाथ सुकुल, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. २८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मप्रवर्तकों के संबंध में कुछ स्पष्ट ज्ञात नहीं है किन्तु इतना स्पष्ट है कि काशी इस युग में सनातन धर्म का प्रधान केन्द्र थी। इसी क्रम में चैतन्य और नानक के नाम भी मिलते हैं जिन्होंने काशी में अपने मतों का प्रतिपादन किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि विपरीत परिस्थितियों में भी काशी का धार्मिक और सांस्कृतिक विकास चलता रहा जिसका राष्ट्रीय स्तर पर अग्रगामी योगदान रहा है।

मुगल शासकों का भारत में लम्बे समय तक शासन रहा। मुगल शासकों में अकबर (१५५६ - १६०५ ई.) का नाम सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में सहृदयता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। इस्लाम धर्म का अनुयायी होने के बाद भी अकबर की धार्मिक सहिष्णुता उसके 'दीन इलाही' धर्म के प्रवर्तन से स्पष्ट है। यही कारण है कि अकबर के शासन काल में हिन्दुओं को अपने धर्म को पुनः स्थापित करने का अवसर मिला। फलतः उसके काल में मंदिरों का पुनर्निर्माण होने लगा। इसी श्रृंखला के अन्तर्गत काशी के विश्वेश्वर और बिंदुमाधव मंदिरों का भी पुनरुद्धार हुआ। ऐसा माना जाता है कि बिन्दुमाधव मंदिर का निर्माण जयपुर के राजा मानसिंह और विश्वेश्वर मंदिरं का निर्माण १६वीं शती ई. में राजा टोडरमल ने अपने गुरु नारायण भट्ट के आग्रह पर करवाया था। अकबर के राज्य काल में काशी में एक अंग्रेज यात्री राल्फ फिच आया था। राल्फ फिच ने १६वीं शती ई. के अंत में बनारस का वर्णन अपने यात्रा विवरण में किया है। फिच के यात्रा विवरण से ज्ञात होता है कि आरम्भिक १६वीं शती ई. की कठिनाईयों से काशी उबर चुकी थी और पुनः अपने धार्मिक जीवन के उन्नयन में निःशंक होकर जुट गयी थी। अंग्रेज यात्री ने तत्कालीन काशी में वस्त्रों के व्यापार के अत्यन्त उन्नत होने का उल्लेख किया है। उसने काशी को बंगाल से होने वाले व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र बताया है। फिच ने काशीवासी हिन्दुओं द्वारा मूर्तियों की पूजा का भी उल्लेख किया है। उसने काशीवासियों के धार्मिक जीवन के कई अन्य पक्षों के भी विवरण प्रस्तुत किये हैं।

मुगल शासक जहांगीर ने अपने शासनकाल में आगा नूर नामक एक उमराव को जौनपुर भेजा था। इस उमराव द्वारा काशी के महाजन और व्यापारियों पर अत्याचार करने के संदर्भ मिलते हैं।

मुगल शासक अकबर और जहांगीर के राज्यकाल में राजा मानसिंह द्वारा काशी में कई घाटों और मंदिरों के निर्माण का संदर्भ मिलता है। शेरिंग ने भी राजा मानसिंह द्वारा बनारस में बनवाये गये मंदिरों का उल्लेख किया है। राजा मानसिंह द्वारा निर्मित मानमंदिर घाट आज भी विद्यमान है जहां बाद में जयसिंह द्वारा एक वेधशाला का निर्माण करवाया गया। राजपूत शासकों का भी काशी से घनिष्ठ संबंध रहा है। इनमें बूंदी नरेश विशेषतः उल्लेखनीय हैं जिनके महलों के अवशेष आज भी राजमंदिर और शीतला घाटों के बीच स्थित हैं। तुलसीदास कृत **विनयपत्रिका** में काशी को पवित्र नगरी बताया गया है जहां वैदिक धर्म का पालन होता था। प्रस्तुत रचना में तुलसीदास ने दण्डपाणि भैरव, लोलार्ककुण्ड, त्रिलोचन घाट, कर्णघंटा, मणिकर्णिका आदि का वर्णन किया है। इस समय काशी में पंचक्रोशी यात्रा का विशेष महत्व था।[१९] यद्यपि तुलसीदास राम के आराधक थे किन्तु उन्होंने काशी में शैवधर्म के प्राबल्य का उल्लेख किया है जो उनकी कालातीत कृति **रामचरितमानस** में राम द्वारा शिव को इष्टदेव मानने और शिवलिंग पूजा के सन्दर्भों से स्पष्ट है। यह दूसरी बात है कि समन्वय की प्रक्रिया में स्वयं शिव भी राम को अपना इष्टदेव मानते हैं।

मुगल शासक शाहजहां के राज्यकाल में भी काशी के मंदिरों को खण्डित करने के सन्दर्भ मिलते हैं। इस प्रक्रिया में पूर्ण और अपूर्ण दोनों ही वर्गों के मंदिर नष्ट किये गये। मंदिरों के विध्वंस का काशी की जनता द्वारा विरोध किये जाने का भी उल्लेख मिलता है। शाहजहां के काल में अंग्रेज यात्री पीटर मंडी के काशी आने का उल्लेख मिलता है जो काशी के नागरिकों, इमारतों, पतली घुमावदार सड़कों को देख कर अत्यन्त प्रभावित हुआ था।[२०] पीटर मण्डी ने विश्वनाथ मंदिर और उसमें स्थापित शिवलिंग का भी वर्णन किया है। इसके साथ ही उसने काशी में सुंदर गणेश, चतुर्भुज विष्णु और देवी के मंदिरों का भी उल्लेख किया है। प्रस्तुत यात्री ने अपने यात्रा वर्णन में काशी के अखाड़ों, श्मशानों एवं साधुओं का विवरण भी दिया है।

औरंगजेब का शासनकाल काशी के धार्मिक इतिहास में अच्छा नहीं था। उसके काल में मंदिर क्षतिग्रस्त किये

---

१९ - विनय पत्रिका (सं० वियोग हरि), काशी, सम्वत् १९९२, पृ. १०३-०४।
२० - पीटरमंडी, दि ट्रेवेल्स ऑफ पीटर मंडी, भाग -२, लन्दन, १९१४, पृ. १७८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गये तथा हिन्दुओं के सांस्कृतिक संस्थाओं को भी नष्ट किया गया। काशी के मंदिरों को खंडित करने से संबंधित औरंगजेब के कुछ फरमान भी उपलब्ध हैं।[२१] काशी में औरंगजेब के काल में कई मस्जिदों का निर्माण तत्कालीन मंदिरों के ध्वंसावशेषों पर किया गया। इस संदर्भ में विश्वेश्वर मंदिर को तोड़कर धरहरे वाली मस्जिद और कृतिवासेश्वर मंदिर तोड़कर आलमगीरी मस्जिद के बनने के सन्दर्भ मुख्य हैं। इस धार्मिक उथल - पुथल के दौरान काशी में अनेक सन्त महात्माओं ने भक्तिमार्ग के साहित्य सर्जन एवं उपदेशों द्वारा हिन्दुओं को संगठित रखने तथा समाज में सद्भाव बनाये रखने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में नगर में अनेक मंदिरों के निर्माण एवं पुनर्निर्माण हुए।

औरंगजेब के शासनकाल में फ्रांसिसी यात्री बर्नियर, तावेर्नियें (क्रमशः १६६० ई. एवं १६६५ई.) आदि के काशी आगमन का उल्लेख मिलता है। इन फ्रांसिसी यात्रियों ने अपने यात्रा विवरण में विश्वनाथ और बिन्दुमाधव के मंदिरों की विद्यमानता का उल्लेख किया है। इन यात्रियों ने काशी में संस्कृत का पठन - पाठन होने, नगर के समुन्नत व्यापार, सुव्यवस्थित नगर और ऊंची इमारतों तथा संकरी गलियों का भी उल्लेख किया है। १८वीं शती ई. में काशी के प्रबंध की जिम्मेदारी मीर रुस्तमअली पर आई जिनके द्वारा काशी में घाटों के कुछ भागों और किले के निर्माण का उल्लेख मिलता है। काशी का प्रसिद्ध बुढ़वा मंगल मेला भी मीर रुस्तमअली द्वारा ही प्रारंभ किया गया था। मीर रुस्तमअली के साथ ही काशी के सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति में एक ठहराव सा दिखाई देता है।

मराठों के काल (१८ वीं शती ई.) के धार्मिक उन्नयन का प्रमाण भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी -नारायण और रघुराजेश्वर तथा आदिकेशव घाट स्थित मन्दिर समूह हैं। इस समय पुराने मंदिरों का जीर्णोद्धार तथा पुनर्निर्माण होने लगा। इस कार्य में इंदौर की महारानी अहिल्याबाई तथा प्रायः सभी मुख्य मराठा सरदारों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, कालभैरव, त्रिलोचन तथा साक्षी विनायक के वर्तमान मंदिर तथा गंगा के बहुत से घाट इन्हीं लोगों ने बनवाये। ज्ञानवापी के समीप का मुक्तिमण्डप भी इन्हीं की कृति है। दुर्गा का प्रसिद्ध मंदिर, तारकेश्वर का शिवालय, कुरुक्षेत्र तथा मत्स्योदरी संगम के पक्के तालाब बंगाल की रानी भवानी ने बनवाये।

इस प्रकार शताब्दियों के राजनीतिक और सांस्कृतिक उतार - चढ़ाव और परिवर्तनों के बाद भी सांस्कृतिक सद्भाव और सातत्य काशी की अपनी विशिष्टता रही है जो स्वतः स्फूर्त और हिन्दू मानस की पहचान है। आज भी काशी धर्म और आध्यात्मिकता तथा सांस्कृतिक मूल्यों की व्यापक समन्वयात्मक दृष्टि के साथ जीवित है।

---

२१ - औरंगजेब के मंदिरों से संबंधित फरमानों के उदाहरण स्थानीय भारत कला भवन, वाराणसी एवं जंगमबाड़ी मठ में देखे जा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वितीय अध्याय

काशी के मंदिर

काशी प्राचीनकाल से ही विभिन्न धर्मों की साधना स्थली रही है जिसके फलस्वरूप यहां विभिन्न धर्मों से संबंधित देवालयों का निर्माण हुआ। पुरातात्विक प्रमाणों में गुप्तकाल से काशी में देवालयों या मंदिरों के निर्माण की परम्परा मिलती है जिसके उदाहरण सारनाथ स्थित धमेख स्तूप और वाराणसी मंडल के भीतरी ग्राम (गाजीपुर) स्थित स्कन्दगुप्त के काल के विष्णु मंदिर के रूप में देखे जा सकते हैं। काशी में शिव की प्रधानता के बाद भी सर्वधर्म समन्वय की प्रवृत्ति के कारण विष्णु, शक्ति, गणेश, सूर्य जैसे प्रमुख ब्राह्मण देवों और जैन धर्मों से संबंधित मंदिरों का पर्याप्त संख्या में निर्माण हुआ।[१] साथ ही लोकपूजन की बलवती धारा के फलस्वरूप यहां यक्ष, नाग एवं मातृपूजन लोकप्रिय था और उनकी उपासना से संबंधित देवगृहों का भी नगर में निर्माण हुआ। काशी के विभिन्न क्षेत्रों में कुषाण - गुप्तकाल से निरन्तर १२ वीं शती ई. तक की बिखरी हुई अपार मूर्ति सम्पदा इस अवधि में बनने वाले मंदिरों की स्वयं साक्षी है। किन्तु दुर्भाग्य से अरब, तुर्क, गुलाम, खिलजी और मुसलमान शासकों के काल में काशी के मंदिरों को कई बार क्षतिग्रस्त किया गया जिसके फलस्वरूप वर्तमान में १२ वीं शती ई. के पूर्व का कोई भी मंदिर यहां सुरक्षित नहीं है। १२ वीं शती ई. का शिव को समर्पित कन्दवा स्थित कर्दमेश्वर मंदिर गहड़वालकालीन मंदिरों का अकेला शेष उदाहरण है। इसके बाद १८ वीं शती ई. के पूर्व का कोई भी सुरक्षित मंदिर काशी में नहीं मिलता है। कर्दमेश्वर मंदिर की स्थापत्यगत विशेषता, शिखर और मंदिर के निर्माणकाल के बाद की १३ वीं - १४ वीं शती ई. की मूर्तियां इस बात का संकेत देती हैं कि इस मंदिर को भी क्षतिग्रस्त किया गया था जिसका बाद में जीर्णोद्धार किया गया।

काशी के वर्तमान मंदिर १८ वीं के से २० वीं शती ई. के मध्य के हैं जिनका स्थापत्य पूर्ववर्ती प्रचलित शैलियों पर आधारित है। इन मंदिरों में अधिकांश शिव को समर्पित हैं किन्तु विष्णु, शक्ति, सूर्य, गणेश, हनुमान और जैन तीर्थंकरों को समर्पित मंदिरों की संख्या भी पर्याप्त है। शिव को समर्पित काशी के मंदिरों में कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा), काशी विश्वनाथ मंदिर (काशी विश्वेश्वर - १७७५ - ८० ई., विश्वनाथगली), समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर - १८४३ ई., ललिताघाट), केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट), शिव मंदिर एवं अमेठी शिव मंदिर (मणिकर्णिका), रघुराजेश्वर मन्दिर (भोंसलाघाट), रामेश्वर मन्दिर (१९वीं शती ई., विश्वनाथगली), कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा), रामेश्वर मंदिर (रामेश्वर, पंचक्रोशी मार्ग), महामृत्युञ्जय मंदिर (दारानगर), सोरईया महादेव मंदिर (भैरवनाथ), कालभैरव मंदिर (भैरवनाथ), पंचमेश्वर महादेव मंदिर (सूर्यकुण्ड), शिव मंदिर एवं ध्रुवेश्वर मंदिर (नई सड़क), त्र्यम्बकेश्वर महादेव मंदिर (बड़ादेव), पंचाक्षेश्वर, महाकालेश्वर एवं ओंकारेश्वर मंदिर (त्रिलोचन), त्रिलोचन महादेव मंदिर एवं कामेश्वरनाथ मंदिर (मत्स्योदरी), नागनाथ, मोक्षेश्वर एवं वीर भद्रेश्वर मंदिर (पंचक्रोशी मार्ग), शिव मंदिर (राजमंदिर), गौरी शंकर मंदिर (गोप्रेक्षेश्वर), शिव मंदिर (तिलभाण्डेश्वर), पंचायतन शिव मंदिर (अस्सी एवं दुर्गाकुण्ड), शिव बृहस्पतेश्वर मंदिर (दशाश्वमेध - १७७२ ई.) एवं दक्षिण भारतीय शैली में निर्मित काशी कामकोटीश्वर मंदिर (हरिश्चन्द्र घाट - २० वीं शती ई.) मुख्य हैं।

विष्णु मंदिरों में आदिकेशवघाट स्थित आदिकेशव मंदिर समूह, भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण मंदिर, शंकुधारा स्थित द्वारिकाधीश मंदिर, पंचगंगा घाट स्थित

१- द्रष्टव्यः वी० एस० अग्रवाल, स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५, पृ . २६९ - ७०; टी ० पी ० वर्मा, 'दी टेम्पुल्स ऑफ बनारस', भारती - राजबली पाण्डेय स्मृति अंक, खंड १५, १९७१-८४, पृ. १९४-२०५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बिन्दुमाधव मंदिर, मानसरोवर एवं संकटमोचन स्थित राम मंदिर, अस्सी स्थित लक्ष्मी - नारायण मंदिर (१९वीं शती ई.), बद्रीनारायण घाट स्थित बद्री - नारायण मंदिर मुख्य हैं। देवी मंदिरों में अन्नपूर्णा मंदिर (विश्वनाथगली एवं राजमंदिर), शीतला मदिर (दशाश्वमेधघाट, प्रहलादघाट, राजमंदिर एवं भैरवनाथ), मोक्षलक्ष्मी मंदिर (केदारघाट), लक्ष्मी मंदिर (लक्ष्मीकुण्ड), मंगलागौरी मंदिर (मंगलागौरीघाट), गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी), दुर्गा मंदिर (दुर्गाकुण्ड एवं रामनगर, १९वीं शती ई.) भीमचण्डी मंदिर (पंचक्रोशी मार्ग - २० वीं शती ई.) प्रमुख हैं।

सूर्य मंदिरों में सूर्यकुण्ड स्थित सांबादित्य सूर्य मंदिर एकमात्र सूर्य मंदिर है। यद्यपि द्वादश आदित्यों के रूप में सूर्य को नगर के विभिन्न क्षेत्रों एवं मंदिरों में स्थान मिला है। गणेश के स्वतंत्र मंदिरों के स्थान पर विभिन्न विनायक पीठों में गणेश की विभिन्न स्वरूपों वाली मूर्तियां देहली विनायक मंदिर (देहली विनायक), पंचमुखी गणेश मंदिर (दो उदाहरण, विश्वनाथगली) एवं बड़ा गणेश जैसे सामान्य देवालयों में प्रतिष्ठित हैं। हनुमान मंदिरों में संकटमोचन, लालघाट, अक्षयवट (विश्वनाथगली), राजमंदिर स्थित मंदिर मुख्य हैं।

जैन मंदिरों में भदैनी स्थित सुपार्श्वनाथ मंदिर (तीन मंदिर - श्वेताम्बर एवं दिगम्बर) एवं भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ मंदिर (दो मंदिर- श्वेताम्बर, दिगम्बर) उल्लेखनीय हैं। पार्श्वनाथ के कुछ अन्य मंदिर मैदागिन, गोलघर, नरिया, खोजवां और राजघाट में भी देखे जा सकते हैं। ये मंदिर १८ वीं से २० वीं शती ई. के हैं।

काशी में धर्म समन्वय की अलौकिक परम्परा के कारण शिव मंदिरों के गर्भगृहों में शिवलिंग के अतिरिक्त न केवल विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति की मूर्तियां (पंचायतन पूजन) बनीं वरन् पंचदेव पट्टों तथा संघाट मूर्तियों के रूप में अर्धनारीश्वर, हरिहरपितामह (दत्तात्रेय) एवं हरिहरहिरण्यगर्भ मूर्तियां भी बनीं। इस परम्परा के कारण ही बिन्दुमाधव एवं मणिकर्णिका घाटों पर १९वीं - २० वीं शती ई. में दत्तात्रेय मंदिर बने।

काशी के मंदिर तलयोजना में सामान्यतः त्रिरथ, पंचरथ या सप्तरथ प्रकार के हैं जिनमें गर्भगृह, अन्तराल और वर्गाकार (चित्र ३,७,५) या आयताकार (चित्र १) अर्द्धमण्डप बने हैं। कुछ मंदिरों में आयाताकार अर्द्धमण्डप के बाद पश्चिम भारत के मध्यकालीन मंदिरो के समान सभामण्डप या रंगमण्डप भी दिखाये गये हैं (चित्र ३)। ऐसे मंदिरों में आदिकेशव स्थित आदिकेश्वर मंदिर (चित्र ४), भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण तथा रघुराजेश्वर मंदिर प्रमुख हैं। कुछ मंदिर वर्गाकार रूप में बने हैं जिनमें गर्भगृह के चारों ओर मण्डप और प्रवेशद्वार हैं। ऐसे मंदिरों में ललिताघाट स्थित समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर - १८४३ ई.) एवं दशाश्वमेध स्थित बृहस्पतेश्वर मंदिर (१७७२ ई.) मुख्य हैं। ये मंदिर सर्वतोभद्र परम्परा के मंदिर हैं। समराजेश्वर मंदिर में प्रवेशद्वार के अतिरिक्त शेष भाग ढंका हुआ है (चित्र ७) जबकि बृहस्पतेश्वर मंदिर में अर्द्धमण्डप चारों ओर से खुला हुआ है। रामनगर के पंचरथ प्रकार के वर्गाकार दुर्गा मंदिर में केवल गर्भगृह और अन्तराल भाग ही दिखाया गया है (चित्र ६)। उल्लेखनीय है कि काशी के अधिकांश मंदिरों के पंचायतन पूजन से संबंधित होने के कारण गर्भगृह में शिवलिंग और उसकी चारों भित्तियों पर विष्णु, सूर्य, शक्ति और गणेश की आकृतियों का अंकन हुआ है जिसके कारण गर्भगृह की परिकल्पना चौमुखी के रूप में की गई है और चारों दिशाओं में चार प्रवेशद्वार दिखाये गये हैं, इसके मुख्य उदाहरण १८ वीं - १९ वीं शती ई. के काशी विश्वेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली), नेपाली मंदिर, बृहस्पतेश्वर मंदिर, शिव मंदिर (गोदौलिया), दुर्गा मंदिर (रामनगर) एवं शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा) हैं।

काशी के वर्तमान मंदिरों में कंदवा का कर्दमेश्वर मंदिर प्राचीनतम है जो उत्तर भारत के नागर शैली के मध्यकालीन मंदिरों के अवसानकाल का एक मुख्य उदाहरण है। निरन्धार प्रकार के इस मंदिर में गर्भगृह, अन्तराल और आयताकार स्तंभों पर आधारित अर्द्धमण्डप देखे जा सकते हैं। काशी के १८ वीं से २० वीं शती ई. के परवर्ती मंदिरों में एक ओर उत्तर भारतीय शैली के मंदिरों की तलयोजना से संबंधित उपर्युक्त भाग दिखाये गये हैं और दूसरी ओर पश्चिम भारतीय मंदिरों के समान सभामण्डप और गर्भगृह के चारों ओर प्रवेशद्वार दिखाये गये हैं। सभामण्डप की दृष्टि से पश्चिम भारतीय मंदिरों में देलवाड़ा (१०३२-१२३० ई.) एवं कुंभारिया (११वीं - १३वीं शती ई.) के जैन मंदिर और मोढेरा का सूर्य मंदिर (१०२६ ई.) मुख्य हैं। काशी के मंदिरों के प्रवेशद्वारों के उत्तरंग और द्वारशाखाओं तथा सभामंडप एवं अन्य भागों के अर्द्धस्तंभ एवं स्तम्भों तथा वितानों पर यद्यपि पश्चिम भारतीय मंदिरों के समान सूक्ष्मता से उकेरे गये विभिन्न पुष्प अलंकरणों एवं ज्यामितीय नमूनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के उदाहरण नहीं मिलते किन्तु उनमें समकालीन परिवेश के अनुरूप तथा पूर्व परम्परा से संबंधित घटपल्लव, कीर्तिमुख, कीचक, बेलबूटों, मयूर आदि पक्षियों के अलंकरण देखे जा सकते हैं। स्तम्भों को सामान्यतः बहुकोणीय दिखाया गया है। इस दृष्टि से भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी -नारायण मंदिर और शिव मंदिर (गोदौलिया, पीताम्बरपुरा एवं अस्सी) उल्लेखनीय हैं। २० वीं शती ई. का कामकोटीश्वर मंदिर (हरिश्चन्द्रघाट) दक्षिण भारतीय शैली का मंदिर है जिसमें सामने की ओर तंजौर के बृहदीश्वर, मदुरई के मीनाक्षी एवं चिदम्बरम के नटराज मंदिरों के समान गोपुरम बना है। गोपुरम पर चोल - पाण्ड्य शैलियों के समान चतुर्भुज वैष्णव एवं शैव द्वारपाल तथा अन्य आकृतियां उकेरी हैं। गोपुरम के पश्चात् विशाल मण्डप और गर्भगृह बने हैं।

१९ वीं शती ई. के अस्सी और दुर्गाकुण्ड (रेणुकादेवी मंदिर के समीप) स्थित शिव मंदिर पंचायतन मंदिर हैं जिनमें केन्द्रीय मंदिर की जगती के चार कोणों पर ओसियां और खजुराहो के पंचायतन मंदिरों के समान चार छोटी देवकुलिकायें भी बनी हैं। ये मंदिर पंचायतन शैली के मंदिरों के निर्माण की पूर्व परम्परा की निरन्तरता को दरशाते हैं।

सम्मुख योजना में पीठ या जगती पर निर्मित मंदिरों में उत्तर भारतीय मंदिरों के समान अधिष्ठान, मण्डोवर या जंघा, वरण्डिका और आमलक एवं कलश तथा शीर्षस्थ भाग में त्रिशूल (शिव) या चक्र (विष्णु एवं शक्ति - रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर) से युक्त शिखर देखे जा सकते हैं। काशी के मंदिरों की शिखर योजना में अंगशिखरों की योजना की विविधता विशेषतः द्रष्टव्य है। समराजेश्वर एवं बृहस्पतेश्वर मंदिरों में केन्द्रीय शिखर के अतिरिक्त चार कोणों पर चार स्वतंत्र शिखरों के माध्यम से संभवतः पंचायतन मंदिर का भाव प्रकट करने की चेष्टा की गई है (चित्र ७)। समराजेश्वर, बृहस्पतेश्वर एवं दुर्गा (रामनगर) मंदिरों के अलग - अलग शैली के शिखरों के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणों में नागर शैली के कोणाकार शिखरों का निर्माण हुआ है जिनमें अंगशिखरों की अलग - अलग रचना (भद्र, अनुरथ, प्रतिरथ, कर्णरथ) देखी जा सकती है जो एक के ऊपर एक कुछ इस रूप में बने हैं कि तिरछी रेखाओं की दृष्टि से त्रिभुजाकार दिखाई देते हैं (चित्र २,३)। १८वीं से २० वीं शती के उदाहरणों में अर्धमण्डप की छतें सपाट और बिना शिखर के दिखायी गयी हैं। केवल मणिकर्णिका घाट स्थित शिव मंदिर (गंगा में आधा धंसा) में अर्द्धमण्डप के शिखर में पश्चिम तथा मध्य भारतीय शैली की पिरामिड जैसी कई छोटे - छोटे समानान्तर अंगशिखरों में विभक्त शिखर योजना बहुत सुन्दर बन पड़ी है जो मोढेरा के सूर्य मंदिर (१०२६ ई.), नागदा के सास - बहू, पाटण के सोमनाथ और राणकपुर (१५ वीं शती ई.) के जैन मंदिरों के शिखरों का स्मरण कराती है। इस मंदिर में नागर शैली के उत्तर भारतीय मंदिरों की अंगशिखरों से युक्त गर्भगृह की शिखर योजना तथा अर्द्धमण्डप की छोटे अंगशिखरों की समानान्तर योजना दो अलग - अलग स्थापत्य शैलियों का सामंजस्य दरशाता है, जिसके पूर्ववर्ती उदाहरण मध्य प्रदेश के उदयपुर स्थित नीलकण्ठेश्वर मंदिर और ग्वालियर स्थित सास मंदिर (११ वीं शती ई.) में देखे जा सकते हैं।

कर्दमेश्वर मंदिर की शिखर योजना में अंगशिखरों की सीमित क्रमबद्ध लम्बवत् योजना खजुराहो के १२वीं शती ई. के दूलादेव मंदिर के समानान्तर है। त्रिलोचन स्थित ओंकारेश्वर मंदिर तथा आदिकेशव मंदिर स्थित चिन्ताहरण गणेश मंदिर (१९ वीं शती ई.) में प्रत्येक दिशा में गर्भगृह पर क्रमश- तीन और सात अंगशिखर कुछ इस प्रकार बने हैं कि अंगशिखरों की सीमित योजना शिखरों को सादा किन्तु मनोहारी बना देती है। अंगशिखरों की सर्वाधिक जटिल योजना भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण मंदिर में देखी जा सकती है जिसमें मध्यवर्ती चार अंगशिखरों के दोनों पार्श्वों में एक के ऊपर एक क्रमशः आठ, छः और चार अंगशिखरों की योजना दिखाई देती है। इस प्रकार प्रत्येक दिशा की पार्श्ववर्ती १८ और मध्यवर्ती चार शिखरों सहित कुल २२ अंगशिखर बने हैं । अन्य उदाहरणों में या तो यही योजना है या फिर मध्यवर्ती चार अंगशिखरों के दोनों ओर एक के ऊपर एक क्रमशः छः, चार और दो अंगशिखरों का संयोजन किया गया है। रामनगर के दुर्गा मंदिर की शिखर रचना में मध्यवर्ती दो मुख्य अंगशिखरों के अतिरिक्त शिखर का सम्पूर्ण भाग भुवनेश्वर (उड़ीसा) के मंदिरों के पीढ़ा देउल की शिखर योजना के समान हैं। समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर) की शिखर रचना नेपाल के पगोडा (धरहरा) शैली की शिखर रचना के समान है जिसमें त्रितलीय योजना में तीसरा तल छोटे वर्गाकार रूप में चारों ओर छाजन सहित बना है जिसके ऊपर चार कोणों पर बने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चार छोटे शिखरों के मध्य में मुख्य शिखर देखा जा सकता है। सान्धार शैली के इस मंदिर में गर्भगृह तथा मण्डप दोनों में चारों ओर चार - चार प्रवेशद्वार हैं। निर्माण की दृष्टि से यह नेपाली मंदिर काठमाण्डु स्थित पशुपतिनाथ मंदिर की अनुकृति प्रतीत होता है। बृहस्पतेश्वर मंदिर के ऊपर क्रमशः छोटी होती गई त्रितलीय योजना में दूसरे तल पर चार कोनों पर चार देवकुलिकायें बनी हैं। तीसरे तल के ऊपर उड़ीसा की पीढ़ा देउल शैली की शिखर योजना देखी जा सकती है।

कंदवा के कर्दमेश्वर मंदिर के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में शिखर भाग पर मूर्तियां नहीं उकेरी गई हैं। साथ ही १८ वीं से २० वीं शती ई. के अधिकांश मंदिरों की जंघा भी सादी है जिसमें मूर्तियां नहीं बनी हैं। ज्ञातव्य है कि १५ वीं शती ई. के बाद के सभी क्षेत्रों के उदाहरणों में सामान्यतः मंदिरों की बाह्य भित्तियों पर मूर्तियों का उकेरन नहीं किया गया है। बाह्य भिति पर मूर्तियों के अंकन के उदाहरण काशी में केवल कर्दमेश्वर मंदिर, लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर, दुर्गा मंदिर (रामनगर), अमेठी शिव मंदिर (मणिकर्णिका) एवं समराजेश्वर मंदिर (केवल चारों ओर के प्रवेश - द्वारों पर) पर ही मिलते हैं। कुछ मंदिरों में स्तंभों पर भी अलंकरण एवं आकृतियों का अंकन मिलता है जिनमें रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली - काली, हनुमान, भैरव) और शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा) उल्लेखनीय हैं।

पंचगंगा घाट काशी में विष्णु से संबंधित महत्वपूर्ण घाटों में एक है। इसी कारण यहां वैष्णव मंदिरों की प्रधानता है। घाट एवं घाट के समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित सात मंदिरों में पांच विष्णु से तथा दो शिव से संबंधित हैं। घाट के सभी मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से सामान्य कोटि के और शिखर विहीन हैं। घाट के ऊपर एक मस्जिद (आलमगीर का धरहरा) भी है जो मूलतः विष्णु मंदिर (बिन्दुमाधव) था। अन्य मंदिर वर्तमान में १९वीं - २० वीं शती ई. के हैं। इनमें बिन्दुमाधव और रामानन्दाचार्य का मूलपीठ श्रीमठ तथा उसमें स्थित राममंदिर मुख्य हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि काशी के मंदिरों के निर्माण में मंदिर निर्माण की विभिन्न पूर्ववर्ती क्षेत्रीय शैलियों का अनुकरण किया गया है। तलयोजना में सभामण्डप और सम्मुख योजना में शिखरों की विविधतापूर्ण सज्जा एवं योजना विशेषतः ध्यातव्य है। मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों तथा कुछ अन्य दृष्टियों से महत्वपूर्ण मंदिरों की चर्चा के पूर्व विभिन्न ग्रन्थों एवं अभिलेखीय साक्ष्यों में काशी के मंदिरों से संबंधित प्राप्त उल्लेखों का सन्दर्भ भी यहां प्रासंगिक होगा।

विभिन्न पुराणों से ज्ञात होता है कि काशी पहले विष्णु तीर्थ था जो बाद में शिव तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। ह्वेनसांग के यात्रा वृत्तान्त, पंथ के लेख (८वीं शती ई.) तथा चेदि, पाल एवं गहड़वाल शासकों के लेखों में आदिकेशव, विश्वनाथ (या विश्वेश्वर), ओंकारेश्वर, अघोरेश्वर, इन्द्र माधव, लोलार्क, कृत्तिवासेश्वर, सौर - नारायण, ईशानेश्वर, चित्रघंटा, भवानी जैसे मंदिरों के उल्लेख मिलते हैं। काशी के मंदिरों के विवरण की दृष्टि से **स्कन्दपुराण का काशीखण्ड, ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृत्यकल्पतरु** (१२ वीं शती ई.) **त्रिस्थली-सेतु** (ल. १५६० ई.), **मित्रप्रकाश** (मित्र मिश्र कृत, ल. १६२०ई.) मुख्य हैं। जैन ग्रन्थ **कल्पप्रदीप** या **विविधतीर्थकल्प** (१४वीं शती ई., जिनप्रभसूरि कृत) के वाराणसी कल्प में काशी के पार्श्वनाथ मंदिर का उल्लेख मिलता है।

कन्दवा के १२ वीं शती ई. के कर्दमेश्वर मंदिर के अतिरिक्त काशी के अन्य मंदिर १७ वीं से २० वीं शती ई. के बीच और सर्वाधिक मंदिर १८ वीं - १९वीं शती ई. में बने। पूर्ववर्ती मंदिरों को गुलाम, खिलजी, लोदी और मुसलमान शासकों द्वारा नष्ट किया गया था। ऐसे शासकों में कुतुबुद्दीन ऐबक (१२वीं शती ई. का अंतिम चरण) और औरंगजेब (१७ वीं शती ई.) मुख्य थे। इस बात के स्पष्ट संकेत हैं कि विभिन्न मंदिरों के अवशेषों से काशी में कई मस्जिदों का निर्माण हुआ जिनमें ढाई कंगूरे की मस्जिद, चौखम्बा की २४ खम्भों वाली मस्जिद, ज्ञानवापी की मस्जिद और पंचगंगाघाट की धरहरे वाली मस्जिद उल्लेखनीय हैं। अंतिम दोनों मस्जिदें क्रमशः विश्वनाथ (या विश्वेश्वर) और बिन्दुमाधव मंदिरों को १७ वीं शती ई. में क्षतिग्रस्त कर बनाई गईं। अकबर, जहांगीर एवं मराठा शासकों के काल (१६ वीं - १८ वीं शती ई.) में विभिन्न मंदिरों का पुनर्निर्माण हुआ जिनसे संबंधित महत्वपूर्ण उल्लेख १७ वीं शती ई. के फ्रांसीसी एवं अंग्रेज पर्यटकों ने किये हैं। काशी में मंदिरों के निर्माण की दृष्टि से अकबर के समकालीन टोडरमल, मानसिंह और १८ वीं शती ई. में इंदौर की रानी अहिल्याबाई, बंगाल की रानी भवानी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा काशीराज चेतसिंह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। इसी अवधि में काशी के वर्तमान विश्वनाथ मंदिर (अहिल्याबाई), दुर्गाकुण्ड स्थित दुर्गा मंदिर (रानी भवानी), दशाश्वमेध स्थित बृहस्पतेश्वर मंदिर, आदिकेशव घाट स्थित आदिकेशव एवं संगमेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण तथा रघुराजेश्वर मंदिर एवं रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर बनें।[2]

मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों की दृष्टि से केवल कन्दवा का कर्दमेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण और रघुराजेश्वर मंदिर, आदिकेशव स्थित आदिकेशव एवं अन्य मंदिर, रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर, मणिकर्णिका स्थित अमेठी शिव मंदिर, विश्वनाथगली स्थित रामेश्वर मंदिर एवं ललिताघाट स्थित समराजेश्वर महादेव मंदिर ही महत्वपूर्ण हैं जिनकी मूर्तियों का संक्षेप में उल्लेख यहां आवश्यक है।

कर्दमेश्वर मंदिर

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से लगभग पांच किलोमीटर दूर कन्दवा ग्राम में (दक्षिण पश्चिम में) पंचक्रोशी मार्ग पर १२ वीं शती ई. का गहड़वालकालीन कर्दमेश्वर मंदिर स्थित है जो शिव को समर्पित हैं। अन्तराल एवं अर्द्धमण्डप से युक्त कर्दमेश्वर मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग प्रतिष्ठित है। पूर्वाभिमुख कर्दमेश्वर मंदिर के उत्तर की ओर एक विशाल सरोवर है जिसका निर्माण १८ वीं शती ई. के उतरार्द्ध में बंगाल की रानी भवानी ने कराया था।[3] इस मंदिर की तुलना खजुराहो के दूलादेव मंदिर से की जा सकती है। विशाल जगती पर स्थित मंदिर अधिष्ठान, जंघा, वरण्डिका तथा कई अंगशिखरों की संरचना वाले शिखर से युक्त है। मंदिर के प्रवेशद्वार पर गंगा - यमुना की सवाहन स्थानक मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ अन्य आकृतियां भी बनी थीं जिनके विवरण पर्याप्त खंडित होने के कारण स्पष्ट नहीं हैं। उत्तरंग पर ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियां उकेरी हैं। गर्भगृह के भीतर २० वीं शती ई. की सिंहवाहना पार्वती तथा गणेश की परवर्ती आकृतियां सुरक्षित हैं। इन आकृतियों के अतिरिक्त गर्भगृह की भित्ति सादी है। जंघा की भित्ति द्वितलीय है। केवल जंघा की रथिकाओं, प्रवेशद्वार और अन्तराल (भीतरी) की रथिकाओं में ही मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

मंदिर का प्रवेशद्वार ३' ५'' चौड़ा और ६' ऊंचा है। त्रिशाखा प्रकार का प्रवेशद्वार सामान्य शैली में पत्रलता, पद्म और पुष्प से अलंकृत है। प्रवेशद्वार का उदुम्बर भाग सादा है किन्तु उत्तरंग पर द्वार स्तम्भों के समान शाखाओं का अलंकरण मिलता है। मंदिर का अन्तराल भाग ८'x३' ६'' नापवाला है जो चार वर्गाकार स्तंभों पर आधारित है। अन्तराल के उत्तरी और दक्षिणी प्रकोष्ठों में अष्टभुजी महिषमर्दिनी एवं नृत्य गणपति (पर्याप्त खण्डित) की मूर्तियां बनी हैं। मंदिर का अर्द्धमण्डप आठ स्तंभों पर आधारित है जो चार - चार की संख्या में दो पंक्तियों में बने हैं। मंदिर का बाह्य भाग विशेष अलंकृत नहीं है। अधिष्ठान पर पांच रशनाओं का अलंकरण है जो क्रमशः सादा, खुर, कुंभ, कलश, कपोत और पट्टिका के रूप में है। मंदिर का मण्डोवर भाग केवल २' १०'' चौड़ा है जिसमें भद्र रथ (राहापग) के दोनों ओर क्रमशः दो प्रतिरथ और दो कर्णरथ बने हैं।

मंदिर की मूर्तियां ब्राह्मण देवताओं तथा लोकधर्म से जुड़े नाग - नागी से संबंधित हैं (चित्र ६१)। शिव मंदिर होने के कारण शिव मूर्तियों की प्रधानता दिखायी देती है। मंदिर पर शिव के स्वतंत्र स्वरूपों (पद्मासनस्थ शिव, नटराज, अन्धकारि-गजान्तक) के साथ ही उमा - महेश्वर (हर-गौरी) तथा अर्द्धनारीश्वर स्वरूपों की मूर्तियां भी उकेरी हैं। शिव के बाद विष्णु की सर्वाधिक मूर्तियां हैं जिनमें एकल तथा विभव स्वरूपों (वामन) और बलराम - रेवती का रूपायन हुआ है। शक्ति समुच्चय की प्रतीक महिषमर्दिनी की दो तथा सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की एक मूर्ति उत्कीर्ण है। दक्षिणी भित्ति पर केवल शिव की ही मूर्तियां बनी हैं जो शिल्प संयोजन की दृष्टि से अर्थपूर्ण है।

दक्षिणी भित्ति की चार मूर्तियों में तीन उमा - महेश्वर मूर्तियां हैं जिनमें शैली एवं लक्षणों की दृष्टि से खजुराहो की उमा-महेश्वर मूर्तियों का प्रभाव स्पष्ट है (चित्र १४)। शिव और उमा के पारम्परिक वाहनों (वृषभ एवं सिंह) एवं परिकर में गणेश, कार्त्तिकेय और शृंगी ऋषि तथा ब्रह्मा एवं विष्णु की आकृतियों के अंकन की दृष्टि से मूर्तियों की विविधता ध्यातव्य है। शिव की अन्य मूर्तियां उनके उग्र और संहारक स्वरूपों को व्यक्त करती हैं। इनमें नरमुण्डमाल से शोभित त्रिनेत्र शिव के ताण्डव नृत्य, योग - मुद्रा में त्रिशूल, लकुट, खट्वांग, घण्टा तथा दो हाथों से व्याख्यान-

२- मोतीचन्द्र, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. १८१ - ८८, १६८ -२०५, २१५-१८; कुबेरनाथ सुकुल, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. २६-३०, १४७-४८।
३- एल० के० त्रिपाठी, 'दी कर्दमेश्वर टेम्पुल ऐट कन्दवा', भारती, अंक ६, भाग १, १६६२ - ६३, पृ. १३३-५६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुद्रा व्यक्त करती लकुलीश (?) एवं अन्धकारि (चित्र १६) और गजासुर - संहार के संयुक्त भाववाली शिव आकृतियां निरूपित हैं। शैली की दृष्टि से ये तीनों ही मूर्तियां बाद में बनी प्रतीत होती हैं। इनका समय लगभग १४ वीं शती ई. हैं।

पश्चिमी भित्ति की भद्ररथिका (तलजंघा) में नटराज तथा उपरिजंघा की भद्ररथिका और वाम पार्श्व की रथिका में एकल विष्णु की दो चतुर्भुज स्थानक मूर्तियां उकेरी हैं। गदा, पद्म, चक्र एवं शंखधारी विष्णु का वाहन गरुड है और मूर्ति के परिकर में दशावतारों की आकृतियां भी बनी हैं। चौथी आकृति चतुर्भुज ब्रह्मा की है। उत्तरी भित्ति की तलजंघा की भद्ररथिका में अन्धकारि (गजान्तक मूर्ति के समान गजचर्म सहित) प्रत्यालीढ़ मुद्रा में रूपायित हैं जिनके ऊपर वामन की द्विभुज स्थानक मूर्ति देखी जा सकती है (चित्र २७)। इस प्रकार तीनों ओर की बाह्य भित्ति की भद्र - रथिकाओं में शिव का अंकन हुआ है जो शिव मंदिर की अवधारणा के अनुरूप है। उत्तरी भित्ति की अन्य महत्वपूर्ण आकृतियों में महिषिमर्दिनी, अर्द्धनारीश्वर तथा गुप्तशैली की मृदु शरीर रचना, ओज और केश - सज्जा वाली बलराम - रेवती की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं (चित्र ३३,४६)। मंदिर की जगती पर सुरक्षित गुप्तशैली की भावपूर्ण मुद्रा वाली गण आकृति भी उल्लेखनीय है जिसके उदर भाग पर शूकर मुख की रचना ध्यातव्य है (चित्र ६३)।

लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर

काशी के सांस्कृतिक एवं धार्मिक उन्नयन में पेशवा शासकों का उल्लेखनीय योगदान रहा है जिनके काल में काशी और पूना के घनिष्ठ संबंध थे। पेशवाओं से संबंधित १७३४-३५ ई. के कई पत्र भी यहां से मिले हैं। १८ वीं - १९ वीं शती ई. के मध्य काशी में कई मंदिरों एवं घाटों का निर्माण और पुनर्निर्माण कार्य इन शासकों द्वारा कराया गया जिनमें विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, कालभैरव, त्रिलोचन, साक्षी - विनायक, आदिकेशव मंदिर और भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण और रघुराजेश्वर मंदिर मुख्य हैं। इन मंदिरों में लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर मूर्ति शिल्प की दृष्टि से संर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं जिनका निर्माण १८ वीं शती ई. के अन्तिम चरण और १९ वीं शती ई. के पूर्वार्द्ध में हुआ। पूना की इंदिराबाई और गंगाधर राव ने इन मंदिरों का निर्माण करवाया था। एक परकोटे में स्थित दोनों मंदिर लगभग दो फीट ऊंचे आयताकार जगती पर स्थित हैं जिनके मुख्य भाग गर्भगृह, अन्तराल एवं स्तंभ युक्त मंडप हैं। सम्मुख योजना में अधिष्ठान, जंघा, वरण्ड और शिखर से युक्त मंदिर पूर्वाभिमुख हैं। दोनों ही मंदिरों पर अंगशिखरों का श्रृंखलाबद्ध संयोजन और उन पर सर्प आकृतियों का अंकन क्रमशः नागर शैली के मंदिरों की अंगशिखरों की जटिल योजना तथा लक्ष्मी - नारायण मंदिर के विष्णु को समर्पित होने के बाद भी काशी में शिव की प्रधानता का संकेत देते हैं। ज्ञातव्य है कि काशी के लगभग सभी शिव मंदिरों के शिखरों पर सर्प आकृतियों का अंकन हुआ है। मंदिर के मंडप पर निर्मित वरण्डिका का भीतरी भाग पौराणिक चित्रों से अलंकृत है।

लक्ष्मी - नारायण मंदिर (१७९५ ई.) विष्णु को और रघुराजेश्वर मंदिर (१९ वीं शती ई.) शिव को समर्पित हैं जिनमें क्रमशः लक्ष्मी - नारायण और शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं। रघुराजेश्वर मंदिर के गर्भगृह की भित्ति में एक शिलापट्ट भी है जिस पर अत्यन्त कलात्मक रूप से गुम्फित कुण्डलियों की रचना वाली सर्प आकृति उत्कीर्ण है (चित्र ६२) जो शिव से संबंधित होने के साथ ही काशी में नागपूजन की परम्परा के महत्व और प्राचीनता दोनों का साक्षी है। इस प्रकार के पूर्ववर्ती उदाहरण चालुक्य कलाकेन्द्र बादामी (सातवीं शती ई.) गुफा और राणकपुर के १५ वीं शती ई. के जैन मंदिर के वितानों पर देखे जा सकते हैं।

दोनों ही मंदिरों की मूर्तियों में विषयवस्तु की दृष्टि से समानता दिखाई देती है। इनपर विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित साधुओं और योगियों तथा कपिमुख हनुमान की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियां मुख्य देवाकृतियों की तुलना में लघु आकार वाली हैं जो उनके तुलनात्मक प्रतिष्ठा की भी सूचक हैं। इन मंदिरों पर जंघा के साथ ही शिखरों पर भी आकृतियां उकेरी हैं। अधिकांश आकृतियां छोटे आकार वाली हैं। रघुराजेश्वर मंदिर के ललाटबिंब में चतुर्भुज गणेश और उनके एक ओर ललितासीन षण्मुख कार्त्तिकेय तथा दूसरी ओर शक्ति सहित किसी ब्राह्मण देव एवं गजलक्ष्मी और मयूरासीन वीणाधारिणी सरस्वती, कालीयमर्दन और रथारूढ़ आदित्य की आकृतियां बनी हैं। गर्भगृह की द्वारशाखाओं पर योगियों तथा अन्य सामान्य आकृतियों के अतिरिक्त विष्णु के विभिन्न अवतार एवं अन्य स्वरूपों की आकृतियां बनी हैं जो शैव - वैष्णव धर्मों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामंजस्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। प्रवेशद्वारों पर चक्र एवं शंखधारी स्थौण नरसिंह, वराह तथा कूर्म और मत्स्य - नरविग्रह स्वरूपों (गदा, चक्र, शंखधारी) एवं कालीयमर्दन तथा बलभद्र और सुभद्रा सहित जगन्नाथ की आकृतियां निरूपित हैं। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के ललाट में लक्ष्मी और उनके पार्श्वों में गणेश, सरस्वती, कालीयमर्दन, सूर्य तथा द्वारशाखाओं पर रघुराजेश्वर मंदिर के समान ही नरकूर्म, नरमत्स्य, नरसिंह, बलि-वामन, राम - सीता एवं बलभद्र - सुभद्रा सहित जगन्नाथ की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार दोनों मंदिरों के ललाट में मुख्यतः गणेश और लक्ष्मी के अंकन के संदर्भ में अंतर मिलता है जो क्रमशः शैव और वैष्णव संबंधों का सूचक है।

दोनों मंदिरों के शिखर भाग पर विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित साधु एवं योगियों की छोटी आकृतियां बनी हैं जिनकी केश - सज्जा एवं वस्त्रों में अंतर द्रष्टव्य है। कुछ योगी कौपीनधारी या धोती पहने हुए और टोपी जैसी शिरोभूषा वाले हैं। इन्हें आसन पर बैठे या नमस्कार - मुद्रा में वीणा बजाते दिखाया गया है। इनके अतिरिक्त वाद्यवादन करती स्त्री - पुरुष एवं खड्ग, छुरिका और खेटकधारी योद्धा आकृतियां भी उकेरी हैं। रघुराजेश्वर मंदिर के शिखर की मुख्य देव आकृतियों में एकल विष्णु, उनके मत्स्य एवं कूर्म अवतार नृवराह, गोवर्धनधारी और कालीयमर्दन कृष्ण तथा कृष्ण के वेणुवादन और समुद्रमन्थन, अंकुश एवं मोदकपात्र से युक्त मूषकवाहन वाले चतुर्भुज गणेश, सर्प एवं डमरू से युक्त शिव, दण्डधारी द्वारपाल तथा गदा एवं पर्वतखण्डधारी हनुमान की आकृतियां उल्लेखनीय हैं (चित्र ५२)। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के शिखर पर भी पूर्ववत उपर्युक्त विषयों से संबंधित मूर्तियां ही उकेरी हैं जिनमें उमा - महेश्वर और सर्प एवं डमरूधारी शिव की आकृतियां तथा दक्षिणी शिखर की मध्यवर्ती रथिका में समुद्रमन्थन की कथा का विस्तृत अंकन हुआ है। दृश्य में समुद्रमन्थन से निकलने वाले रत्नों को भी दिखाया गया है। दोनों मंदिरों की जंघा पर देव, साधु, सामान्य स्त्री - पुरुष युगलों की पांच समानान्तर पंक्तियां देखी जा सकती हैं। सभी आकृतियां भिन्न - भिन्न आकार वाली रथिकाओं में उत्कीर्ण हैं। सबसे नीचे की पंक्ति में नमस्कार - मुद्रा में पंखयुक्त मानव देहधारी गरुड एवं कुछ अन्य आकृतियां बनी हैं। दूसरी पंक्ति में सामान्य स्त्री - पुरुष युगलों तथा हनुमान एवं अन्य देवताओं की आकृतियां देखी जा सकती हैं। ऊपर की चार पंक्तियों में हनुमान की सर्वाधिक आकृतियां हैं जिन्हें भक्तिभाव में नमस्कार - मुद्रा में दोनों हाथों के बीच गदा पकड़े दिखाया गया है। हनुमान के कमर से खड्ग और खेटक भी लटक रहे हैं और कन्धों पर धनुष और तूणीर भी देखा जा सकता है। इस प्रकार हनुमान का रामभक्त के साथ ही अपरिमित शक्ति वाले योद्धा के रूप में अंकन इस मंदिर की विशिष्टता है।

लक्ष्मी - नारायण मंदिर की जंघा की मुख्य देव आकृतियों में विष्णु की एकल, शेषशायी, मत्स्यावतार, लक्ष्मी - नारायण, विट्ठल तथा शिव की एकल, उमा - महेश्वर एवं भैरव तथा सिंहवाहिनी - दुर्गा और मकरवाहिनी - गंगा की मूर्तियां विशेषतः उल्लेखनीय हैं। हनुमान तथा वाद्य वादन करती विभिन्न आकृतियों के अतिरिक्त रघुराजेश्वर मंदिर पर भी लक्ष्मी - नारायण मंदिर के ही मूर्तिस्वरूप बने हैं। दक्षिण जंघा पर गंगाधर स्वरूप के अतिरिक्त शिव के अन्य स्वरूपों की मूर्तियों में कोई अंतर नहीं मिलता है।

उपर्युक्त मंदिर विष्णु और शिव को समर्पित हैं किन्तु उनकी शिल्पयोजना में कोई अंतर नहीं दिखाई देता है। इनमें विष्णु एवं वैष्णव धर्म से संबंधित विभिन्न कथात्मक मूर्तिरूपों (समुद्रमन्थन, शेषशायी, गोवर्धनधारी) और रामभक्त हनुमान की मूर्तियों की प्रधानता वैष्णव धर्म के महत्व तथा हनुमान की विशेष प्रतिष्ठा को उजागर करता है। लक्ष्मी - नारायण मंदिर की मूर्तियां निश्चित ही रघुराजेश्वर मंदिर की तुलना में अधिक स्वाभाविक और ओजस्वी हैं।

आदिकेशव मंदिर समूह

काशी की उत्तरी सीमा पर गंगा एवं वरुणा के संगम पर स्थित आदिकेशव घाट काशी का प्रमुख एवं प्राचीन विष्णुतीर्थ माना जाता है। इस घाट पर कुल छः मंदिर हैं जिनमें चार मंदिर (आदिकेशव, ज्ञानकेशव, संगमेश्वर एवं पंचदेवता) एक ही परकोटे के मध्य हैं। इन मंदिरों में संगमेश्वर १८ वीं शती के उत्तरार्द्ध का तथा शेष १९वीं शती ई. के प्रारम्भ के हैं। परकोटे के बाहर चिन्ताहरण गणेश (१९ वीं शती ई.) एवं शिवमंदिर (२० वीं शतीई.) हैं। ये मंदिर विष्णु के साथ ही शिव, गणेश और पंचदेव पूजन की लोकप्रियता के साक्षी हैं जो काशी की धर्म - समन्वय की परम्परा के मूल स्वर में हैं। काशी के विष्णुपीठों में आदिकेशव एवं बिंदुमाधव सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे। आदिकेशव मंदिर का वर्तमान स्वरूप

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६ वीं शती ई. के प्रारंभ का है। मूलतः आदिकेशव मंदिर का निर्माण गहड़वाल काल में हुआ था जिसका उल्लेख गहड़वाल लेखों और कृत्यकल्पतरु में उपलब्ध है। इसे ११९४ ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक ने नष्ट कर दिया था।[४] गहड़वाल काल में आदिकेशव मंदिर की विशेष ख्याति थी। लेखों में गहड़वाल शासकों द्वारा आदिकेशव घाट पर मंदिर के नीचे गंगा में स्नान का भी संदर्भ मिलता है। गोविन्दचंद्र (१२ वीं शती ई.) ने आदिकेशव मंदिर के लिये महादान किया था। बाद में मराठों के काल में १८०६ ई. में ग्वालियर के महाराजा सिन्धिया के दीवान माणोजी ने इसे फिर से बनवाया था।[५]

(क) आदिकेशव मंदिर

सभी मंदिरों में आदिकेशव मंदिर प्राचीनतम और विशालतम है। एक परकोटे के मध्य में स्थित पूर्वाभिमुख आदिकेशव मंदिर के मुख्य भाग गर्भगृह, अन्तराल और रंगमंडप हैं (चित्र ४)। रंगमंडप के स्तम्भों की सज्जा और योजना पश्चिम भारतीय मंदिरों के समान है। स्तम्भों की रचना नीचे से चौपहल, अष्टपहल तथा सोलह पहल वाली है। महामण्डप के वरण्ड भाग में छज्जा तथा पिरामिडाकार शिखर हैं। गर्भगृह में प्रकाश के लिए द्वारों के अतिरिक्त गवाक्षों का भी निर्माण किया गया है। गर्भगृह में प्रवेश के लिए पूर्व के अतिरिक्त उत्तर और दक्षिण की ओर भी प्रवेशद्वार हैं। गर्भगृह की मुख्य प्रतिमा काले पत्थर में बनी केशवादित्य (विष्णु) की मूर्ति है जिसे आदिकेशव कहा गया है। प्रवेशद्वार के उत्तरंग पर ललाट में गणेश की आकृति बनी है। स्मरणीय है कि सामान्यतः गणेश को शिव मंदिरों में ललाट पर दिखाया गया है। गर्भगृह के अन्य प्रवेशद्वारों पर गरुड और हनुमान की आकृतियां हैं। मंदिर की भित्ति पर कोई आकृति नहीं बनी हैं। अन्तराल के अर्धस्तम्भों पर दण्ड एवं पद्मधारी द्वारपालों की आकृतियां हैं। रंगमण्डप के स्तम्भ घण्टा, पूर्णकलश, ज्यामितीय नमूनों एवं कीचक आकृतियों से सज्जित हैं। मंदिर में प्रतिष्ठित आदिकेशव मूर्ति के संदर्भ में मान्यता है कि इसकी स्थापना स्वयं विष्णु ने की थी। आज काशी का पंचक्रोशी एवं पंचतीर्थी यात्री इस मंदिर में दर्शन, पूजन के बाद ही आगे की यात्रा करता है।

(ख) पंचदेवता मंदिर

आदिकेशव मंदिर के परकोटे में ही, मंदिर के दाहिनी ओर पंचदेवता मंदिर स्थित है। स्थापत्य की दृष्टि से यह मंदिर अत्यन्त सामान्य कोटि का है। छोटे चौकोर गर्भगृह में अन्य मंदिरों की भांति मध्य में शिवलिंग स्थापित है, किन्तु मंदिर की पश्चिमी भित्ति के समीप एक ही पीठिका (१५x४७ से. मी.) पर क्रम से पांच देवों का अंकन उनके वाहन के माध्यम से किया गया है जिनमें क्रम से (दाहिने से बायें) गरुड, नन्दी, सिंह, अश्व एवं मूषक (मोदक खाते हुए) की आकृतियां बनी हैं (चित्र ५०)। प्रस्तुत आकृतियां क्रमशः विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश के वाहन हैं जिनके माध्यम से पंचदेव पूजन का संकेत दिया गया है। गर्भगृह द्वार के ललाट में गणेश एवं द्वार के दोनों ओर सम्भवतः आदित्य का अंकन किया गया है। प्रस्तुत मंदिर पंचदेवोपासना की दृष्टि से उल्लेखनीय है। स्मरणीय है कि काशी में पंचोपासना की परम्परा अत्यन्त लोकप्रिय रही है।

(ग) ज्ञान केशव

इस मंदिर का निर्माण १६ वीं शती ई. के पूर्वार्ध में हुआ है। तलच्छन्द योजना में पूर्वाभिमुख मंदिर में चौकोर गर्भगृह और सम्मुख भाग में अर्धमंडप बने हैं। अर्धमंडप चौकोर है जिसकी छत चार स्तम्भों पर आधारित है। इन स्तम्भों पर आधारित मेहराब बने हैं। मेहराबों के त्रिकोण भाग पर पुष्पयुक्त अलंकरण हैं। वरण्डिका पुष्प नमूनों तथा सादे गढ़नों से अलंकृत है। इसके ऊपर चारों ओर छज्जा निकला है। वितान भाग बेलनाकार है। इसके ऊपरी भाग पर पद्म पंखुड़ियों, कलश और बीजपूरक से युक्त श्रृंग बने हैं। वितान की बाहरी सतह सादी है। गर्भगृह में तीन ओर प्रवेशद्वार हैं। गर्भगृह की भीतरी भित्तियो में मेहराब युक्त देव प्रकोष्ठ बने हैं जिनमें क्रमशः गणेश, सूर्य, दुर्गा और नृसिंह की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति पर कुछ ऊंचाई पर स्तम्भों पर आधारित मण्डप के मध्य में ज्ञान केशव की संगमरमर की २० वीं शती ई. की मूर्ति स्थापित है। गर्भगृह के मध्य शिवलिंग स्थापित है। स्पष्ट है कि पंचायतन परम्परा के अनुरूप ही यहां पंचदेवताओं की आकृतियां एक साथ गर्भगृह में स्थापित हैं। ऊर्ध्वच्छन्द योजना में प्रस्तुत मंदिर एक ऊंची आयताकार जगती

४- वेदेश्वरा दुरीच्यां तु क्षेत्रे रास्चादिकेशवः। दृष्टं त्रिभुवनं सर्वं तस्य सन्दर्शनात् ध्रुवम। ।काशीखंड ६७.१५

५- डायना एल० एक, बनारसः सिटी ऑफ लाईट, पृ. २०५; मोतीचन्द्र, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. ३६७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर स्थित है। मंडोवर की दीवार प्रायः सादी है। वरण्डिका भाग के ऊपर चारों ओर छज्जा निकला हुआ है। शिखर के चारों ओर जालीदार गवाक्षों से युक्त रथिकायें बनी हैं। रथिकाओं के ऊपरी भाग पर चौकोर ग्रीवा, आमलक, कमल पंखुड़ियां एवं कलश स्थित हैं। मंदिर का शिखर भाग अट्ठाइस कर्णश्रृंगों एवं सोलह उरःश्रृंगों से युक्त है। अंगशिखरों पर ग्रीवा के चारों ओर सर्पफण और ऊपरी भाग पर कमल पंखुड़ियां, कलश और बीजपूरक बने हैं। मंदिर के मुख्य शिखर के शीर्षभाग में भी चारों ओर सर्पफण बने हैं और ऊपरी भाग पर कमल पंखुड़ियां, आमलक, चंद्रिका, पुष्पपुंज, कलश और 'ॐ' लिखा चक्र बना है। प्रस्तुत मंदिर की ऊंचाई १२ मीटर है जिसके निर्माण में लाखौरी ईंटों और पत्थरों का प्रयोग किया गया है।

(घ) संगमेश्वर मंदिर

स्कन्दपुराण के अनुसार वरुणा एवं गंगा के संगम पर स्थित संगमेश्वर शिव की स्थापना ब्रह्मा ने किया था। मान्यता है कि संगम पर स्नान करके संगमेश्वर शिवलिंग का दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता है। लिंगपुराण में भी काशी में की जाने वाली चतुरायतन यात्रा के संदर्भ में संगमेश्वर शिवलिंग के दर्शन का उल्लेख मिलता है।

ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर इस मंदिर का निर्माण ग्वालियर के सिंधिया महाराज के दीवान द्वारा (१८ वीं शती ई. के अंत में) कराया गया था। इस मंदिर का काशी की पंचक्रोशी यात्रा में विशेष महत्व है। मंदिर का प्रवेशद्वार दक्षिणाभिमुख एवं सामान्य अलंकरणों वाला है। परकोटे की भित्ति से लगा हुआ चारों ओर स्तंभों पर आधारित एक दालान है जिसकी छत सपाट है। दालान में कई देवकुलिकायें स्थित हैं। कुछ को छोड़कर प्रायः सभी देवकुलिकायें वर्तमान में रिक्त हैं। मूर्तियों की दृष्टि से एक देवकुलिका में चतुर्मुख शिवलिंग उल्लेखनीय है। अन्य देवकुलिकाओं में आदित्य, शिवलिंग, गणेश एवं अन्नपूर्णा की आकृतियां प्रतिष्ठित हैं।

स्थापत्य की दृष्टि से मंदिर का गर्भगृह महत्वपूर्ण है जिसमें तीन सादे प्रवेशद्वार हैं। गर्भगृह के अंदर मध्य में एक बड़ा शिवलिंग एवं कई छोटे - छोटे शिवलिंग स्थापित हैं। समीप ही नन्दी की आकृति भी बनी है। गर्भगृह की भित्ति पर चारों ओर देव - प्रकोष्ठ बने हैं। गर्भगृह की छत गुंबदाकार है। ऊर्ध्वच्छन्द योजना में मंदिर कुछ ऊंची चौकोर जगती पर स्थित है। मंदिर का अधिष्ठान, जंघा एवं वरण्ड भाग सादा है। वरण्ड पर चारों ओर केवल छज्जे निकले हैं। शिखर पर जालीदार शिलापट्टों से युक्त रथिकायें हैं। शिखर सोलह कर्णश्रृंगों और आठ उरःश्रृंगों से युक्त है। ऊपरी भाग में सादा आमलक, कलश एवं बीजपूरक हैं।

(ङ) चिन्ताहरण गणेश मंदिर

आदिकेशव मंदिर के बाहर दाहिनी ओर चिन्ताहरण गणेश मंदिर स्थित है। स्थानीय लोगों से ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत मंदिर का निर्माण नेपाल नरेश द्वारा १९ वीं शती ई. के मध्य में करवाया गया था। पूर्वाभिमुख मंदिर तलच्छंद योजना में आयताकार गर्भगृह एवं अर्धमण्डप से युक्त है। गर्भगृह के पूर्व एवं दक्षिण दिशाओं में प्रवेशद्वार बने हैं। मुख्य प्रवेशद्वार पूर्व की ओर है। गर्भगृह में पूर्व और पश्चिम की ओर जालीदार गवाक्ष बने हैं। गर्भगृह का प्रवेशद्वार अलंकृत मेहराबों से युक्त अर्धस्तम्भों पर आधारित है। ललाट में गणेश की प्रतिमा है। गर्भगृह की भितरी भित्तियों पर चार बड़े - बड़े प्रकोष्ठ हैं जिनमें से तीन में उपासिका (दक्षिण), आदित्य (पश्चिम) और अन्नपूर्णा (पश्चिम) की आकृतियां हैं। पूर्वी रथिका में महाराजलीलासन में गणेश की मूर्ति (१८ वीं शती ई.) है। गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित है। अर्धमंडप की सपाट छत चार अलंकृत स्तंभों पर आधारित है। वरण्डिका के ऊपर छज्जा निकला हुआ है। छत के ऊपरी भाग पर लघु स्तंभों पर आधारित जालीदार शिलापट्टों वाली मुडेरियां बनी हैं।

सामान्य जगती पर स्थित मंदिर का अधिष्ठान एवं जंघा भाग पूर्णतः सादा है। मंडोवर भाग सामान्य अलंकरणों वाला है जिस पर पुष्प युक्त नमूने बने हैं। वरण्डिका भाग के ऊपर चारों ओर छज्जा निकला है। शिखर के चारों ओर जालीदार गवाक्ष से युक्त रथिकाएं हैं। शिखर के ऊपरी भाग पर आमलक, कमल पंखुड़ियां, कलश और बीजपूरक हैं। मंदिर का शिखर २० कर्णश्रृंगों और आठ उरःश्रृंगों से युक्त है। प्रत्येक श्रृंग के ऊपरी भाग पर आमलक, कमल पंखुड़ियां, कलश एवं बीजपूरक हैं। इसी प्रकार मुख्य शिखर के शीर्ष भाग पर चौकोर ग्रीवा के ऊपर आमलक, कमल पंखुड़ियां, पांच क्रमशः छोटे होते गये कलश एवं त्रिशूल हैं। कलश और त्रिशूल पीतल के बने हैं। सम्पूर्ण मंदिर की ऊंचाई १८ मीटर है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुर्गा मंदिर (सुमेरु मंदिर)

रामनगर किले से लगभग दो कि. मी. की दूरी पर स्थित दुर्गा या सुमेरु मंदिर अपनी स्थापत्यगत विशिष्टता के साथ ही शिल्प संयोजना एवं मूर्तियों में अभिव्यक्त विषयवस्तु की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। दुर्गा मंदिर का निर्माण १८ वीं शती ई. के अंत में चेतसिंह के काल में हुआ था। एक परकोटे के मध्य दुर्गा मंदिर एक विशाल जगती पर अवस्थित है जिसके नीचे धातुनिर्मित गजलक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति देखी जा सकती है (चित्र ६)।

तलच्छन्द योजना में मंदिर में केवल गर्भगृह है जिसमें चारों ओर प्रवेशद्वार बने हैं जो सर्वतोभद्र मंदिर का परिचायक है। पूर्व का प्रवेशद्वार पत्थर में तराशकर बनाया गया है जो केवल अलंकरण की दृष्टि से निर्मित है। वस्तुतः केवल तीन प्रवेशद्वारों से ही गर्भगृह में प्रवेश किया जा सकता है। मुख्य प्रवेशद्वार पश्चिमाभिमुख है। प्रवेशद्वार के आगे चारों ओर मुखमंडप का निर्माण हुआ है जो अलंकृत स्तम्भों पर आधारित और लेख से युक्त है। तोरण पर दोनों ओर मयूर आकृतियां बनी हैं। मुख्य प्रवेशद्वार के ललाट भाग पर गणेश और दोनों पार्श्वों में चामरधारिणी सेविकायें (चित्र४५), कृष्णलीला से संबंधित आकृतियां तथा मकरवाहिनी गंगा और उनके पार्श्वों में कूर्मवाहिनी यमुना तथा हंसवाहिनी सरस्वती की आकृतियां उत्कीर्ण हैं (चित्र४३)। चारों प्रवेशद्वारों की द्वारशाखा के निचले भाग पर दो - दो के समूह में कुल आठ द्वारपाल आकृतियां बनी हैं जिनके हाथों में दण्ड, शंख, पद्म और कमण्डलु दिखाया गया है जो वैष्णव द्वारपालों के लक्षण हैं। मुख्य प्रवेशद्वार के समक्ष सिंह तथा उत्तर और दक्षिण की ओर क्रमशः गरुड और वृषभ की आकृतियां बनी हैं जो क्रमशः शक्ति, विष्णु और शिव के वाहन हैं। गर्भगृह में शक्ति (दुर्गा), विष्णु और शिव की मूर्तियां हैं। मंदिर की वर्गाकार संरचना और उड़ीसा शैली के पीढ़ादेउल प्रकार के शिखर इसकी विशिष्टता हैं। जंघा पर उत्कीर्ण देव, पशु, साधु एवं सुरसुन्दरी (पुत्तलिका) आकृतियों की दृष्टि से भी यह मंदिर उल्लेखनीय है (चित्र ६४)। मंदिर की आकृतियों में विवरण अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ उकेरे गये हैं जिनमें शिल्पी की कल्पनाशीलता स्वरूप तथा लक्षण दोनों ही स्वरों पर अभिव्यक्त है। चीरहरण के दृश्यांकन में यमुना के जल में अपने शरीर को छिपाती हुई गोपिकाओं द्वारा कृष्ण से अपने वस्त्र वापिस करने की याचना का मार्मिक अंकन हुआ है (चित्र २९)। वृक्ष की विस्तृत शाखाओं पर गोपिकाओं के वस्त्रों का प्रदर्शन भी ध्यातव्य है। परशुराम - सहस्त्रबाहु युद्ध के कथा प्रसंग में एक ओर दोनों के भीषण युद्ध और दूसरी ओर सहस्त्रबाहु के कटे हुए मस्तक और हाथों द्वारा कथा को जीवन्त किया गया है (चित्र ३४)। बलराम के यमुनाकर्षण से संबंधित मूर्ति में एक ओर वृक्ष के नीचे कृष्ण शान्त भाव में खड़े हैं जबकि दूसरी ओर अत्यन्त उग्र स्वरूप वाले बलराम को यमुना की जलधारा को हल द्वारा विभक्त करते दिखाया गया है (चित्र ३२)। आकाश से तीव्रता से नीचे की ओर गिरते मुसल के माध्यम से बलराम के क्रोध (बलराम द्वारा मुसल फेंक कर यमुना की ओर दौड़ने) की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। गजेन्द्रमोक्ष स्वरुप में विष्णु के चक्र से आहत मकर के ऊपर उछलने और विष्णु द्वारा गज का एक पैर पकड़कर उसका उद्धार करने का शिल्पांकन सटीक है (चित्र २८)। ये सभी आकृतियां शिल्पी की सूझ और समझ को प्रकट करती हैं।

मंदिर की मूर्तियां केवल जंघा पर ही उत्कीर्ण हैं। शालभंजिका मूर्तियों की शैली में मंदिर की वरण्डिका के चारों ओर वाद्यवादन करती हुई पुत्रिकाओं (या पुत्तलियों) की आकर्षक आकृतियां विभिन्न भंगिमाओं में बनी हैं (चित्र ६४)। इनमें आभूषण एवं वस्त्र - सज्जा की विविधता एवं भंगिमाओं का आकर्षण उल्लेखनीय है। यहां उल्लेखनीय है कि १८ वीं शती ई. के आभूषण एवं वस्त्र तथा उन्हें धारण करने की अलग - अलग पद्धतियों के अध्ययन की दृष्टि से दुर्गा मंदिर की मूर्तियों का विशेष महत्व है। वरण्ड के ऊपरी भाग पर आमने - सामने बैठी पशुओं की युगल आकृतियां चारों ओर बनी हैं, जिनमें दो कपि, मयूर, वृषभ तथा ऐसी ही अन्य आकृतियां हैं। इस प्रकार मंदिर पर देव - मानव - पशु जगत का समवेत अंकन हुआ है।

पांच समानान्तर पंक्तियों में वर्गाकार रथिकाओं में चारों ओर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। नीचे की दो पंक्तियों में प्रत्येक दिशा में ६-६ (कुल २४) की संख्या में गज और उनके ऊपर गज और सिंह की आकृतियां बनी हैं। सिंह आकृतियां वस्तुतः खजुराहो, कोणार्क तथा अन्य स्थलों की व्याल आकृतियों से संबंधित हैं जिनके पैरों के नीचे दो छोटी गज आकृतियां बनी हैं। निचली पंक्ति की गज आकृतियों के ऊपर झूल तथा अन्य अलंकरण अत्यन्त सूक्ष्मता एवं विविधता के साथ बनाये गये हैं। ऊपर की दो पंक्तियों में विभिन्न देव आकृतियां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उकेरी हैं जबकि पांचवीं पंक्ति में विभिन्न सम्प्रदायों से संबंधित साधुओं की आकृतियां देखी जा सकती हैं। देव आकृतियों में मुख्यतः विष्णु या वैष्णव कथाओं से संबंधित विभिन्न स्वरूपों का अंकन हुआ है (चित्र ३९)। शिव का नन्दी पर आरूढ़ तथा दिक्पाल ईशान के रूप में अंकन हुआ है। शक्ति की मूर्तियों में काली और महिषमर्दिनी की मूर्तियां हैं। सूर्य की भी दो मूर्तियां उकेरी हैं। मुख्यतः शक्ति को समर्पित होने के बाद भी मंदिर पर विष्णु के स्वरूपों की प्रधानता दिखायी देती है।

इस मंदिर पर विष्णु के लगभग सभी प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्वरूपों का अंकन हुआ है। इसके अन्तर्गत एकल विष्णु के अतिरिक्त उनके विभव रूपों में मत्स्य (चित्र २५), कूर्म (समुद्रमन्थन की कथा की पृष्ठभूमि में), नृवराह (चित्र २६) और स्तम्भ को चीर कर निकलते हुए स्थौण नरसिंह तथा राम -दरबार का अंकन हुआ है। साथ ही देवगढ़ के गुप्तकालीन दशावतार मंदिर पर उत्कीर्ण गजेन्द्रमोक्ष (चित्र २८), शेषशायी विष्णु (चित्र २४) एवं नर - नारायण (चित्र ३१) की आकृतियों का दुर्गा मंदिर पर उत्कीर्ण किया जाना पूर्व परम्परा की निरन्तरता की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। गोवर्धनधारी कृष्ण (चित्र ३०) के अतिरिक्त बलभद्र एवं सुभद्रा सहित जगन्नाथ (चित्र ३६) , बलराम का यमुनाकर्षण तथा परशुराम - सहस्रबाहु युद्ध (चित्र ३४) के प्रसंग मंदिर और देवमूर्तियों के विषय चयन की दृष्टि से आचार्य और शिल्पी के सूझ को व्यक्त करते हैं। जगन्नाथ की मूर्तियां उड़ीसा शैली के मंदिर में प्रतिष्ठित दिखायी गयी हैं जिससे इन आकृतियों को अर्थपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त आकृतियों के अतिरिक्त दिक्पालों, हनुमान तथा तत्कालीन धार्मिक गतिविधियों से संबंधित पारम्परिक विषयों जैसे अश्वमेध-यज्ञ (यज्ञ से संबंधित अश्व की प्रस्तुति द्वारा), अग्निकुण्ड में समिधा डालने की प्रक्रिया द्वारा यज्ञ, आचार्य द्वारा उपदेश और लौकिक जीवन से संबंधित मल्लयुद्ध और रामनगर के किले से संबंधित अंकन मुख्य हैं।

अमेठी शिव मंदिर

मणिकर्णिका घाट स्थित अमेठी शिव मंदिर अमेठी दुर्गा मंदिर के नाम से भी जाना जाता है। इस मंदिर का निर्माण राजा अमेठी (उत्तर प्रदेश) द्वारा १८५७ ई. में कराया गया। मंदिर के निर्माण में जयपुर के शिल्पियों का सहयोग लिया गया था जो मंदिर के सूक्ष्म उकेरन से भी स्पष्ट है। मंदिर की सूक्ष्म अलंकरण - सज्जा एवं वाद्यवादन करती नृत्यरत, अंकधारिणी पुत्तलियों की आकृतियां रामनगर के दुर्गा मंदिर के अनुकरण पर बनी हैं (चित्र ६५)। गर्भगृह, अन्तराल और मण्डप से युक्त मंदिर के गर्भगृह में महिषमर्दिनी की मूर्ति प्रतिष्ठित है। मंदिर के विभिन्न भागों पर विष्णु के वराह, नरसिंह, बलराम एवं कृष्ण आकृतियों के अतिरिक्त मयूरवाहना एवं वीणाधारिणी सरस्वती, सिंहवाहिनी दुर्गा तथा गणेश और हनुमान की मूर्तियां उकेरी हैं। मुख्य मंदिर के गर्भगृह की महिषमर्दिनी मूर्ति के आधार पर इसे दुर्गा मंदिर कहा जा सकता है। यह मंदिर एक परकोटे में स्थित है जिसके चार कोनों पर स्थित चार छोटे देवालयों में शिवलिंग प्रतिष्ठित हैं। उत्तराभिमुख मंदिर के प्रवेशद्वार के समीप ही सिंह और वृषभ की आकृतियां बनी हैं जो मंदिर के शक्ति और शिव से संबंधित होने तथा उनकी सम्पृक्तता की सूचक हैं। रामनगर के दुर्गा मंदिर के समान ही यहां भी एक आश्चर्यजनक बात यह है कि मंदिर की भित्ति पर शिव की कोई भी मूर्ति नहीं उत्कीर्ण है और शक्ति की भी केवल दो ही मूर्तियां - सिंहवाहना दुर्गा और मयूरवाहना सरस्वती के रूपों में मिली हैं। दूसरी ओर विष्णु के विभिन्न रूपों और कृष्णचरित तथा समुद्रमन्थन और शेषशायी स्वरूपों के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। कृष्णलीला से संबंधित छोटी आकृतियां जंघा के ऊपर मंदिर के चारों ओर बनी हैं जिनमें कालियमर्दन, पूतनावध, गोवर्धनधारण, चीरहरण, माखनचोरी, गोदोहन जैसे दृश्य मुख्य हैं।

रामेश्वर मंदिर

विश्वनाथगली स्थित रामेश्वर मंदिर १६ वीं शती ई. के उत्तरार्द्ध का पंचायतन मंदिर है। मूर्ति सज्जा की दृष्टि से मंदिर पूरी तरह रामनगर के दुर्गा मंदिर से प्रभावित है। मंदिर की आकर्षक पुत्रिका आकृतियां विशेषतः रामनगर के दुर्गा मंदिर और अमेठी शिवमंदिर (मणिकर्णिका) के अनुकरण पर निर्मित जान पड़ती हैं। गर्भगृह और अन्तराल से युक्त मंदिर के मंडप में नन्दी की मूर्ति (नन्दी मण्डप) बनी है। गर्भगृह में स्थापित शिवलिंग के अतिरिक्त भीतर की भित्तियों पर लक्ष्मी - नारायण, सूर्य, भैरव, कार्त्तिकेय, गणेश और अन्नपूर्णा की आकृतियां उकेरी हैं। इस प्रकार मंदिर में पंचायतन पूजन से संबंधित चार ब्राह्मण देवों के अतिरिक्त भैरव और कार्त्तिकेय की भी मूर्तियां बनी हैं। रामेश्वर मंदिर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी – नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिरों के समान हनुमान की भी कई आकृतियां हैं जिनमें द्विभुज हनुमान पताका और गदा लिये या गदा और पर्वतखण्ड लिये या नमस्कार – मुद्रा में दोनों हाथों में गदा लिये दिखाये गये हैं। लक्षणपरक विविधता की दृष्टि से हनुमान की आकृतियां अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। नन्दी मंडप के सामने उमा – महेश्वर की विशाल आसन मूर्ति उत्कीर्ण है जिसमें पार्वती की गोद में कार्त्तिकेय के स्थान पर गणेश की आकृति देखी जा सकती है। उमा – महेश्वर के अतिरिक्त शव पर खड़ी और मुण्डमाला से शोभित एवं छुरिका और त्रिशूलधारिणी काली तथा कपालपात्र, खड्ग त्रिशूल और शिरस से युक्त सिंहवाहिनी दुर्गा की भी कई आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यह मंदिर शक्ति के विविध स्वरूपों के शिल्पांकन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

समराजेश्वर महादेव मंदिर (नेपाली मंदिर)

ललिताघाट पर गोयनका पुस्तकालय के समीप स्थित पगोडा शैली में बना विख्यात नेपाली मंदिर (डी. १/६७) काठमाण्डु स्थित पशुपतिनाथ मंदिर का नमूना प्रतीत होता है। इस मंदिर के निर्माण का आदेश नेपाल की महारानी राज्यलक्ष्मी देवी ने सं० १८९८ (१८४१ई.) में दिया था। उनके बाद सं. १९०० (१८४३ई.) में महाराज राजेन्द्र विक्रम शाह एवं युवराज सुरेन्द्र विक्रम शाह ने इस मंदिर के निर्माण का आदेश दिया। वर्तमान समय में यह मंदिर गुथी संस्थान के अन्तर्गत है। गुथी संस्थान ने मंदिर के पुनर्निर्माण की योजना बनायी जिसका भार नेपाल सरकार के पुरातत्व विभाग के अभियंता डा. ऋषिकेशव रेग्मी को सौंपा गया। वर्तमान मंदिर में क्षतिग्रस्त काष्ठ कलाकृतियों के स्थान पर नवीन काष्ठ कलाकृतियां लगायी गयीं हैं। इसलिए काष्ठ शिल्प में उत्कीर्ण अनोखी श्रृंगार प्रधान मिथुन- मैथुन मूर्तियां अब कम हो गयी हैं। शिल्प में भी थोड़ा परिवर्तन आ गया है।

शिव को समर्पित दक्षिणाभिमुख नेपाली मंदिर वर्गाकार पत्थर के अधिष्ठान पर बना है (चित्र ७)। मंदिर के निर्माण में तांत्रिक प्रभाव मूर्तियों से पूरी तरह स्पष्ट है। मंदिर के निर्माण में काष्ठ के अतिरिक्त पत्थर एवं ईंटों का भी प्रयोग किया गया है। काष्ठ की अधिकता और काष्ठ में ही अलंकरण होने के कारण इसे काष्ठ मंदिर भी कहा जाता है। यह मंदिर सान्धार प्रकार का है जिसमें गर्भगृह तथा मंडप में चारों ओर क्रमशः चार प्रवेश-द्वार हैं। गर्भगृह में स्थापित नर्मदा शिवलिंग बहुत ही सुन्दर ढंग से पत्थर में कोर कर बनाया गया है जिसमें चारों ओर सर्प लिपटा हुआ है। गर्भगृह के चारों ओर भीतरी दीवार की रथिकाओं में भी कुछ मूर्तियां हैं। उत्तरी रथिका में अठ्ठारह भुजाओं वाली महिषमर्दिनी की विरल मूर्ति है। पश्चिमी दीवार की रथिका में गणेश की मूर्ति है।

महामण्डप के चारों प्रवेशद्वार चतुर्शाखा प्रकार के हैं जिसमें क्रमशः पत्र, कपाल, पुष्प तथा लता के अंकन हैं किन्तु मुख्य द्वार में पुष्प शाखा के स्थान पर शंखयुक्त पुष्प का अंकन किया गया है। चारों प्रवेशद्वारों के ललाट में चतुर्भुज शिव की मूर्तियां बनी हैं। दक्षिणी और उत्तरी द्वारों के उत्तरंगों पर विष्णु के दशावतारों की मूर्तियां हैं जिनमें मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, बलराम, बुद्ध और कल्कि की आकृतियां गढ़ी हैं। मत्स्यावतार में नीचे का आधा भाग मत्स्य का और ऊपर का भाग मानव रूप में चतुर्भुज विष्णु का है जिनके एक दाहिने हाथ में चक्र तथा अन्य में पद्म और गदा हैं। कूर्म अवतार में भी नीचे का आधा भाग कूर्म का और ऊपर का शेष भाग चतुर्भुज विष्णु का है जिनके हाथों में क्रमशः पद्म, चक्र, गदा और शंख हैं। वराह मूर्ति में चतुर्भुज देवता को बायीं ओर मुख किए दर्शाया गया है और उनके हाथों में क्रमशः पद्म, चक्र, शंख (वक्षपर) तथा गदा हैं। बायीं भुजा की कुहनी पर भूदेवी बैठी हैं। चतुर्भुज नृसिंह प्रत्यालीढ़ में हैं और उनके तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, चक्र तथा गदा हैं। द्विभुज वामन के हाथों में कमण्डलु तथा छत्र हैं। परशु तथा पाश से युक्त परशुराम उग्ररूप में निरूपित हैं। उनकी आंखे बड़ी तथा विस्फारित हैं। द्विभुज राम के हाथों में बाण और धनुष हैं। बलराम के हाथों में मुसल और हल दिखाया गया है। सौम्यमुख द्विभुज बुद्ध के हाथों में संघाटी तथा भिक्षापात्र हैं। संघाटी धारण किए हुए बुद्ध की केश रचना गुच्छकों के रूप में बनी है। अश्वारूढ़ कल्कि के एक हाथ में लगाम है जबकि दायें हाथ में खड्ग प्रदर्शित है। चारों द्वारों के दोनों किनारों पर सप्ताश्व रथ पर आरूढ़ सूर्य की मूर्तियां उकेरी हैं। प्रवेशद्वारों पर उकेरी धनुष, बाण, खड्ग, पद्म, परशु तथा अक्षमाला आदि धारण करने वाली अन्य देवमूर्तियों की पहचान सम्भव नहीं है। पूर्वी द्वार की आकृतियों में से कुछ की पहचान नवग्रहों से सम्भव है। इनके साथ वाहनों के रूप में अश्व, हंस,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृषभ, सिंह, गज का अंकन हुआ है। अंत में अर्धकाय राहु और अर्धसर्पाकार केतु की आकृतियां द्रष्टव्य हैं। प्रवेशद्वारों पर ही गदाधारी हनुमान तथा खड्गधारी देवियों का भी अंकन हुआ है।

चारों ओर के द्वार शाखाओं पर भी आकृतियां बनी हैं जिनमें देव मंदिर और नागपूजा के दृश्य, सर्पफणों तथा कपालमाला से सज्जित और सर्प धारण करने वाली कुछ मानव आकृतियां भी दिखायी गयी हैं। ये आकृतियां स्वरूप एवं लक्षणों की दृष्टि से स्पष्टतः तांत्रिक प्रभाववाली हैं। मण्डप के मुख्यद्वार के अलंकृत द्वारपट पर मध्य में शिव की द्विभंग मुद्रा में खड़ी चतुर्भुज मूर्ति बनी है। शिव के हाथों में क्रमशः व्याख्यान - मुद्रा (अंगूठे और तर्जनी के मध्य कुछ पकड़े हुए), डमरू, त्रिशूल और कमण्डलु हैं। नन्दी पीठ पर शिव का खड़ा होना मूर्तियों की विशिष्टता है। त्रिनेत्र शिव रौद्रमुख और मूंछों वाले हैं। शिव कपाल युक्त मुकुट, सर्पकुण्डल, सर्पवलय, सर्पकेयूर, सर्पनूपुर, कटिबन्ध, व्याघ्रचर्म, गले में हार, सर्पमाला एवं कपालमाला से शोभित हैं। द्वारपट के दूसरे पल्ले पर भी ऐसी ही मूर्ति बनी है। यहां व्याघ्रचर्म के साथ ही दायें घुटने पर व्याघ्रमुख भी अंकित है। पश्चिमी भाग के मुख्य द्वार पर भी शिव का ऐसा ही अंकन मिलता है। पर यहां द्वार के दूसरे पल्ले पर शिव के स्थान पर शक्ति की मूर्ति है। शक्ति सिंह पीठ पर त्रिभंग मुद्रा में रूपायित हैं। द्विभुजा देवी का दायां हाथ वरदमुद्रा में है तथा बायां व्याख्यानमुद्रा में पद्मयुक्त है। सर्वालंकृत देवी किरीटमुकुट, कुण्डल, तिलक, हार से भूषित हैं। चारों दीवारों पर कर्णभाग के देव प्रकोष्ठ में देवी की मूर्तियां बनी हैं। एक में देवी शान्त मुद्रा में पद्म पर वाहन सहित बैठी हैं जिसके ठीक नीचे देवी को किसी असुर का संहार करते दिखाया गया है। आठों कोनों पर ऐसी आठ अलग - अलग देवियां निरूपित हैं, जो सम्भवतः अष्टमातृकाओं की मूर्तियां हैं। सभी उदाहरणों में देवी की दूसरी आकृति में उसे त्रिशूल से राक्षस के वक्ष पर प्रहार करते हुए तथा एक हाथ से उसका केश पकड़े दर्शाया गया है। देवी के अन्य हाथों में संहारक आयुध हैं। वाहन तथा आयुधों के आधार पर ही देवियों के पहचान की चेष्टा की गयी है। इन सभी अंकनों में असुर खड्ग तथा खेटक लिए एवं वर्म से युक्त दिखाया गया है। असुर के साथ सम्भवतः वाहन रूप में मकर - व्याल बना है। इसी प्रकोष्ठ में आठों कोनों पर नीचे एक पुरुषाकृति भिन्न - भिन्न वाहनों के साथ प्रत्यालीढ़ - मुद्रा में उत्कीर्ण है। भयंकरदर्शन वाली अष्टभुज आकृतियों के वाहन क्रमशः गरुड (अंजलिमुद्रा में), सर्प, श्वान, शव, सिंह, अश्व और वराह हैं। सम्भवतः ये अष्ट भैरवों की मूर्तियां हैं (चित्र १७)। यद्यपि इनके लक्षण उपलब्ध शास्त्रीय परम्परा से निर्दिष्ट नहीं हैं।

मण्डप की छत में काष्ठ संवाहक लगे हुए हैं, जिनके अलंकरण भी महत्वपूर्ण हैं। दक्षिणी तथा पूर्वी भाग के संवाहक नष्ट हो चुके हैं और उनके स्थान पर हाल ही में नवीन संवाहक लगाये गये हैं। किन्तु पश्चिमी तथा उत्तरी संवाहक मूल रूप में हैं। इनमें स्त्री - पुरुष वाद्य वादकों तथा एक पुरुष दो स्त्रियों(चित्र ६६) एवं दो पुरुष और एक स्त्री की रति की विभिन्न मुद्राओं तथा मुख मैथुन वाली आकृतियां बनी हैं जो पूर्ववर्ती खजुराहो, मोढेरा, भुवनेश्वर एवं कोणार्क की मिथुन - मैथुन मूर्तियों का स्मरण कराती हैं। उत्तरी दीवार में ऊपर गरुडवाहन सहित चतुर्भुज विष्णु की स्थानक मूर्ति भी है। देवता के हाथों में चक्र, पद्म, गदा और शंख हैं। उत्तर - पूर्वी कोण में संवाहक पर हंसारूढ़ त्रिमुख एवं चतुर्भुज ब्रह्मा की श्मश्रुयुक्त आकृति है। उनके हाथों में व्याख्यान - मुद्रा, घण्टा तथा पुस्तक स्पष्ट हैं।

प्रतिमालक्षण की दृष्टि से मंदिर की सबसे महत्वपूर्ण मूर्तियां देवियों की अष्ट मूर्तियां हैं जो महामण्डप के देव प्रकोष्ठों में बनी हैं। इनमें ऊपर शान्त भाव में देवी को बैठे दिखाया गया है और ठीक उसी के नीचे उग्रस्वरूपा देवी को किसी असुर से युद्धरत दिखाया गया है। इन मूर्तियों के निरूपण में तांत्रिक प्रभाव परिलक्षित होता है। यह प्रभाव उनके आयुधों एवं विवरणों (प्रज्वलित नेत्र, कपालमाला , सर्प) से स्पष्ट है। इनमें वैष्णवी, वाराही, चामुण्डा, दुर्गा, सरस्वती (ब्रह्माणी), माहेश्वरी, कौमारी एवं इन्द्राणी की मूर्तियां हैं जिनके साथ पारंपरिक आयुधों के साथ ही कपाल, सर्प एवं त्रिशूल जैसे शिव के आयुध और वाहन के रूप में क्रमशः गरुड, महिष, शव, सिंह, हंस, बृषभ, मयूर और गज की आकृतियां बनी हैं।

गर्भगृह की उत्तरी भित्ति की १८ हाथों वाली महिषमर्दिनी की पाषाण प्रतिमा उल्लेखनीय है। सिंहवाहिनी देवी रौद्रमुखी हैं। देवी का त्रिशूल मानव देहधारी असुर के वक्ष में प्रविष्ट है जिसके समीप ही महिष की आकृति भी बनी है। महिष की गर्दन कटी है और उसी से मानव देहधारी असुर निकल रहा है। देवी के हाथों में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्रिशूल, बाण, चक्र, खड्ग, वरदमुद्रा, खट्वांग, पात्र, खेटक, गदा, धनुष और घण्ट हैं। दो हाथों से देवी महिष की पूंछ और पैर पकड़कर उसे उठाए हुए हैं। गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की रथिका में ललितासीन गणेश की मूर्ति है। आसन के नीचे एक के स्थान पर दो मूषक आकृतियां (वाहन) एक दूसरे की ओर मुंह किये बनी हैं। गणेश के हाथों में पद्म, अक्षमाला, परशु और मोदक हैं। गले में सर्प लटक रहा है। गणेश का एकदन्त न होना ध्यातव्य है।

नेपाली मंदिर की देव मूर्तियों के विस्तृत निरूपण से कुछ बातें स्पष्ट हैं। पहली यह कि यह शिव मंदिर मूलतः तांत्रिक प्रभाव वाला रहा है। साथ ही इसमें धार्मिक सामंजस्य का भाव भी पूरी तरह स्पष्ट है। शिव के विभिन्न रौद्र रूपों (एकाकी एवं भैरव) के साथ ही मंदिर में शक्ति, सूर्य, विष्णु एवं गणेश की भी पर्याप्त मूर्तियां हैं। काशी के मंदिरों में शिव पंचायतन पूजन की परम्परा रही है, इसी कारण गर्भगृह में शिवलिंग तथा गर्भगृह की चारों ओर की भित्ति की रथिकाओं में ब्राह्मण धर्म के अन्य चार प्रतिनिधि देवों - विष्णु, सूर्य, गणेश, शक्ति की मूर्तियां बनायी गयीं। नेपाली मंदिर में भी चार रथिकाएं हैं, पर सम्प्रति दो ही रथिकाओं की मूर्तियां (गणेश, महिषमर्दिनी) सुरक्षित हैं। शिव पंचायतन प्रकार के इस मंदिर में तांत्रिक प्रभाव रति अंकनों तथा देव मूर्तियों (भैरव, शक्ति, शिव) के रौद्र मुखों एवं संहारक आयुधों से पूरी तरह स्पष्ट है। मंदिर की मूर्तियां शिव का प्रभाव लिए हुए हैं। इसी कारण शक्ति एवं अन्य देवताओं के साथ पारम्परिक आयुधों एवं वाहनों के अतिरिक्त शिव से सम्बद्ध कपाल, सर्प, त्रिशूल आदि भी दिखाये गये हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तृतीय अध्याय

संघाट या समन्वय मूर्तियां

देव मूर्तियां काल और क्षेत्र के संदर्भ में भारतीय समाज के चिन्तन को अभिव्यक्त करती हैं जिनमें समकालीन धर्म और संस्कृति की व्याख्या प्रस्तुत होती है। सम्प्रदाय भाव की प्रधानता के फलस्वरूप देवताओं की श्रेष्ठता को लेकर जो विसंगतियां या कटुता समाज में गुप्तोतर काल में प्रकट हुई उनका परिहार समन्वय का भाव दरशाने वाली संयुक्त देव मूर्तियों की अवधारणा और रूपायन के माध्यम से किया गया। संयुक्त या संघाट देव मूर्तियां साम्प्रदायिक ऐक्य का भाव व्यक्त करती हैं। ये मूर्तियां किसी धर्म विशेष की प्रतिमा न होकर दो या दो से अधिक धर्मों का संयुक्त प्रतिनिधित्व करती हैं। एक ही प्रतिमा में दो या दो से अधिक देवताओं की उपस्थिति संबंधित धर्मों के बीच के सामंजस्य को व्यावहारिक स्तर पर प्रकट करती है। धार्मिक समन्वयवादिता को प्रदर्शित करने के लिए भारतीय शिल्प में कुछ ऐसे मूर्ति स्वरूपों की कल्पना की गयी जिनमें दो या दो से अधिक देवताओं के आयुधों और लक्षणों को साथ - साथ प्रदर्शित किया गया। ऐसी मूर्तियों को मिश्र, युग्म, यामल, सम्पृक्त, संघाट और समन्वित मूर्तियां भी कहा गया है। ऐसी मूर्तियों का निर्माण दो प्रकार से किया गया। प्रथमतः, एक ही आकृति या प्रतिमा के दो भागों में दो अलग - अलग देवताओं की विशेषताएं प्रदर्शित की गयीं। ऐसी मूर्तियों के अन्तर्गत हरिहर और अर्धनारीश्वर मूर्तियां आती हैं। दूसरे वर्ग में एक ही मूर्ति में देवता के हाथों में दो या दो से अधिक देवताओं के आयुध और उनसे संबंधित वाहनों का निरुपण किया गया। हरिहरपितामह, हरिहरहिरण्यगर्भ (या हरिहरसूर्यपितामह), शिवलोकेश्वर और सूर्यशिव मूर्तियां इसके मुख्य उदाहरण हैं। इस वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें एक ही मूर्ति - फलक पर एक से अधिक देवताओं का अंकन हुआ है। इनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अंकन करने वाली हरिहरपितामह मूर्तियां मुख्य हैं जिनके प्राचीन उदाहरण एलोरा, आबनेरी, तन्जौर एवं खजुराहो से मिले हैं।

अर्धनारीश्वर, हरिहर, हरिहरपितामह, हरिहरहिरण्यगर्भ, सूर्यशिव, सूर्यनारायणब्रह्मा मूर्तियां धार्मिक सद्‌भावना और समन्वय का भाव व्यक्त करती हैं। मूर्तियों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शिवलिंगों के उदाहरण भी मिलते हैं जिनमें शिवलिंग के चारों ओर विष्णु, गणेश, शक्ति और सूर्य की आकृतियां उकेरी गयीं जो स्मार्त परम्परा के पंचायतन - पूजन के उदाहरण हैं। इसी प्रकार एक ही शिलापट्ट पर शिव, विष्णु, गणेश, शक्ति और सूर्य की आकृतियों के एक साथ निरूपण के उदाहरण भी मिलते हैं। काशी में पंचायतन - पूजन की परम्परा अधिकांश शिव मंदिरों (१८वीं - २० वीं शती ई.) में देखी जा सकती है। मंदिरों के गर्भगृहों में शिवलिंग प्रतिष्ठित होते हैं जबकि गर्भगृह की भीतर की चारों दीवारों पर क्रमशः विष्णु, गणेश सूर्य तथा देवी की आकृतियां उकेरी होती हैं। ऐसे उदाहरणों में विष्णु को एकल रूप में या लक्ष्मी के साथ निरूपित किया गया है। सूर्य को प्रतीकरूप में अथवा मानव - विग्रह में रथ पर आरूढ़ प्रदर्शित किया गया है। शक्ति की मूर्तियों में मुख्यतः अन्नपूर्णा की आकृति मिलती है। मध्यकाल में उत्तर भारत में कई पंचायतन मंदिरों का भी निर्माण हुआ जिनके प्रमुख उदाहरण राजस्थान (ओसियां), मध्यप्रदेश (खजुराहो) तथा उड़ीसा (भुवनेश्वर) से प्राप्त होते हैं। ऐसे उदाहरण ब्राह्मण धर्म के पांच प्रमुख सम्प्रदायों के सामंजस्य और पंचोपासना की परम्परा को दर्शाते हैं। पंचायतन शैली के मंदिरों में मध्यवर्ती मुख्य मंदिर के चारों कोनों पर चार लघु देवालय होते हैं जो चार अन्य प्रतिनिधि देवों से संबंधित होते हैं। वाहनों को एक साथ प्रस्तुत करके विभिन्न सम्प्रदायों के देवताओं के बीच सामंजस्य या संघाट भाव को अभिव्यक्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करने की परम्परा भी व्यवहार में रही है (चित्र ५०)। बौद्ध और जैन धर्मों में भी संयुक्त मूर्तियों का निरूपण हुआ है। ऐसे उदाहरणों में बौद्ध देवी - देवताओं और जैन तीर्थंकरों के साथ शिव, विष्णु, गणेश, ब्रह्मा एवं शक्ति आदि की आकृतियां बनायी गयीं। आठवीं से १२ वीं शती ई. के मध्य के उदाहरण नालन्दा, राजगिर, कुर्किहार, ओसियां, देवगढ़, खजुराहो एवं दिलवाड़ा से मिले हैं।

संयुक्त मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल में प्रारंभ हुआ जो बाद की शताब्दियों में अधिक लोकप्रिय हुआ। ऐसी मूर्तियों के लक्षण विभिन्न शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित हैं। बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन तथा अन्य ग्रन्थों में संयुक्त प्रतिमाओं का निरूपण हुआ है। बृहत्संहिता (छठी शती ई.) में शिव और पार्वती के अर्धनारीश्वर स्वरूप की चर्चा हुई है। अपराजितपृच्छा (१२ वीं - १३ वी. शती ई.) में अर्धनारीश्वर, कृष्णशंकर (हरिहर), हरिहरपितामह तथा हरिहरहिरण्यगर्भ स्वरूपों की मूर्तियों का उल्लेख मिलता है।[१] रूपमण्डन (१५ वीं शती ई.) में केवल हरिहर एवं हरिहरपितामह स्वरूपों का निरूपण हुआ है।[२] शिल्पशास्त्रों में मुख्यतः उपर्युक्त स्वरूपों का ही वर्णन मिलता है। दूसरी ओर मूर्त उदाहरणों में सूर्य-शिव, सूर्यनारायण, सूर्यब्रह्मा एवं शिवब्रह्मा के निरूपण भी प्राप्त होते हैं।

काशी विभिन्न धर्मों की संगमस्थली रही है। सम्भवतः यहीं कारण है कि इस नगर में विभिन्न धर्मों से संबंधित देवपीठों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। काशीखंड में ऐसे देवपीठों का विस्तृत विवरण प्राप्त होता है। समन्वयवादी भावना के कारण ही काशी में संयुक्त मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। ऐसी मूर्तियों की परम्परा ११ वीं - १२वीं शती ई. से प्रारंभ होकर १९ वीं - २० वीं शती ई. तक मिलती है। काशी से प्राप्त संघाट मूर्तियों में अर्धनारीश्वर,. हरिहरहिरण्यगर्भ हरिहरपितामह (या दत्तात्रेय) तथा पंचदेवपट्ट प्रमुख हैं। शैव और शाक्त तथा वैष्णव धर्मों की लोकप्रियता के बाद भी काशी से अर्धनारीश्वर मूर्ति के केवल दो ही उदाहरण मिले हैं जिनमें से एक कर्दमेश्वर मंदिर (कन्दवा) पर उत्कीर्ण है (चित्र ४९)। हरिहर मूर्ति का कोई भी उदाहरण नहीं मिला है।

अर्धनारीश्वर

शिव - पार्वती के संयुक्त रूप को अर्धनारीश्वर कहा गया है। यह स्वरूप शिव - शक्ति, नर - नारी, ब्रह्म - माया के संयोग का प्रतीक है जो सृष्टि का कारक है। यह रूप प्रकृति और पुरुष के ऐक्य का भी सूचक है। शैव और शाक्त सम्प्रदायों के बीच के समन्वय ने अर्धनारीश्वर प्रतिमा के निर्माण की परम्परा को जन्म दिया। इस स्वरूप को पार्वती - परमेश्वर और गौरीश्वर नाम भी दिया गया है। शैव पुराणों में अर्धनारीश्वर स्वरूप की कल्पना के विषय में विभिन्न कथायें मिलती हैं। अर्धनारीश्वर मूर्तियों के लक्षण सर्वप्रथम बृहत्संहिता और विष्णुधर्मोत्तरपुराण में मिलते हैं।[३] अपराजितपृच्छा में चुतर्भुज अर्धनारीश्वर मूर्ति में शिव (दक्षिणार्ध) के हाथों में त्रिशूल एवं अक्षमाला तथा पार्वती के हाथों में दर्पण और कण्डलु का उल्लेख मिलता है।[४]

अर्धनारीश्वर मूर्तियों का निर्माण कुषाणकाल में मथुरा में प्रारंभ हुआ जो कालान्तर में विशेष लोकप्रिय हुआ। इन मूर्तियों के प्रमुख उदाहरण महाबलीपुरम, एलिफैण्टा, एलोरा, तंजौर, भुवनेश्वर, मोढेरा, ओसियां एवं खजुराहो में देखे जा सकते हैं। काशी से प्राप्त

१-अपराजितपृच्छा २१३.२१-३४

२-रूपमण्डन ४.३०-३३

३-वामार्धे पार्वती कार्या शिवः कार्यश्चतुर्भुजः। अक्षमालां त्रिशूलं च तस्य दक्षिणहस्तयोः।।
दर्पणेन्द्रीवरौ कार्यो वामयोर्यदुनन्दन। एकवक्रो भवेच्छभुर्वामा च दायिता तनुः।।
द्विनेत्रश्च महाभाग सर्वाभरण भूपितः। अभेदभिन्न प्रकृतिः पुरुषेण महाभुजः।।
गौरीश्वरेतिविख्याता सर्वलोकनमस्कृता। कारणं कथितं पूर्व शूलादीनां भया तव।।
विष्णुधर्मोत्तरपुराण ५५.२-५

४-अर्धनारीश्वरं वक्ष्ये उमादेहार्धधारिणम्। वामाङ्के व स्तनं कुर्यात् कर्णे यं ताडपत्रकम्।।
वालिका वामकर्णे तु दक्षिणे कुण्डलं तथा। मुकुटार्धे च माणिक्यं जटाभारं च दक्षिणे।।
अर्धे चैव स्त्रियो रूपं सर्वाभरणभूपितम्। पुल्यं दक्षिणे भागे कपालकटिमेखलम्।।
त्रिशूलं चाक्षसूत्रं च तद्दक्षिणकरोद्धतम्। कमण्डलुं दर्पणं च गणेशं वामतस्तथा।।
अपराजितपृच्छा २१३.२१-२४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्धनारीश्वर मूर्ति का एक उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा ग्राम) पर उत्कीर्ण है (चित्र ४६)। १३ वीं शती ई. की चतुर्भुज मूर्ति में देवता त्रिभंग में खड़े हैं। मूर्ति का वामार्ध पार्वती भाग और दक्षिणार्थ शिव भाग है। मूर्ति के नीचे के दो हाथ खण्डित हैं जबकि ऊपर के दो हाथों में क्रमशः त्रिशूल और दर्पण प्रदर्शित हैं जो शिव और शक्ति के आयुध हैं। मूर्ति के दाहिने कान में सर्पकुण्डल और बायें में ताटंककुण्डल हैं। मूर्ति के दाहिने पार्श्व में शिव-वाहन नन्दी और बायें पार्श्व में शक्तिवाहन सिंह की आकृतियां बनी हैं। मूर्ति में शरीर रचना, भंगिमा और अलंकरण रुक्ष हैं। हरिश्चन्द्रघाट स्थित कामकोटीश्वर मंदिर (२० वीं शती ई.) की भित्ति पर उकेरी मूर्ति में शिव भाग (दक्षिणार्थ) में त्रिशूल एवं डमरू तथा पार्वती भाग (वामार्ध) में पद्म और अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं।

हरिहरहिरण्यगर्भ (या हरिहरसूर्यपितामह)

ब्राह्मण धर्म के त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में हुआ है। **मार्कण्डेयपुराण** (१०९.७१) में सूर्य के त्रिधा स्वरूप को ही ब्रह्मा, शिव और विष्णु का शरीर बताया गया है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव के साथ सूर्य की एकात्मकता का उल्लेख **शारदातिलकतंत्र** (१४.४१-४२) में भी हुआ है। **अपराजितपृच्छा** में हरिहरहिरण्यगर्भ नाम से सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की संघाट मूर्ति का निरूपण हुआ है। ग्रन्थ में मूर्ति के चतुर्भुज और अष्टभुज होने का निर्देश है। मूर्ति के चार मुख क्रमशः सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सूचक हैं। **अपराजितपृच्छा** में हरिहरहिरण्यगर्भ मूर्ति के हाथों के आयुध इस प्रकार बताये गये हैं - सूर्य के दो हाथों में पद्म, शिव के दो हाथों में त्रिशूल और खट्वांग, विष्णु के दो हाथों में शंख और चक्र तथा ब्रह्मा के दो हाथों में कमण्डलु और अक्षमाला।[५] हरिहरहिरण्यगर्भ प्रतिमा का निर्माण ल.आठवीं शती ई. में प्रारंभ हुआ जिनके प्रमुख उदाहरण राजस्थान (ओसियां, बाडोली), मध्यप्रदेश (खजुराहो), महाराष्ट्र (एलोरा) तथा दक्षिण भारत के चिदम्बरम नामक स्थान से प्राप्त हुए हैं। इन सभी स्थलों से प्राप्त प्रतिमाओं के निर्माण में सामान्यतया **अपराजितपृच्छा** के निर्देशों का पालन किया गया है।

काशी से हरिहरहिरण्यगर्भ स्वरूप की दो मूर्तियां मिली हैं। पहला उदाहरण ओंकारेश्वर के महाकालेश्वर मंदिर से और दूसरा मोक्षलक्ष्मी मंदिर (केदारघाट) से प्राप्त हुआ है। ११ वीं - १२ वीं शती ई. की महाकालेश्वर मंदिर की मनोज्ञ मूर्ति में हरिहरहिरण्यगर्भ पद्मासीन दिखाये गये हैं। प्रतिमा त्रिमुख और अष्टभुज है। मध्य मुख पर मन्दस्मित भाव स्पष्टतः द्रष्टव्य है। जटामुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार एवं यज्ञोपवीत से सुशोभित प्रतिमा पर्याप्त ऋतुक्षरित है। हाथों के केवल कुछ ही आयुध स्पष्ट हैं। सामने के दो हाथों से लिखने की मुद्रा का सुन्दर अंकन हुआ है। दाहिने हाथ में लेखनी स्पष्ट है। अन्य आयुधों में क्रमशः शंख (?), त्रिशूल, पद्म (?), डमरू, स्रुक एवं जलपात्र स्पष्ट हैं। त्रिशूल एवं स्रुक में एकरूपता लाने की दृष्टि से स्रुक की लम्बाई त्रिशूल के समान ही रखी गयी है जो एक दुर्लभ विशेषता है। मोक्षलक्ष्मी मंदिर (१५वीं - १६ वीं शती ई.) की मूर्ति स्थानक प्रतिमा है। यह प्रतिमा त्रिमुखी एवं अष्टभुजी है और इसमें सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव सभी के आयुध स्पष्ट हैं। पार्श्वमुख पूर्णतः स्पष्ट नहीं हैं। देवता के करों में क्रमशः वरदाक्ष (?), चक्र, सनालपद्म, सर्प (या स्रुक), सनालपद्म, त्रिफण नाग और शंख स्पष्ट हैं। एक हाथ की सामग्री अस्पष्ट है। लम्बी वनमाला से युक्त मूर्ति के पैरों के मध्य अरुण सारथि की छोटी आकृति उकेरी है। देवता के कमर में लम्बी धोती और शरीर पर अन्य आभूषण स्पष्ट हैं। केन्द्रीय मुख मन्दस्मित भाव वाला है।

हरिहरपितामह (या दत्तात्रेय)

हरिहरपितामह (या दत्तात्रेय) के जन्म की विस्तृत कथा **मार्कण्डेयपुराण** में मिलती है। कथा के अनुसार कुष्ठरोग से ग्रसित ब्राह्मण की पत्नी ने देवताओं से ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अपने पुत्र रूप में उत्पन्न होने का वर मांगा। वर के अनुरूप दत्तात्रेय रूप में स्वयं विष्णु अवतरित हुए। दत्तात्रेय स्वरूप वस्तुतः सृष्टि के तीन प्रमुख कार्यों - रचना, पालन और संहार से सम्बद्ध ब्राह्मण धर्म के तीन प्रमुख देवों ब्रह्मा, विष्णु और शिव का संघाट रूप है। सर्वप्रथम **अपराजितपृच्छा**

५-चतुर्वक्त्रं चाष्टबाहुं चतुर्ष्कैनिवासनम्। ऋज्वागतो मुखः कार्यः पद्महस्तो दिवाकरः।।
खट्वांगत्रिशूलहस्तो रुद्रो दक्षिणतः शुभः। कमण्डलुं चाक्षसूत्रमपरे स्यात् पितामहः।।
वामे तु संस्थितश्चैवं शङ्खचक्रधरो हरिः। एवं विधं प्रकर्तव्यं सर्वकामफलप्रदम्।।
अपराजितपृच्छा २१३.१२-१४

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(२१३. ३०-३१) और **रूपमण्डन** (४.३२-३३) में हरिहरपितामह नाम से दत्तात्रेय की मूर्ति का निरूपण हुआ है। दोनों ही शिल्पशास्त्रों में हरिहरपितामह को चार मुखों और छः भुजाओं वाला बताया गया है। उनके करों में अक्षमाला, त्रिशूल, गदा, कमण्डलु, खट्वांग और चक्र का उल्लेख है। अक्षमाला और कमण्डलु ब्रह्मा के, चक्र और गदा विष्णु के तथा त्रिशूल और खट्वांग शिव के आयुध हैं।

हरिहरपितामह स्वरूप की मूर्तियां मुख्यतः तीन रूपों में बनीं। प्रथम रूप में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की आकृतियों को अलग - अलग किन्तु एक ही फलक या पीठिका पर उनके सामान्य लक्षणों के साथ बनाया गया। हरिहरपितामह की सबसे अधिक मूर्तियां इसी स्वरूप में प्राप्त होती हैं। दूसरे रूप में अपराजितपृच्छा के विवरण के अनुरूप त्रिमुख और चतुर्भुज देवता के हाथों में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के आयुध और मूर्ति के समीप उनके पारंपरिक वाहन दिखाये गये। तीसरे रूप में विष्णु को योगासन में ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वाहनों के साथ दिखाया गया है।

हरिहरपितामह स्वरूप की मूर्तियों का निर्माण ल. आठवीं शती ई. में प्रारंभ हुआ। अन्य संघाट मूर्तियों की तुलना में इनके कम उदाहरण प्राप्त होते हैं। काशी से १८ वीं से २० वीं शती ई. की हरिहरपितामह स्वरूप की सात मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), दत्तात्रेय मंदिर (बिन्दुमाधवघाट), शीतलाघाट (दो उदाहरण), सिंधियाघाट, ब्रह्माघाट तथा दक्षिणामूर्ति मठ (मिसिरपोखरा) से मिली हैं। हनुमान मंदिर की अष्टधातु मूर्ति तीन मुखों और छः हाथों वाली है। प्रभावली से युक्त देवता के करों में गदा, चक्र, त्रिशूल, शंख, पद्म एवं वरद - मुद्रा स्पष्ट हैं। समभंग में खड़े देवता आभूषणों से सज्जित हैं। देवता की कमर में लम्बी धोती और मस्तक पर जटाओं का अंकन स्पष्ट है। देवता के पार्श्वों में नीचे बैठी हुई दो श्वान तथा एक सिंह आकृति बनी है। किसी नेपाली व्यक्ति द्वारा नेपाल से बनवाकर काशी में स्थापित की गई प्रस्तुत मूर्ति में नेपाली कला शैली की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। शीतलाघाट की दोनों मूर्तियां (१९वीं शती ई.) त्रिमुख और षड्भुज हैं। इनमें षड्भुज देवता पूर्णविकसित पद्म पर खड़े हैं और उनके करों में चक्र, कमण्डलु, त्रिशूल, डमरू, पुस्तक एवं पद्म प्रदर्शित हैं। साथ ही देवता के चरणों के समीप मध्य में वृषभ (शिव), दाहिनी ओर गरुड (मानवाकृति - विष्णु) एवं बायीं ओर हंस (ब्रह्मा) की आकृतियां उकेरी हैं।

दत्तात्रेय मंदिर एवं ब्रह्मा तथा सिंधिया घाटों की समभंग मूर्तियां एक मुख और छः भुजाओं वाली हैं। इन मूर्तियों में देवता के करों में वरदाक्ष, त्रिशूल, चक्र, शंख (या पद्म), डमरू और पुस्तक प्रदर्शित हैं। दत्तात्रेय मंदिर की गोल मुखाकृति वाली आकृति के मस्तक पर अलंकृत मुकुट, गले में वनमाला, पैरों में पादुका तथा शरीर पर आभूषण हैं। देवता के पार्श्वों में वृषभ एवं हाथ जोड़े गरुड की आकृतियां भी बनी हैं। दक्षिणामूर्ति मठ की मूर्ति हनुमान मंदिर की मूर्ति के समान ही समभंग में खड़ी एवं त्रिमुख और षड्भुज है। देवता के मस्तक पर ऊंची जटा तथा गले में हार सज्जित है। हाथों में क्रमशः डमरू, गदा, त्रिशूल, शंख, चक्र तथा कमण्डलु हैं। देवता के पार्श्वों में वृषभ, गरुड़ और हंस वाहनों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

गजलक्ष्मी - सरस्वती (?)

सामान्यतः दो देवियों को एक साथ प्रस्तुत करने वाली आकृतियां नहीं प्राप्त होती हैं किन्तु काशी के मणिकर्णिकाघाट की सीढ़ियों पर स्थित एक देवकुलिका में १२ वीं शती ई. की गजलक्ष्मी की एक ऐसी प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें संभवतः शिल्पी द्वारा दो देवियों के समन्वयात्मक स्वरूप के निरूपण की चेष्टा की गयी है। गजलक्ष्मी के एक हाथ में पुस्तक का प्रदर्शन लक्ष्मी और सरस्वती के संघाट भाव को व्यक्त करता है। प्रतिमा सिंहासन पर ललितासीन है। चतुर्भुजा देवी के करों में वरद - मुद्रा, पुस्तक, पद्म और फल स्पष्ट हैं। सम्मुख-दर्शना देवी के कन्धों के ऊपर पद्म पर दो गज आकृतियां उत्कीर्ण हैं जो देवी का जलाभिषेक कर रही हैं। देवी प्रभामण्डल और परिकर में व्याल आकृतियों से युक्त हैं। पर्याप्त ऋतुक्षरित मूर्ति के आसन पर पूजकों की आकृतियां भी देखी जा सकती हैं।

पंचदेव

पंचोपासना के अन्तर्गत आने वाले उदाहरणों को भी संयुक्त मूर्तियों की कोटि में रखा जा सकता है। भारतीय धर्म बहुदेववादी होते हुए भी मूलतः सामंजस्यवादी रहा है। स्मृतिग्रन्थों में प्रत्येक धर्म के देवता के प्रति सम्मान का भाव व्यक्त किया गया है। इसी से आगे चलकर उदारवादी स्मार्त सम्प्रदाय का आविर्भाव हुआ जिसमें प्रत्येक धर्म और उससे संबंधित देवता की महत्ता मानकर उसके उपासना की बात कही गई है। इसी धारणा के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

फलस्वरूप शिव, शक्ति, गणेश, विष्णु और सूर्य की साथ - साथ उपासना पंचायतन - पूजन के रूप में प्रारंभ हुई। ईसा की पहली शती में स्मार्तों के पंचायतन-पूजन के निश्चित प्रमाण मिलते हैं। पंचायतन - पूजन के पुरातात्विक प्रमाण मंदिरों एवं मूर्तियों दोनों ही रूपों में प्राप्त होते हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और दकन से पंचायतन मंदिरों के उदाहरण मिलते हैं।[६] पंचायतन - पूजा में शिव, विष्णु, सूर्य, देवी और गणेश में से किसी एक देवता को केन्द्र में प्रतिष्ठित कर चारों ओर अन्य चार देवताओं की मूर्तियां बनाई गयीं। मध्य के मुख्य देवता के आधार पर ही उसे क्रमशः शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य या देवी - पंचायतन नाम दिया गया।

काशी में शिव के साथ ही पंचोपासना से संबंधित अन्य ब्राह्मण देवों (शक्ति, विष्णु, सूर्य, गणेश) को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। १८ वीं - १९वीं शती ई. के मध्य नगर में अनेक पंचायतन मंदिरों का निर्माण हुआ। मंदिरों के साथ ही मूर्तियों के कुछ ऐसे उदाहरण भी मिले हैं जो काशी में पंचायतन - पूजन की लोकप्रियता का प्रमाण हैं। इन उदाहरणों में एक साथ ब्राह्मण धर्म के पांच देवआकृतियों का अंकन कर समन्वयात्मक भाव को व्यक्त किया गया है। ऐसी मूर्तियों के कई उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक उदाहरण पंचायतन शिवलिंग का है जो रामनगर किले में स्थित मंदिर में सुरक्षित है।[७] इसमें शिवलिंग के चारों ओर विष्णु, सूर्य, गणेश एवं देवी की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यह शिवलिंग काशी में शिवपूजन की प्रधानता का द्योतक होने के साथ - साथ अन्य देवों के प्रति सम्मानजनक भाव का भी सूचक है। ज्ञातव्य है कि इस प्रकार के शिवलिंगों के उदाहरण गुप्तकाल से सभी क्षेत्रों में मिलते हैं।

केदारघाट स्थित देवकुलिका में एक ही शिलापट्ट (१३वीं शती ई.) पर शक्ति, शिव, सूर्य, विष्णु एवं गणेश की आकृतियां बनी हैं। यह पंचदेव - पट्ट का उदाहरण है। चतुर्भुज देवी के एक कर में पद्म स्पष्ट है जबकि अन्य तीन हाथ खंडित हैं। द्विभुज शिव के हाथों में जलपात्र एवं स्रुवा का अंकन हुआ है। संभवतः शिल्पी ने त्रुटिवश देवी के स्थान पर शिव के करों में जलपात्र एवं स्रुवा का प्रदर्शन किया है। मध्य में एक ऊंचे स्तंभ पर रश्मियुक्त चक्र के मध्य सूर्य की चतुर्भुज पद्मासीन आकृति बनी है। सूर्य के एक कर में वरदाक्ष तथा दो में पद्म स्पष्ट हैं। एक हाथ घुटने पर है। विष्णु की स्थानक आकृति चतुर्भुज है जिनके करों में क्रमशः गदा, चक्र, शंख एवं पद्म प्रदर्शित हैं। अंत में गणेश की आसीन आकृति है जिनके करों में मोदकपात्र, परशु, पद्म तथा अक्षमाला हैं।

देल्हना ग्राम (पंचक्रोशी मार्ग) स्थित एक मंदिर में भी पंचदेव पट्ट (२२x५४ से.मी.) का एक उदाहरण है। पट्ट पर क्रमशः सूर्य, विष्णु - लक्ष्मी, शिवलिंग, गणेश तथा अन्नपूर्णा की आकृतियां बनी हैं। सूर्य को रथ पर रश्मियुक्त चक्र के मध्य पद्मासीन दिखाया गया है। चतुर्भुज सूर्य के हाथों में अक्षमाला, पद्म तथा शंख हैं। इस प्रकार प्रस्तुत सूर्य आकृति में विष्णु मूर्ति का भाव भी दिखाया गया है जो पूर्व परम्परा में आदित्य रूप में विष्णु के सूर्य से संबंधित होने का सूचक है। विष्णु के हाथों में गदा, चक्र, पद्म और शंख प्रदर्शित हैं। ललितासीन गणेश के तीन करों में मोदकपात्र, परशु और पद्म हैं जबकि एक हाथ घुटने पर स्थित है। अन्नपूर्णा के हाथों में स्रुक तथा जलपात्र देखा जा सकता है। मध्य में शिवलिंग के माध्यम से शिव की उपस्थिति दिखाई गई है। मोक्षलक्ष्मी मंदिर (केदारघाट) से भी १८ वीं - १९ वीं शती ई. का एक उदाहरण प्राप्त हुआ है जिस पर पंचदेवों की आकृतियां बनी हैं। पट्ट के बायें छोर पर हाथ जोड़े आकृति उत्कीर्ण है जबकि मध्य में क्रमशः चतुर्भुज विष्णु और गणेश की आसीन आकृतियां हैं। गणेश के तीन करों में क्रमशः मोदकपात्र, पद्म और पद्म प्रदर्शित हैं। चौथे हाथ का आयुध अस्पष्ट है। सूर्य आदित्य रूप में हैं। तत्पश्चात् पुनः एक आकृति बनी है। पर्याप्त ऋतुक्षरित होने के कारण अन्य दो आकृतियों की ठीक पहचान नहीं की जा सकी है।

पंचदेव - पूजन से संबंधित एक अन्य उदाहरण (१८वीं शती ई.)आदिकेशव घाट स्थित पंचदेवता मंदिर में है। प्रस्तुत उदाहरण में पंचोपासना के अन्तर्गत आने वाली पांच देव आकृतियों की उपस्थिति उनके वाहनों के माध्यम से दर्शायी गई है। ये आकृतियां एक आसन पर क्रम से बनी हुई हैं जो क्रमशः विष्णु (गरुड), शिव (वृषभ), शक्ति (सिंह), सूर्य (अश्व) तथा गणेश (मूषक) का प्रतिनिधित्व करती हैं। आदिकेशव के विष्णुपीठ होने के कारण प्रस्तुत उदाहरण में गरुड की आकृति को

६-स्टेला क्रैमरिश, दि हिन्दू टेम्पुल्स, दिल्ली, १९७६, पृ.२०।

७- कमल गिरि, 'ए रेयर पंचायतन शिवलिंग फ्राम वाराणसी', भगवन्त सहाय फेलिसिटेशन वाल्यूम, १९९४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्य आकृतियों से बड़ी बनाकर विष्णु की श्रेष्ठता का भाव प्रकट किया गया है। स्मरणीय है कि काशी विष्णु के बाद ही शिव पीठ के रूप में प्रसिद्ध हुई। संभवतः इसी कारण गरुड के बाद नन्दी की आकृति बनी है जो गरुड आकृति से कुछ छोटी है। इसके बाद क्रमशः सिंह, अश्व और मूषक आकृतियां बनी हैं जो एक - दूसरे से छोटी दिखायी गयी हैं। सम्मुख दर्शन वाली इन आकृतियों में गरुड, नन्दी एवं सिंह आकृतियां आसीन हैं जबकि अश्व खड़ा है। मूषक को अपने अधिपति गणेश के प्रिय मोदक का भक्षण करते हुए उत्कीर्ण किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चतुर्थ अध्याय

शिव

शिव को मुख्यतः सृष्टि का संहारकर्ता बताया गया है किन्तु नाम के अनुरूप उनके स्वरूपों में कल्याण का भाव भी परिलक्षित है। वैदिक रुद्र से कालान्तर में शिव का जो रूप विकसित हुआ उसे गुप्तकाल में और बाद के शैव पुराणों में एक विराट सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया और यह मान्यता विकसित हुई कि शिव महादेव के रूप में सृष्टि के संहार के साथ ही उसकी रचना और पालन से भी सम्बद्ध हैं। इसका एक उदाहरण यशोधर्मन विष्णुवर्धन का मन्दसौर (५३३-३४ई.) लेख है जिसमें शिव को 'भवसृज' अर्थात सृष्टि की रचना करने वाला कहा गया है। इसी लेख में शिव (शम्भू) के निर्देश पर स्वयंभू (ब्रह्मा) द्वारा सृष्टि की रचना, पालन और संहार का कार्य किये जाने का भी उल्लेख हुआ है। महादेव के रूप में शिव अपने ५ स्वरूपों - सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान - में सृष्टि के पांच मूलतत्वों जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश को भी नियंत्रित करते हैं। शिव को ईश्वर, नीलकण्ठ, त्र्यम्बक, पशुपतिनाथ, भूतनाथ, महेश्वर, महेश, विश्वनाथ, शंकर, त्रिपुरारि, उमापति, महादेव, पंचानन, नटेश (या नटराज) जैसे अनेक नामों से अभिहित किया गया है।[१] महाभारत (१३.१७) में शिव के सहस्त्र नामों का उल्लेख हुआ है। शिवपूजन से संबंधित प्रमुख संप्रदायों में पाशुपत, कापालिक, कालमुख, वीरशैव और लिंगायत सर्वप्रमुख हैं। शिव का पूजन प्रतीक (लिंग, त्रिशूल) एवं मानव-विग्रह दोनों ही रूपों में हुआ है।

काशी प्रारंभ से ही शैवधर्म का एक प्रधान केन्द्र रही है, इसी कारण यहां शिवपूजा की प्रधानता मिलती है। नगर के कोने - कोने में १८ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य के छोटे और बड़े आकार के अनेक शिव मंदिर देखे जा सकते हैं। मंदिरों के गर्भगृहों में अन्यत्र की भांति केवल - लिंग विग्रह की मूर्तियां ही प्रतिष्ठित हैं। भुवनेश्वर के लिंगराज, एलोरा के कैलाश, कांचीपुरम के कैलाशनाथ, खजुराहो के कन्दरिया महादेव एवं विश्वनाथ, तन्जौर के बृहदीश्वर तथा काशी के कर्दमेश्वर मंदिरों के गर्भगृहों में भी शिवलिंग ही स्थापित हैं। वस्तुतः योनिपट्ट पर स्थापित शिवलिंग सृष्टि के मूल में निहित पुरुष और प्रकृति के समन्वय का परिचायक है। संभवतः यही कारण है कि मानव रूप में शिव के विभिन्न स्वरूपों की कल्पना के बाद भी स्वतंत्र शिवलिंगों के निर्माण और पूजन की परम्परा सभी क्षेत्रों में देखी जा सकती है। आज भी शिव मंदिरों के गर्भगृहों में मानव - विग्रह के स्थान पर शिवलिंगों की स्थापना की ही परम्परा है जो एक ओर शिव के प्रतीकरूप में पूजन की सर्वकालिक लोकप्रियता और दूसरी ओर सृष्टि के मूल में निहित मौलिक तत्वों की धार्मिक स्वीकृति की सूचक है।

शिवलिंग को सृष्टि का संहारक तथा सर्जक माना गया है। गोपीनाथ राव ने विभिन्न पुराणों एवं तंत्रों के आधार पर इस सत्य को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। सामान्यतया लिंग के दो प्रकार बताये गये हैं - चल (जंगम) और अचल (स्थावर)। काशी में दोनों कोटि के उदाहरण मिलते हैं। मंदिरों में स्थापित शिवलिंग अचल लिंग के अन्तर्गत आते हैं। शिवलिंग के पांच वर्ग बताये गये हैं (१) अष्टोत्तरशतलिंग, (२) सहस्त्रलिंग, (३) धारालिंग, (४) शैवेष्ट्यलिंग तथा (५) मुखलिंग। अष्टोत्तरशत शिवलिंग में १०८ लिंगाकृतियां और सहस्त्रलिंग में एक हजार एक लिंगाकृतियां होती हैं। धारालिंग में धारायें बनी होती हैं। शैवेष्ट्यलिंग में ५ से ६४ तक कोण बने होते हैं तथा मुखलिंग में रुद्र भाग पर एक, तीन, चार या पांच मानव मुख बने होते हैं। पंचमुखलिंगों में वामदेव, तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात

१-टी० ए० गोपीनाथ राव, एलिमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी, मद्रास, १९१४-१६ खंड २ भाग १, पृ.५८-६४; जे० एन० बनर्जी, डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आईकनोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ. ४४६-८८; वी० एस० अग्रवाल, शिवमहादेव, वाराणसी, १९६६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा ईशान - शिव के ये पांच स्वरूप होते हैं। ईशान मुख आकाश का सूचक है जो अगोचर बताया गया है। रूपमण्डन (४.९२-९४) में एक, तीन और चार मुखों वाले शिवलिंगों का उल्लेख मिलता है। विभिन्न प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में शिवलिंगों की स्थापना, पूजन एवं स्वरूप से संबंधित विस्तृत वर्णन उपलब्ध हैं। महाभारत में एक स्थल पर स्पष्टतः कहा गया है कि केवल महादेव ही एकमात्र ऐसे देवता हैं जिनके यौन इन्द्रिय की पूजा की जा सकती है क्योंकि उसकी पूजा स्वयं ब्रह्मा, विष्णु जैसे देवता भी करते हैं। प्राचीन भारत में लिंग पूजा करने वालों का एक स्वतंत्र सम्प्रदाय भी था जिसे वीरशैव या लिंगायत शैव सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता था।

शिवलिंगों के उदाहरण शुंग (गुडीमल्लम्, दक्षिणभारत) और कुषाणकाल से ही प्राप्त होने लगते हैं जिसकी परम्परा अविच्छिन्न रूप से आज तक बनी है। कुषाणकाल में जहां सामान्य प्रकार के लिंगों को स्थान मिला वहीं गुप्तकाल में एकमुख लिगों की प्रधानता बढ़ी। काशी में शिव के अन्य लिंग रूपों को भी मान्यता मिली जिसका विवरण अनेक प्राचीन माहात्म्यों में मिलता है। काशी में शिवलिंग के अलग - अलग नाम भी प्राप्त होते हैं जिसका काशीखण्ड में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। राजघाट के उत्खनन से शिव के विभिन्न नामों वाली मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में काशी में शिवलिंग की पूजा का अनेक स्थानों पर उल्लेख किया है। काशी में शिवलिंगों के कई प्रकार प्राप्त होते हैं जिनमें सामान्य लिंगों के साथ - साथ धारालिंग, यंत्रलिंग, एकमुखलिंग, चतुर्मुखलिंग, पंचमुखलिंग प्रमुख हैं। काशीखण्ड (अध्याय ९४) में वाराणसी क्षेत्र के ५११ शिवालयों का उल्लेख हुआ है जिनमें ११ स्वयंभूलिंग, ४६ देवताओं द्वारा स्थापित शिवलिंग (गनप), ४७ ऋषियों द्वारा प्रतिष्ठित लिंग (आर्ष), ७ ग्रन्थों द्वारा पूजित लिंग, ४० गणों द्वारा अर्चित तथा २९५ अन्य शिवलिंग सम्मिलित हैं। विभिन्न आक्रमणों के फलस्वरूप अनेक शिवलिंग क्षतिग्रस्त हो गये किन्तु आज भी काशी के विभिन्न मंदिरों में तथा गंगा के किनारे स्थित घाटों की देवकुलिकाओं में शिवलिंगों के असंख्य उदाहरण तथा प्रकार देखे जा सकते हैं। काशी के मंदिरों में सामान्य लिंगों के साथ ही यंत्रलिंग, धारालिंग, एकमुख (चित्र ८), चतुर्मुख एवं पंचमुख (चित्र १०) शिवलिंग भी हैं।

नगर के विभिन्न भागों से प्राप्त शिवलिंगों को कई वर्गों में बांटा जा सकता है जिनमें सबसे अधिक संख्या सादे शिवलिंग - विग्रहों की है। ये शिवलिंग १७ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य के हैं। अन्य उदाहरणों में कुछ ऐसे शिवलिंग हैं जिनका नीचे का भाग चौकोर, मध्य का भाग अष्टकोणीय और ऊपर का भाग गोल है। ग्रन्थों में इन्हें क्रमशः ब्रह्माभाग, विष्णुभाग तथा रुद्रभाग कहा गया है। काशी में हरिश्चन्द्रेश्वर (पुष्पदत्तेश्वर मंदिर के समीप, म. नं. ३२/१०२, देवनाथपुरा) और गभस्तीश्वर (मंगलागौरी मंदिर, म. नं. के. २४/३४) शिवलिंग ऐसे ही लिंगों के उदाहरण हैं। सामान्यतया काशी में सादे शिवलिंगों के छोटे - बड़े, चपटे, लम्बे, मोटे एवं पतले कई प्रकार मिलते हैं। कुछ में शिवलिंग के साथ सर्पाकृति का अंकन भी हुआ है। ऐसे दो उदाहरण प्राप्त हैं जिनमें से एक प्रहलादघाट स्थित शिवमंदिर में वृक्ष के नीचे स्थित है और दूसरा गणेश मंदिर (मानसरोवर) में देखा जा सकता है। गणेश मंदिर के उदाहरण में ऊंचे शिवलिंग से सर्पाकृति लिपटी हुई है। लिंग के ऊपर पांच फण वाले सर्प का छत्र है। प्रायः इन सभी शिवलिंगों के अलग - अलग नामों एवं स्थानों का निर्देश काशीखण्ड में है। चपटे आकारवाले शिवलिंगों का एक अच्छा उदाहरण वर्तमान केदारेश्वर मंदिर में देखा जा सकता है। प्रस्तुत शिवलिंग योनिपट्ट से कुछ से. मी. ही ऊंचा है। चपटे प्रकार के एक शिवलिंग का उदाहरण चिन्ताहरण गणेश मंदिर (आदिकेशवघाट) में भी देखा जा सकता है। इसी प्रकार विशाल परिमाप वाले शिवलिंगों के उदाहरण वर्तमान तिलभाण्डेश्वर के तिलभाण्डेश्वर मंदिर, दशाश्वमेधघाट के शूलकंटेश्वर मंदिर, तैलंगस्वामी मठ (पंचगंगाघाट), लोलार्केश्वर मंदिर (तुलसीघाट), केदारघाट की सीढ़ियों पर स्थित मंदिर तथा देवनाथपुरा के एक शिवमंदिर में देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत शिवलिंगों में योनिपट्ट अलग - अलग आकार का है। योनिपट्टों को चौकोर (करुणेश्वर महादेव मंदिर एवं मोक्षद्वारेश्वर महादेव मंदिर, ललिताघाट), गोल, अष्टपहल एवं सर्पाकृति से घिरा (समराजेश्वर मंदिर, ललिताघाट) बनाया गया है। एक उदाहरण में (नर्मदेश्वर शिवमंदिर, गुरुधाम चौराहा) एक के स्थान पर दो योनिपट्ट क्रमशः एक के ऊपर एक दिखाये गये हैं। दूसरे उदाहरण में योनिपट्ट का मुखभाग नन्दी मुख है। कुछ उदाहरणों में अलंकृत किनारे वाले योनिपट्ट भूमि से कुछ ऊंचे बनाये गये हैं। ऐसा एक उदाहरण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदिवीरेश्वर मंदिर (ज्ञानवापी) में द्रष्टव्य है। कुछ उदाहरणों में योनिपट्ट की आकृति वाले अर्घे में स्थापित योनिपट्ट पर लिंग दिखाया गया है। ऐसे उदाहरण पंचमेश्वर महादेव मंदिर (मिसिरपोखरा) और मान्धातेश्वर मंदिर (ललिताघाट) में देखे जा सकते हैं। ओंकारेश्वर महादेव मंदिर में तांबे के तीन वृत्तों वाले योनिपट्ट पर शिवलिंग है जबकि विश्वनाथ मंदिर के उदाहरण में स्वर्ण निर्मित योनिपट्ट पर शिवलिंग स्थापित है।

शिवलिंग के कुछ उदाहरणों में अनुपात का ध्यान नहीं रखा गया है। इसका एक उदाहरण लोलार्केश्वर महादेव मंदिर (लोलार्ककुण्ड) में देखा जा सकता है जिसमें लिंग के अनुपात में अरघा छोटा बनाया गया है। अस्सी के एक शिव मंदिर (बी. १/२४८) में एक ही योनिपट्ट पर एक साथ पांच शिवलिंग स्थापित हैं। इस उदाहरण में मध्य में बड़ा शिवलिंग और चार कोनों पर चार छोटे शिवलिंग बनाये गये हैं। एक साथ पांच शिवलिंगों को बनाने का संभावित उद्देश्य महादेव रूप में पांच स्वरूपों का अंकन हो सकता है। इसी प्रकार द्वारिकाधीश मंदिर (शंकुधारा) में एक योनिपट्ट पर एक साथ छोटे - छोटे २४ शिवलिंग बने हुए हैं। कपिलेश्वर महादेव मंदिर, कपिलधारा की सीढ़ियों पर स्थित एक देवकुलिका में एक साथ ४२ शिवलिंगों का उत्कीर्णन मिलता है। कामाख्या मंदिर (कमच्छा) के एक उदाहरण में सात शिवलिंग और अन्त में नन्दी की आकृति मिलती है। इसी प्रकार शिवपुर के पंचपाण्डव मंदिर में एक पंक्ति में क्रम से पांच शिवलिंग और पांच नन्दी आकृतियां बनाई गई हैं।

नगर से दो सर्प आकृतियों के मध्य बने शिवलिंगों के उदाहरण भी मिले हैं। ऐसा एक उदाहरण चिन्तामणि गणेश मंदिर, पीताम्बरपुरा में है। पंचायतन परम्परा के अन्तर्गत भी कुछ शिवलिंग बनाये गये हैं जिनपर लिंग के चारों ओर क्रमशः गणेश, विष्णु, सूर्य एवं देवी की आकृतियां उकेरी हैं। नगर से मिले ऐसे शिवलिंगों के उदाहरण संख्या की दृष्टि से लगभग नगण्य से हैं। रामनगर किले के शिवमंदिर में ऐसा एक उदाहरण द्रष्टव्य है।[२] लोलार्ककुण्ड के भद्रेश्वर महादेव मंदिर में भी ऐसा ही शिवलिंग स्थापित है जिस पर एक ओर गणेश तथा दूसरी ओर पार्वती की आकृतियां स्पष्ट हैं।

लिंग - विग्रह पर जब मुखाकृति बनी होती है तब उसे मुखलिंग की संज्ञा देते हैं। ऐसे मुखलिंग एक, दो, चार अथवा पांच मुखों के साथ बनाये जाते हैं। काशी से एकमुख, द्विमुख, चतुर्मुख और पंचमुख शिवलिंगों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं जिनमें से कुछ चौथी - पांचवी शती ई. से १२ वीं शती ई. के मध्य के हैं।

एकमुख - शिवलिंग

नगर भ्रमण के दौरान सात एकमुख - शिवलिंगों के उदाहरण देखने को मिले। प्रारंभिक उदाहरणों में एक भैरवतालाब के समीपवर्ती वृक्ष के नीचे चबूतरे पर स्थित है और दूसरा देहलीविनायक मंदिर के समीप एक वृक्ष के नीचे रखा था।[३] भैरवतालाब का उदाहरण (७वीं - ८ वीं शती ई.) वर्तमान में भीमभैरव के नाम से पूजा जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में त्रिनेत्र और सौम्य मुख शिव के मस्तक पर ऊंचे जटाजूट की रचना भव्य है। देहलीविनायक के उदाहरण (५वीं - ६ठी शती ई.) में शिव के मुख पर मंदस्मित का मनोहारी भाव है। मुखाकृति सौम्य दर्शन वाली है। अर्धनिमीलित नेत्र तथा जटाजूट की रचना सुन्दर है। मुखाकृति के नीचे लिंग भाग पर एक पट्ट बंधा है (चित्र८)। योनिपट्ट पर स्थापित प्रस्तुत शिवलिंग की ऊंचाई लगभग १७० से. मी. है। १३ वीं - १४ वीं शती ई. का एक उदाहरण वर्तमान विश्वनाथ मंदिर के समीपवर्ती हनुमान मंदिर में अक्षयवट वृक्ष के नीचे विद्यमान है। इसमें मस्तक पर जटाएं स्पष्ट हैं। एकमुख लिंग का चौथा उदाहरण लोलार्ककुण्ड के भद्रेश्वर महादेव मंदिर में है। मत्स्योदरी स्थित मनकामेश्वर मंदिर से एकमुख लिंग के दो उदाहरण मिले हैं जिनमें से एक सुरक्षित है तथा दूसरा पर्याप्त खंडित है। प्रस्तुत शिवलिंग १० वीं शती ई. के पूर्व के जान पड़ते हैं। इनमें भी शिव के मस्तक पर जटाजूट द्रष्टव्य है। १२वीं - १३ वीं शती ई. का एक उदाहरण गोप्रेक्षेश्वर (के. ४/२४) के गौरीशंकर मंदिर में है जिसमें लिंग के एक ओर पार्वती मुख उत्कीर्ण है, जो दुर्लभ विशेषता है। राजमंदिर के अन्नपूर्णा मंदिर में २० वीं शती ई. के एकमुख लिंग का उदाहरण देखा जा सकता है।

चतुर्मुख - शिवलिंग

चतुर्मुख - शिवलिंग के चार उदाहरण प्राप्त हुए हैं

२- कमल गिरि, पूर्व निर्दिष्ट।
३- सर्वेक्षण के समय प्रस्तुत शिवलिंग यथास्थान सुरक्षित था।
४- नारायण दत्तात्रेय कालेकर, 'शिवलिंगों का क्रमिक विकास', आज, २४ फरवरी, १९६०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिनमें से एक आदिकेशवघाट स्थित संगमेश्वर मंदिर के परकोटे में और दूसरा राजघाट मार्ग पर सड़क के किनारे बने एक मंदिर में है। संगमेश्वर मंदिर का उदाहरण १२ वीं - १३ वीं शती ई. का प्रतीत होता है। इसमें शिवलिंग के चारों ओर चार मुख बने हैं। महाभारत में देवमण्डल की प्रदक्षिणा करने वाली तिलोत्तमा को देखने के लिए शिव द्वारा चार मुख प्रकट करने का उल्लेख आया है।[५] चतुर्मुखलिंग के दूसरे उदाहरण में ऊपर की ओर सहस्त्रलिंग का प्रदर्शन हुआ है जबकि नीचे शिव के तीन सामान्य मुख और चौथा विकराल मुख उत्कीर्ण हैं। मामान्य मुख सौम्य दर्शन वाले हैं जिनके मस्तक पर अर्धचन्द्र एवं जटाजूट तथा गले में माला स्पष्ट हैं। उग्र मुखाकृति में मुख खुला, जिह्वा बाहर निकली और मस्तक पर सर्पाकृति स्पष्ट हैं। शिव-लिंग के ऊपर की ओर अर्धचन्द्राकार आकृतियों की पंक्ति बनी है जिसके ऊपर का भाग सादा है। इस चतुर्मुख शिवलिंग की ऊंचाई ११८ से. मी. है (चित्र ११)। वर्तमान में यह उदाहरण पूर्णतया रंगा हुआ है। इस प्रकार प्रस्तुत उदाहरण में चतुर्मुख एवं सहस्त्र - लिंग दोनों ही अवधारणाओं को एक साथ प्रस्तुत किया गया है। १८ वीं शती ई. के चतुर्मुख शिवलिंग का एक उदाहरण तारकेश्वर शिव मंदिर (मणिकर्णिकाघाट) में तथा २० वीं शती का उदाहरण अक्रूरेश्वर मंदिर (वच्छराजघाट) में है।

सहस्त्र - लिंग

सहस्त्र-लिंग का एक उदाहरण साक्षीविनायक मंदिर के निकट (डी. १०/४६, विश्वनाथगली) देखा जा सकता है जो वर्तमान में कोटिलिंगेश्वर नाम से जाना जाता है। प्रस्तुत शिवलिंग में छोटे - छोटे लिंगों की कुल १५ पंक्तियां बनी हुई हैं और ऊपर का कुछ भाग सादा है। लिंग की कुल ऊंचाई ७० से. मी. है (रेखाचित्र३)।

पंचमुख - शिवलिंग

पंचमुख - लिंग का एकमात्र उदाहरण त्रिलोचन स्थित त्रिलोचन महादेव मंदिर से प्राप्त हुआ है। यह उदाहरण काफी बाद (१८ वीं शती ई.) का है। परम्परानुरूप इसमें शिव के तत्पुरुष, अघोर, वामदेव, सद्योजात एवं ईशान स्वरूपों का अंकन हुआ है (विष्णुधर्मोतरपुराण ३.१८.१-१६)। प्रस्तुत उदाहरण में चार दिशाओं में चार मुख बने हैं एवं उनके मध्य ऊपर की ओर पांचवें मुख का अंकन हुआ है। सभी आकृतियों में कानों में कुण्डल और मस्तक पर जटा प्रदर्शित है। लिंग के नीचे के भाग में कमल दल और योनिपट्ट पर चारों ओर २४ मुण्डों से बनी माला का अंकन ध्यातव्य है जिसके मध्य में एक सर्पाकृति बनी है। प्रस्तुत शिवलिंग में योनि पट्ट का अग्रभाग नन्दी मुखाकृति वाला है।

धारा-लिंग

काशी में कई धारा-लिंगो के संदर्भ प्राप्त होते हैं जिनमें से एक त्रिलोचन महादेव मंदिर में है। ५० से. मी. ऊंचे लिंग के ऊपर का कुछ अंश सादा है और नीचे के सम्पूर्ण भाग पर धाराओं की ग्यारह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं।

लिंगोद्भव

लिंगोद्भव मूर्तियों में कथा के अनुरूप ब्रह्मा और विष्णु को शिवलिंग का आदि और अन्त न समझ पाने के कारण या तो दोनों पार्श्वों में शिव की प्रशंसा की मुद्रा में खड़े दिखाया जाता है अथवा शिवलिंग के अकस्मात होने वाले विस्तार से भयभीत होकर उलटे मुंह ऊपर से नीचे की ओर गिरते हुए दिखाया जाता है। नीचे पुनः चतुर्भुज ब्रह्मा और विष्णु को पारम्परिक लक्षणों एवं हंस तथा गरुड वाहनों के साथ दिखाने की परम्परा मिलती है। शिव के लिंगोद्भव स्वरूप के उदाहरण प्रायः सभी मध्यकालीन कलाकेन्द्रों से प्राप्त हुए हैं। काशी में लिंगोद्भव स्वरूप का उदाहरण परवर्ती मंदिरों से नहीं मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि १२वीं - १३ वीं शती ई. के बाद लिंगोद्भव स्वरूप की मूर्तियां कम बनीं। केवल ललिताघाट स्थित मकान नं. सीके. १/५२ की भित्ति पर किसी प्राचीन मंदिर का खंडित अंश जुड़ा हुआ है जिस पर लिंगोद्भव स्वरूप का उत्कीर्णन हुआ है। ११ वीं - १२ वीं शती ई. के इस उदाहरण में मध्य में स्थित लिंग के दाहिनी ओर अञ्जलिमुद्रा में त्रिमुख ब्रह्मा और बायीं ओर प्रशंसा की मुद्रा में हाथ उठाये विष्णु दिखाये गये हैं (चित्र ९)। उपर्युक्त उदाहरण में विष्णु और ब्रह्मा की तुलना में शिव की श्रेष्ठता की पारम्परिक कथा को सुन्दर रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

यंत्र-लिंग

कभी - कभी शिवलिंग पर यंत्र भी बनाया गया है

५- महाभारत, आदिपर्व २१०.२३-२६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो तांत्रिक साधना से संबंधित है। ऐसे शिवलिंगों को यंत्र - लिंग कहा जाता है। काशी में यंत्र - लिंग के दो उदाहरण हैं। एक उदाहरण अन्नपूर्णा मंदिर में है तथा दूसरा महाराजा ग्वालियर के बालाजी मंदिर में है। काले पाषाण में बना बालाजी मंदिर का यंत्र - लिंग पातालेश्वर नाम से विख्यात है। प्रस्तुत लिंग पर कलात्मक रूप से श्रीयंत्र उकेरा गया है (रेखाचित्र १-२)। श्रीयंत्र से लिंग के ऊपर से नीचे तक का सम्पूर्ण भाग आवृत्त है जबकि अन्नपूर्णा मंदिर के उदाहरण में लिंग के रुद्रभाग में ही यंत्र बना है (रेखाचित्र ४-५)।

शिव की नर - विग्रह मूर्तियां

लिंग स्वरूप के अतिरिक्त काशी में शिव के विभिन्न नर - विग्रह स्वरूपों की मूर्तियां भी देखी जा सकती हैं। कुषाण - गुप्तकाल तक शिव के एकल, लिंग - विग्रह, उमा - महेश्वर, अर्धनारीश्वर तथा कुछ अन्य स्वरूपों की मूर्तियां बनीं। किन्तु गुप्तकाल के बाद विभिन्न पौराणिक कथाओं के आधार पर शिव के अनेक नवीन स्वरूपों का विकास हुआ जिनके उदाहरण उत्तर तथा दक्षिण भारत के विभिन्न मंदिरों पर देखे जा सकते हैं। ऐसे मंदिरों में भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर, खजुराहो का कन्दरिया महादेव तथा विश्वनाथ मंदिर, एलोरा का कैलाश मंदिर, कांचीपुरम् का कैलाशनाथ मंदिर, तंजौर का बृहदीश्वर मंदिर तथा चिदम्बरम का नटराज मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शिव के विभिन्न नर - विग्रह स्वरूप की प्रतिमाओं को सामान्यतः चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता हैः (१) सौम्य सा शान्त मूर्तियां, (२) अनुग्रह मूर्तियां, (३) संहार या उग्र मूर्तियां तथा (४) अन्य स्वरूपों वाली मूर्तियां। शिव की सौम्य मूर्तियों के अन्तर्गत शिव की एकल, उमा - महेश्वर, लकुलीश, दक्षिणामूर्ति, कल्याणसुन्दर, गंगाधर तथा चन्द्रशेखर मूर्तियां मुख्य हैं। अनुग्रह मूर्तियों में रावणानुग्रह, चण्डेशानुग्रह, अर्जुनानुग्रह, विष्ण्वनुग्रह, नन्दीशानुग्रह, विघ्नेश्वरानुग्रह स्वरूप मुख्य हैं। संहार स्वरूपों के अन्तर्गत यमान्तक, त्रिपुरान्तक, अंधकारि, कामान्तक, गजान्तक, शरभेष, ब्रह्मशिरसंछेदक, भैरव, जालन्धरवध एवं भिक्षाटन मूर्तियां प्रमुख हैं। शिव के अन्य स्वरूपों में शिव का नटराज, सदाशिव (चतुष्पाद - खजुराहो), अजएकपाद (भुवनेश्वर), महेश (एलिफैन्टा, ग्वालियर, एलोरा), एकादशरुद्र मूर्तियां विशेष उल्लेखनीय हैं। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त शिव की संयुक्त या संघाट स्वरूपों वाली मूर्तियां भी प्राप्त होती हैं जिनमें हरिहर, अर्धनारीश्वर, हरिहरपितामह, हरिहरहिरण्यगर्भ, शिवसूर्य एवं शिव-ब्रह्मा प्रमुख हैं। शिव के उपर्युक्त सभी स्वरूपों की मूर्तियों का निरूपण उत्तर तथा दक्षिण भारतीय शिल्पशास्त्रों में मिलता है। भारतीय परम्परा एवं कला में शिव की मूर्तियों में सर्वाधिक स्वरूपगत विविधता मिलती है। असुरों के संहार (त्रिपुरान्तक, अन्धकारि, गजान्तक) या देवताओं को दंडित (यमान्तक, कामान्तक) करने जैसे स्वरूपों में भी शिव का कल्याण भाव ही प्रकट हुआ है।

काशी से शिव की विभिन्न सौम्य, संहारक एवं संयुक्त स्वरूपों वाली मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। सौम्य मूर्तियों में शिव की एकल, उमा - महेश्वर (या हर - गौरी), लकुलीश, दक्षिणामूर्ति, कल्याणसुन्दर तथा गंगाधर मूर्तियां मुख्य हैं। अन्य स्वरूपों में भैरव, अन्धकारि, रावणानुग्रह तथा नटराज की मूर्तियां मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त हरिहरपितामह, हरिहरहिरण्यगर्भ तथा अर्धनारीश्वर मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं जिनका स्वतंत्र अध्ययन तीसरे अध्याय में हुआ है। खजुराहो, भुवनेश्वर तथा अन्य मध्यकालीन स्थलों की भांति काशी में भी उमा-महेश्वर स्वरूप की ही सर्वाधिक मूर्तियां बनीं।

शिव की एकल मूर्तियों में साक्षीविनायक मंदिर से प्राप्त एक विशाल प्रतिमा (७वीं - ८ वीं शती ई.) उल्लेखनीय है। प्रस्तुत प्रतिमा में शिव की तीन जटायें गंगा की तीन धाराओं के रूप में बहती हुई दिखाई गई हैं। ये तीन धाराएं गंगा, यमुना और सरस्वती के अंकन से भी संबंधित हो सकती हैं। संभवतः इसी कारण वर्तमान में इस प्रतिमा को त्रिजटा कहा जाता है। मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदा को काशी में त्रिजटा के दर्शन का विशेष माहात्म्य भी है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव को सिंहासन पर ललितमुद्रा में आसीन दिखाया गया है। उनका दाहिना पैर दक्षिणामूर्ति शिव के समान सिंहासन से नीचे भूमि तक लटका है और बायां सिंहासन पर पद्मासन में मुड़ा है। चतुर्भुज शिव के दो ऊपरी हाथों में त्रिशूल और डमरू हैं जबकि नीचे के दो हाथों में से दाहिना वरदमुद्रा में है और बायां खंडित है। कला की दृष्टि से प्रस्तुत प्रतिमा उल्लेखनीय है। शिव के मस्तक पर जटाजूट और उसके मध्य से निकली तीन जल धारायें सुन्दर रूप में बनाई गई हैं। जटा का कुछ भाग कन्धे तक लटक रहा है। श्मश्रु युक्त शिव कुण्डल, मणिबन्ध तथा भुजबन्ध से सज्जित हैं। सिंहासन के सम्मुख, वाहन के रूप में नन्दी का अंकन हुआ है। शिव के पार्श्वों में दो स्थानक चामरधारिणी आकृतियां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी उत्कीर्ण हैं।

शिव की एकल मूर्ति (गुप्तकाल) का दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण तिलभाण्डेश्वर मंदिर (भेलूपुर) से प्राप्त हुआ है। यह भी शिव की विशाल प्रतिमा है जिसमें कटि से ऊपर का भाग ही शेष है। चतुर्भुज प्रतिमा के हाथ खंडित हैं। प्रस्तुत प्रतिमा वृक्ष के नीचे एक मण्डप में स्थित है। शिव की मुखाकृति गोल है और उनके कानों में कुण्डल और गले में हार सुशोभित हैं। शिव का जटा - जूट गुप्त शैली में सुन्दर रूप में बना है और कुछ लटें कंधे पर भी लटक रही हैं। मुख पर शान्त भाव की सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति गुप्तशैली की विशेषता है।

शिव की १२ वीं शती ई. की कुछ एकल मूर्तियां मंदिरों एवं गंगा के घाटों पर मिली हैं। इनमें से एक मूर्ति अवड़े ग्राम (पंचक्रोशी मार्ग) के मोक्षेश्वर मंदिर से प्राप्त हुई है। पूर्वाभिमुख प्रवेशद्वार की दाहिनी ओर की एक रथिका में द्विभुज शिव समभंग में रूपायित हैं। उनका एक हाथ अभयमुद्रा में है और दूसरे में जलपात्र है। मृगचर्मधारी शिव जटाजूट, पट्ट के समान यज्ञोपवीत, कुण्डल, हार और भुजबन्ध से शोभित हैं। १२ वीं शती ई. की एक अन्य मूर्ति कन्दवा के कर्दमेश्वर मंदिर की दक्षिणी भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। षड्भुज शिव पद्मासन में बैठे हैं जिसे वासुदेवशरण अग्रवाल ने समदंश - मुद्रा बताया है।[६] देवता के समक्ष के दो हाथों में अक्षमाला तथा व्याख्यानमुद्रा हैं, जबकि अन्य दो दाहिनें करों में लकुट और त्रिशूल तथा बायें में त्रिशूल - घण्ट एवं खट्वांग हैं। शिव के मस्तक पर मुकुट एवं शरीर पर सामान्य आभूषण हैं। ललाट पर अंग्रेजी के 'यू' आकार का तिलक बना है। मस्तक पर जटा - जूट भी देखा जा सकता है। चेहरा कुछ चपटा और भावशून्य है। एल. के. त्रिपाठी ने प्रस्तुत आकृति के आभूषणों की तुलना उदयपुर के उदयेश्वर और खजुराहो के दूलादेव मंदिरों की आकृतियों से की है।[७]

११ वीं - १२ वीं शती ई. की शिव की एकल मूर्तियों के कुछ उदाहरण कालभैरव मंदिर और सोरईया महादेव मंदिर (भैरवनाथ), शीतलाघाट, सिंधियाघाट और प्रहलादघाट से प्राप्त हुए हैं। कालभैरव मंदिर और सोरईया महादेव मंदिर की प्रतिमाएं सिंदूर पुते होने के कारण विवरण की दृष्टि से अस्पष्ट हैं। शीतलाघाट की एक मढ़ी में सुरक्षित शिव की ललितासीन मूर्ति में एक हाथ वरदमुद्रा में है और दूसरे में त्रिशूल है। प्रस्तुत प्रतिमा एक वास्तुखण्ड पर बनी है। सिंधियाघाट की सीढ़ियों पर (म. नं. ७/१६४) स्थित एक मकान में त्रिभंग में खड़ी शिव की एक मूर्ति मिली है। सर्पभुजबन्ध से शोभित शिव यज्ञोपवीत पहने हैं। शिव का एक हाथ किसी वस्तु पर रक्खा है और दूसरे में संभवतः सर्प है। इसी प्रकार प्रहलादघाट से मिली शिव की चतुर्भुज ललितासीन मूर्ति में तीन अवशिष्ट करों में वरद्मुद्रा, त्रिशूल और जलपात्र प्रदर्शित हैं।

१५ वीं - १६ वीं शती ई. की शिव की एकल मूर्ति का एक उदाहरण शिवपुर के पंचपाण्डव मंदिर से प्राप्त हुआ है। मूर्ति पर्याप्त घिसी हुई है। समभंग में खड़े चतुर्भुज शिव के दो हाथ गणों के मस्तक पर रखे हैं और एक में त्रिशूल है। एक हाथ की सामग्री अस्पष्ट है। त्रिलोचनघाट के पंचाक्षेश्वर मंदिर में २० वीं शती ई. की एक शिव मूर्ति मिली हैं जिसमें त्रिभंग में खड़े शिव का एक हाथ कटि पर है और अन्य में त्रिशूल, डमरू तथा फल प्रदर्शित हैं।

शिव की अन्य एकल मूर्तियों में उन्हें नन्दी पर आरूढ़ अथवा स्थानक रूप में दिखाया गया है। नन्दी पर आरूढ़ आकृतियों के उदाहरण रामनगर के दुर्गा मंदिर से प्राप्त हुए हैं। दुर्गा मंदिर के एक उदाहरण (१८वीं शती ई.) में चतुर्भुज शिव को नन्दी पर बैठे दिखाया गया है। उनके तीन करों में वरदमुद्रा, त्रिशूल एवं सर्प हैं तथा एक हाथ वक्ष के समीप गंगा की धारा को स्पर्श करते हुए दिखाया गया है। शिव के जटाजूट से गंगा की धारा निकल रही है। त्रिनेत्र शिव के गले में लंबी माला और कमर में लंबी धोती तथा कन्धों पर उड़ता हुआ उत्तरीय प्रदर्शित है। नन्दी पर खड़ी शिव मूर्तियों के उदाहरण ललिताघाट के समराजेश्वर मंदिर (नेपाली मंदिर) के गर्भगृह में चारों प्रवेशद्वारों पर बने हैं। प्रायः चारों आकृतियों के विवरण समान हैं। इनमें स्वाभाविक मुद्रा में बैठी वृषभ आकृतियों पर चतुर्भुज शिव कृष्ण के समान त्रिभंगी मुद्रा में खड़े हैं। उनका एक हाथ व्याख्यानमुद्रा में है जबकि अन्य में डमरू, त्रिशूल और जलपात्र हैं। त्रिनेत्र शिव कपालयुक्त, मुकुट, सर्पकुण्डल, सर्पवलय, सर्पकियूर, सर्पनूपुर, कटिबन्ध, व्याघ्रचर्म, गले में हार, सर्पमाला एवं कपालमाला से शोभित हैं।

६- वासुदेवशरण अग्रवाल, 'दी कर्दमेश्वर टेम्पुल ऐट कंदवा, बनारस', स्टडीज इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५, पृ २६६।
७- एल० के० त्रिपाठी, दी कर्दमेश्वर टेम्पुल ऐट कंदवा, भारती, नं० ६, खंड-१, १९६२, पृ. १४३।

. Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उमा - महेश्वर (या हर -गौरी)

भारतीय कला में उमा - महेश्वर स्वरूप सबसे अधिक लोकप्रिय था। उमा - महेश्वर मूर्तियों में पीठिका पर या नन्दी पीठ पर शिव और पार्वती को आलिंगन - मुद्रा में विराजमान (कभी - कभी खड़े) दिखाया जाता है। ऐसी मूर्तियों को हर - गौरी भी कहा गया है। उमा - महेश्वर मूर्तियों के निर्माण की परम्परा कुषाणकाल में प्रारंभ हुई जो मध्यकाल में सभी क्षेत्रों में विशेष लोकप्रिय थी जिसके प्रभूत उदाहरण खजुराहो, मोढेरा, भुवनेश्वर, हिंगलाजगढ़, तन्जौर, एलोरा जैसे स्थलों से मिले हैं। दक्षिण भारत में इस स्वरूप को सोमास्कन्द नाम दिया गया क्योंकि शिव और पार्वती के मध्य उनके पुत्र स्कन्द कार्त्तिकेय को भी दिखाया गया है। प्रायः सभी शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में उमा - महेश्वर स्वरूप के निरूपण के सन्दर्भ मिलते हैं। **अपराजितपृच्छा** (२१३ .२५-२७) और **रूपमण्डन** (४.२७-२९) में चतुर्भुज शिव के दाहिने हाथों में मातुलिंग एवं त्रिशूल और बायें (ऊपरी हाथ) में सर्प का उल्लेख हुआ है। नीचे का बायां हाथ उमा का आलिंगन करते हुए उल्लिखित है। उमा का दाहिना हाथ शिव के कन्धे पर स्थित होगा जबकि दूसरे में दर्पण दिखाने का निर्देश है। पीठिका के नीचे गणेश, कार्त्तिकेय तथा शृंगी की मूर्तियां बनी होंगी। उपर्युक्त परम्परा के अनुसार ही उत्तर भारत के प्रायः सभी स्थानों पर उमा - महेश्वर की मूर्तियां बनीं। काशी की मूर्तियों में भी शास्त्रीय परम्परा का पालन किया गया है। तांत्रिक प्रभाव के फलस्वरूप शैव व शाक्त धर्मों में जो मधुर संबंध स्थापित हुआ उसके फलस्वरूप ही सम्पूर्ण भारत में उमा - महेश्वर की मूर्तियों का बहुतायत में रूपायन हुआ।

काशी में भी उमा - महेश्वर स्वरूप की ही सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं। कन्दवा के कर्दमेश्वर मंदिर पर ही उमा-महेश्वर की तीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सभी उदाहरणों में शिव चतुर्भुज और उमा द्विभुजा हैं। इन मूर्तियों में शिव और उमा को एक - दूसरे के समीप खड़े अथवा नन्दी या आसन पर बैठे तथा शिव को उमा का आलिंगन करते हुए निरूपित किया गया है। उमा के मुख पर सामान्यतः लज्जा का भाव व्यक्त हुआ है। उमा - महेश्वर की स्थानक मूर्तियों के उदाहरण लोलार्कमहादेव मंदिर (लोलार्ककुण्ड - अस्सी), देवकुलिका (केदारघाट, १२ वीं शती ई.), पाण्डेयघाट स्थित एक देवकुलिका, मानमंदिरघाट पर वृक्ष के नीचे, शीतला मंदिर (दशाश्वमेधघाट) तथा पंचक्रोशी मार्ग में स्थित एक छोटे मंदिर (सारनाथ के निकट) से प्राप्त हुए हैं। उमा - महेश्वर की आसीन मूर्तियों के उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा), शीतला मंदिर (प्रहलादघाट), देवकुलिका (पिशाचमोचन), कामाक्ष्या मंदिर (कमच्छा), गौरी - शंकर मंदिर (त्रिलोचनघाट), देवकुलिका (केदारघाट - पर्याप्त घिसी), लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट), महामृत्युंजय मंदिर (महामृत्युंजय), मंगला- गौरी मंदिर (सिंधियाघाट), शीतला मंदिर (भैरवनाथ), हनुमान तथा रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) से प्राप्त हुए हैं।

ल. सातवीं शती ई. की लोलार्ककुण्ड की प्रतिमा लोलार्कमहादेव मंदिर के गर्भगृह के पूर्वी प्रवेशद्वार के समीप के एक स्तंभ पर उत्कीर्ण है। इसमें तीन अन्य दिशाओं में पार्वती, विष्णु और गणेश की आकृतियां बनी हैं। शिव एवं उमा एक - दूसरे के समीप खड़े हैं। शिव दाहिने हाथ से उमा की ठुड्डी का स्पर्श कर उनके मुख को अपनी ओर लाने की चेष्टा कर रहे हैं। इस चेष्टा में उमा का शिव की ओर घूमा हुआ मुख भावपूर्ण मुद्रा में है। उमा के मुख पर लज्जा- भाव की अभिव्यक्ति झुके हुए नेत्रों के पलकों से स्पष्ट है। शिव बायें हाथ से उमा का आलिंगन कर रहे हैं। उनके एक दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में सर्प है। शिव - पार्वती की हल्की और इकहरे बदन वाली शरीर - रचना मृदु, स्वाभाविक तथा लता के समान तरंगित और ऊर्जा युक्त है। शिव और उमा के खड़े होने की शैली मनोहारी है जो दोनों के अन्तरावलम्बन को व्यक्त करती है। शिव के मस्तक पर सुन्दर जटाजूट और शरीर पर अन्य आभूषण (कुण्डल, भुजबन्ध, केयूर) सुशोभित हैं। द्विभुजा पार्वती का दाहिना हाथ शिव की पीठ पर है जबकि बायां कटि पर स्थित है। जूड़े के रूप में बंधी पार्वती की केश - सज्जा सुन्दर बन पड़ी है। दोनों आकृतियां लम्बी धोती से शोभित हैं। शिव के पैरों के समीप नन्दी वाहन भी उत्कीर्ण है (चित्र १३)।

उपरोक्त प्रतिमा जैसा एक अन्य जीवन्त उदाहरण पाण्डेयघाट स्थित एक छोटे मंदिर से भी प्राप्त हुआ है। कालक्रम की दृष्टि से यह मूर्ति भी सातवीं - आठवीं शती ई. की ही जान पड़ती है। यहां भी शिव पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं किन्तु उनका दाहिना हाथ पार्वती की ठुड्डी को स्पर्श करने के स्थान पर सीधा लटका हुआ है। शिव की भंगिमा सुंदर है और पार्वती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के मुख पर लज्जा का भाव भी स्पष्ट है। शिव का जटाजूट और पार्वती की गोल जूड़े के रूप में आबद्ध केश - सज्जा आकर्षक है। शिव मृगचर्म पहने हैं जबकि पार्वती लम्बी धोती से सज्जित हैं। परिकर में (ऊपर) ब्रह्मा और विष्णु की लघु आकृतियां भी बनी हैं जो मध्यकालीन देवमूर्तियों में परिकर सज्जा की अनिवार्य विशेषता रही है। ज्ञातव्य है कि ल. आठवीं शती ई. से सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में मुख्य देवता की आकृति के परिकर में त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) में से किन्हीं दो की आकृतियों के उत्कीर्णन की परम्परा मिलती है जो समन्वय भाव की सूचक है। शिव के गले में सर्पहार तथा शिव और पार्वती के मध्य ऊपर की ओर त्रिशूल का अंकन हुआ है। ऋतुक्षरित होने के कारण अन्य विवरण स्पष्ट नहीं हैं।

स्थानक मूर्ति का एक उदाहरण (११ वीं - १२ वीं शती ई.) मानमंदिरघाट पर वृक्ष के नीचे एक चबूतरे पर द्रष्टव्य है। लोलार्ककुण्ड के उदाहरण के समान यहां भी द्विभंग में खड़े शिव को पार्वती की ठुड्डी का स्पर्श करते और उनका चेहरा अपनी ओर घुमाते हुये दिखाया गया है। शिव का बायां हाथ आलिंगन - मुद्रा में पार्वती के कन्धे पर है। अन्य एक हाथ वरद - मुद्रा में है और दूसरे में त्रिशूल है। शिव एवं पार्वती के मस्तकों के मध्य भाग में सर्प का अंकन हुआ है। शिव के जटाजूट की लटें कन्धे को आवृत्त कर रही हैं। पार्वती सुन्दर गोल जूड़े से सुशोभित हैं। केशों की अलकें माथे के सम्मुख भाग में द्रष्टव्य हैं। दोनों आकृतियों के शरीर पर सामान्य आभूषणों की सज्जा है और कमर पर धोती है। पार्वती की धोती नीचे तक लम्बी है। द्विभंग में खड़ी लज्जावनत पार्वती का एक हाथ शिव का आलिंगन करता हुआ और दूसरा कटि पर स्थित है। शिव - पार्वती के पीछे नन्दी की आकृति बनी है जिसे सहज भाव से अपना मुख उठाये शिव - पार्वती की ओर निहारने की मुद्रा में दिखाया गया है। स्थानक मूर्ति (पूजित) का एक अन्य उदाहरण शीतला मंदिर (दशाश्वमेधघाट) में है। ल. १२ वीं शती ई. के प्रस्तुत उदाहरण में शिव एवं पार्वती को लोलार्ककुण्ड के उदाहरण की भांति सुन्दर भंगिमा में खड़े दिखाया गया है। द्विभंग में खड़े शिव पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। उनके दाहिने हाथों में से एक में त्रिशूल है जबकि दूसरा पार्वती के कन्धे पर रखा है। एक बायें हाथ की सामग्री अस्पष्ट है, किन्तु दूसरे से शिव पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। शिव की केश - रचना ऊंचे जटाजूट और पार्वती की केशरचना गोल जूड़े के रूप में बनी है। आकृतियों के मुख गोल एवं शरीर भरा हुआ है। पार्वती एक हाथ से शिव का आलिंगन कर रही हैं। उनका दूसरा हाथ कटि पर स्थित है। परिकर में ऊपर एक ओर ब्रह्मा और दूसरी ओर विष्णु की आसन आकृतियां उकेरी हैं। नीचे एक ओर गणेश तथा दूसरी ओर कार्त्तिकेय की आसीन आकृतियां भी आकारित हैं। प्रस्तुत प्रतिमा मध्यकालीन उमा-महेश्वर मूर्तियों की विशेषताओं वाली और अपराजितपृच्छा के निर्देशों से निर्दिष्ट है। शीतला मंदिर से ही १२ वीं शती ई. की शिव - पार्वती की एक अन्य स्थानक मूर्ति भी मिली है। प्रतिमा कहीं और से लाकर शीतला मंदिर की दालान की एक रथिका में रखी गई है। शिव - पार्वती द्विभंग में एक - दूसरे के समीप खड़े हैं। शिव का दाहिना हाथ आलिंगनमुद्रा में पार्वती के कन्धे पर है और बायां जानु पर स्थित है। पार्वती दाहिने हाथ से शिव का दाहिना हाथ पकड़े हुए हैं। पर्याप्त ऋतुक्षरित मूर्ति में शिव के मस्तक पर जटाजूट स्पष्ट है।

११ वीं - १२ वीं शती ई. का एक अन्य उदाहरण मानमंदिरघाट की सीढ़ियों के पास वृक्ष के नीचे चबूतरे पर स्थित है। द्विभंग में खड़ी आकृतियों में शिव की अपेक्षा पार्वती की आकृति छोटी दिखायी गयी है जिसकी ऊंचाई शिव की कमर से कुछ ही ऊपर तक है। चतुर्भुज शिव एक दाहिने हाथ से पार्वती का हाथ पकड़े हैं जबकि उनके दूसरे दाहिने हाथ में सर्प है। बायें हाथों में से एक में त्रिशूल है और दूसरा हाथ खंडित है। लम्बी धोती धारण किये पार्वती के दाहिने हाथ की सामग्री अस्पष्ट है, जबकि बायां हाथ शिव के दाहिने हाथ में है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव की जटा को कन्धों तक लटकता हुआ दिखाया गया है। सारनाथ के समीप पंचक्रोशी मार्ग पर स्थित एक छोटे मंदिर में भी पर्याप्त घिसी उमा-महेश्वर की १२ वीं शती ई. की एक मनोज्ञ मूर्ति सुरक्षित है। इस आलिंगन मूर्ति में देवता द्विभंग में खड़े हैं। शिव बायें हाथ से पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं जबकि उनका दाहिना हाथ जानु पर स्थित है। दोनों आकृतियों की ऊंची केश - सज्जा, कमर पर लम्बी धोती एवं शरीर पर अन्य आभूषण द्रष्टव्य हैं।

ललितासीन उमा - महेश्वर मूर्तियों के उदाहरण ११ वीं - १२ वीं शती ई. से २० वीं शती ई. के मध्य के हैं। ये उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर (कन्दवा), शीतला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंदिर (प्रहलादघाट), कामाक्ष्या मंदिर (कमच्छा), गौरीशंकर मंदिर (त्रिलोचनघाट), शीतला मंदिर (भैरवनाथ और दशाश्वमेधघाट), महामृत्युंजय मंदिर (महामृत्युंजय), लक्ष्मी- नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट), मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), हनुमान तथा रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) और देवकुलिका (केदारघाट) से प्राप्त हुए हैं। लक्ष्मी - नारायण और रघुराजेश्वर मंदिरों को छोड़कर अन्य सभी उदाहरणों में पार्वती को शिव की गोद में बैठे दिखाया गया है।

कर्दमेश्वर मंदिर पर १२ वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्तियों के तीन उदाहरण हैं। तीनों ही मूर्तियां मंदिर की दक्षिणी भित्ति की रथिकाओं में उकेरी हैं। लक्षणों की दृष्टि से समान होते हुए भी परिकर की आकृतियों के संयोजन में विविधता द्रष्टव्य है। कभी पार्श्ववर्ती गणेश - कार्त्तिकेय आसन के नीचे और कभी ऊपरी भाग में उत्कीर्ण हैं। कभी परिकर में ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियां भी बनी हैं। कभी शिव - पार्वती नन्दी पर विराजमान हैं और कभी शिव के साथ नन्दी और पार्वती के साथ सिंह वाहन उत्कीर्ण है। शैली एवं लक्षणों की दृष्टि से ये मूर्तियां खजुराहो के उदाहरणों जैसी हैं। पहली मूर्ति में शिव और पार्वती नन्दी पर ललितासीन हैं। शिव के दो करों में पुष्प (वक्ष के समीप) और त्रिशूल हैं जबकि अन्य दो करों से शिव पार्वती के केशों का स्पर्श और आलिंगन करते हुए दिखाये गये हैं। जटामुकुट, कुण्डल, हार, लम्बी माला, मेखला, भुजबन्ध से सुशोभित शिव के बायें पैर के समीप नृत्यमुद्रा में शिवभक्त शृंगी की आकृति उकेरी है। त्रिरथ आसन पर नन्दी की आकृति बनी है जिसके पैरों के मध्य कोई पात्र भी रखा है। शिव के आसन के दाहिनी ओर गणेश और बायीं और कार्त्तिकेय की आसन आकृतियां बनी हैं। कार्त्तिकेय के हाथों में अभय - मुद्रा और शक्ति प्रदर्शित हैं। शिव और उमा का एक - दूसरे की ओर निहारते हुए रूपायन अलौकिक है। पार्वती की आकृति हार, कुण्डल, वलय, मेखला और नूपुर से सज्जित है। पार्वती की केश - सज्जा सुन्दर है। परिकर में ऊपर चतुर्भुज ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियां हैं। जटामुकुट और श्मश्रुधारी त्रिमुख ब्रह्मा के हाथों में अभय - मुद्रा, स्रुक, पुस्तक तथा जलपात्र प्रदर्शित हैं। विष्णु के हाथों में अभय - मुद्रा, गदा, चक्र और शंख हैं। ब्रह्मा और विष्णु की आकृतियों के ऊपर मालाधारी गन्धर्वों की आकृतियां हैं। शिव के प्रभामंडल के ऊपर एक पट्ट पर मध्य भारत के खजुराहो और हिंगलाजगढ़ के उदाहरणों के समान पांच शिवलिंगों का अंकन हुआ है। मूर्ति छोरों पर एक के ऊपर एक क्रमशः गज - व्याल - मकर एवं योद्धा की आकृतियां उकेरी हैं (चित्र १४)। ज्ञातव्य है कि मध्यकालीन देवमूर्तियों में सभी क्षेत्रों के उदाहरणों में गज - व्याल - मकर और योद्धा का नियमित अंकन हुआ है।

कर्दमेश्वर मंदिर की दूसरी मूर्ति में ललितासीन चतुर्भुज शिव की गोद में पार्वती बैठी हैं जिनका दो हाथों से शिव आलिंगन कर रहे हैं। मन्दस्मित भाव वाली शिव और पार्वती की आकृतियां एक - दूसरे को निहारने की मुद्रा में प्रदर्शित हैं। शिव के दो हाथ आलिंगनमुद्रा में हैं जबकि अन्य दो हाथों में पुष्प और त्रिशूल प्रदर्शित हैं। शिव के आसन के नीचे नन्दी और पार्वती की आकृति के नीचे सिंह वाहन उत्कीर्ण हैं। प्रभामण्डल के दोनों ओर द्विभुज गणेश एवं कार्त्तिकेय की आकृतियां बनी हैं। गणेश के करों में गदा और मोदक तथा कार्त्तिकेय के करों में शक्ति एवं फल हैं। शिव के मस्तक पर जटामुकुट और शरीर पर आभूषण हैं। पार्वती के केश सुन्दर जूड़े के रूप में संवरे हैं और उनके बायें कर में दर्पण है जबकि दाहिने हाथ से वह शिव का आलिंगन कर रही हैं। पार्श्वों में दो अनुचर (गण) आकृतियां उकेरी हैं। दाहिनी ओर की अनुचर आकृति का दाहिना हाथ कटि - मुद्रा में है और बायें में त्रिशूल है जबकि बायीं ओर की अनुचर आकृति के दाहिने हाथ में खट्वांग स्पष्ट है। मंदिर की तीसरी मूर्ति में पहली मूर्ति की भांति शिव और उमा को नन्दी पर ललितासन में दिखाया गया है। चतुर्भुज शिव के ऊपरी हाथों में त्रिशूल और सर्प हैं जबकि नीचे के दोनों हाथ पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। शिव के मस्तक पर जटाजूट, माथे पर तिलक और वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह स्पष्ट हैं। शिव की बायीं गोद में आसीन पार्वती शिव की ओर निहार रही हैं। समूचा शिल्पांकन मनोहारी है। पार्वती की आकृति के नीचे उनका सिंह वाहन भी उत्कीर्ण है। उमा -महेश्वर के पार्श्वों में अनुचर आकृतियां बनी हैं। दक्षिण पार्श्व की आकृति के हाथों में दण्ड और खट्वांग तथा वाम पार्श्व की आकृति के हाथ में त्रिशूल देखा जा सकता है। प्रभामण्डल के दाहिनी ओर चतुर्भुज ब्रह्मा और बायीं ओर चतुर्भुज विष्णु की आकृतियां हैं। ब्रह्मा और विष्णु के ऊपर मालाधारी गन्धर्व आकृतियां बनी हैं। ऊपर की ओर मध्य में बाहर निकली पट्टिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर एक चतुर्भुज आकृति भी बनी है जिसके लक्षण स्पष्ट नहीं हैं।

११ वीं - १२ वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्ति का एक और सुन्दर उदाहरण कामाक्ष्या देवी मंदिर (कमच्छा) में है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव और पार्वती ललितासीन हैं। शिव का दाहिना पैर नीचे किसी पीठिका पर स्थित है जिसके समीप नन्दी की आकृति बनी है जबकि बायीं ओर सिंह की आकृति है जिसकी पीठ पर पार्वती का बायां पैर स्थित है। चतुर्भुज शिव का एक हाथ दाहिनी जांघ पर है तथा दो हाथों में त्रिशूल और सर्प हैं। चौथा हाथ आलिंगनमुद्रा में पार्वती के कन्धे पर स्थित है। पार्वती का दाहिना हाथ शिव का आलिंगन करते हुए प्रदर्शित है जबकि बायां खण्डित है। पार्श्वों में अनुचर आकृतियां बनी हैं। कोणाकार परिकर में ऊपर की ओर चतुर्भुज ब्रह्मा एवं विष्णु तथा मध्य में किसी अन्य देवता की चतुर्भुज आसन आकृतियां बनी हैं। केवल विष्णु के करों में गदा और पद्म स्पष्ट हैं। १२वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्ति का एक खंडित उदाहरण लक्ष्मीकुण्ड के समीप वृक्ष के नीचे स्थित है जिसमें शिव के पैरों के समीप नन्दी, दाहिनी ओर गणेश तथा पार्श्वों में चामरधारी आकृतियां स्पष्ट हैं। शीतला मंदिर (भैरवनाथ) तथा हनुमान मंदिर (विश्वनाथगली) के उदाहरण भी १२ वीं शती ई. के हैं।

१३ वीं - १४ वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्तियों के तीन उदाहरण प्राप्त हुये हैं। शीतला मंदिर (प्रहलादघाट) के उदाहरण में एक ही पट्ट पर एक साथ दो उमा - महेश्वर मूर्तियों का अंकन उल्लेखनीय है। दोनों ही उदाहरणों में शिव की बायीं गोद में पार्वती बैठी हैं। शिव का मुख सम्मुख दर्शन वाला है, किन्तु पार्वती को शिव की ओर देखते हुए पार्श्व दर्शन में रूपायित किया गया है। शिव के मस्तक पर लम्बा मुकुट सुशोभित है और पार्वती के मस्तक पर केशों की सज्जा है। शिव के दो करों में फल एवं त्रिशूल स्पष्ट हैं। अन्य दो हाथों से शिव पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। पार्वती को भी शिव का आलिंगन करते हुए निरूपित किया गया है। मूर्तियों के पर्याप्त खंडित एवं घिसे होने के कारण अन्य विवरण स्पष्ट नहीं हैं। इसी प्रकार की एक अन्य प्रतिमा गौरीशंकर मंदिर (के. ४/२४, त्रिलोचनघाट) से प्राप्त हुई है। यहां भी शिव की बायीं गोद में उमा आसीन हैं। शिव के तीन हाथों में फल, त्रिशूल एवं सर्प हैं जबकि एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। शिव - पार्वती दोनों के मस्तक पर मुकुट एवं गले में सुन्दर हार सुशोभित हैं। मूर्ति के नीचे का भाग खण्डित है। गौरीशंकर मंदिर में १४ वीं शती ई. की उमा - महेश्वर की एक अन्य प्रतिमा भी है जिसमें पार्वती का सिंह वाहन स्पष्ट है। उल्लेखनीय है कि यहां बायीं ओर के स्थान पर पार्वती को दाहिनी ओर दिखाया गया है। शिव के करों में फल, पद्म और त्रिशूल स्पष्ट हैं।

ल. १२ वीं - १३ वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्ति का एक उदाहरण पिशाचमोचन स्थित एक देवकुलिका से प्राप्त हुआ है। यद्यपि प्रस्तुत उदाहरण ऋतुक्षरित है किन्तु शिव की बायीं गोद में बैठी द्विभुजा पार्वती की आकृति स्पष्ट है। चतुर्भुज शिव का एक हाथ दाहिनी जांघ पर स्थित है, दूसरे में त्रिशूल है तथा दो अन्य हाथ आलिंगनमुद्रा में हैं। शिव के मस्तक पर भारी जटामुकुट और पार्वती के मस्तक पर गोल जूड़े की केश - सज्जा द्रष्टव्य है।

१३ वीं - १४ वीं शती ई. के दो अन्य उदाहरण महामृत्युंजय मंदिर से प्राप्त हुए हैं। दोनों ही उदाहरण वास्तुखंड पर उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण में शिव के तीन हाथों में अभयमुद्रा, त्रिशूल और सर्प हैं जबकि एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। पार्वती की छोटी और पर्याप्त घिसी आकृति शिव की गोद में विराजमान है। दूसरे उदाहरण में शिव को उमा की ठुड्डी का स्पर्श करते दिखाया गया है।

उमा - महेश्वर मूर्तियों के तीन उदाहरण भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी-नारायण मंदिर (दो उदाहरण) और रघुराजेश्वर मंदिर (१७९५ ई.) से भी प्राप्त हुए हैं। सभी उदाहरणों में ललितासीन शिव और पार्वती नन्दी पर आरूढ़ हैं। लक्ष्मी-नारायण मंदिर के उत्तरी जंघा की भद्ररथिका की मूर्ति में शिव की गोद में नमस्कारमुद्रा में पार्वती की छोटी आकृति बनी है। शिव के दो हाथों में त्रिशूल एवं डमरू स्पष्ट हैं। शिव का एक हाथ पार्वती का आलिंगन कर रहा है। शिव के शरीर पर अन्य आभूषणों के साथ ही सर्पवलय और मस्तक पर सर्प द्रष्टव्य है। शिव की जटा से गंगा की धारा निकलती हुई दिखाई गई है जिसमें नमस्कारमुद्रा में गंगा की आकृति भी बनी है। लक्ष्मीनारायण मंदिर का दूसरा उदाहरण पूर्वी अंगशिखर की रथिका में उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में भी उमा (नमस्कार - मुद्रा में) शिव की गोद में विराजमान हैं। यद्यपि शिव का मुख - भाग खंडित है

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु उनके दो करों में अक्षमाला और मुण्डमाला स्पष्ट हैं, जबकि बायें हाथ से शिव पार्वती का आलिंगन कर रहे हैं। रघुराजेश्वर मंदिर का उदाहरण मंदिर की उत्तरी जंघा की भद्ररथिका में उत्कीर्ण है। प्रस्तुत मूर्ति में लक्ष्मी - नारायण मंदिर की मूर्ति के समान शिव - पार्वती नन्दी पर आरूढ़ हैं। सम्मुख दर्शन वाले शिव की गोद में नमस्कार - मुद्रा में पार्वती की आकृति बैठी है। शिव के दो हाथों में त्रिशूल और डमरू स्पष्ट हैं जब कि अन्य दो हाथ आलिंगनमुद्रा में हैं। अन्य आभूषणों के साथ नाग - उदरबन्ध और मस्तक पर सर्प का अंकन हुआ है।

१९ वीं शती ई. का एक उदाहरण रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) से प्राप्त हुआ है। सिंहासन पर विराजमान शिव की बायीं गोद में पार्वती बैठी हैं जिनकी गोद में कार्तिकेय के स्थान पर गणेश की आकृति द्रष्टव्य है। सामने नन्दी उत्कीर्ण है। शिव का एक हाथ खंडित है जबकि अन्य हाथों में दण्ड और डमरू (?) देखा जा सकता है। शिव के गले में मुण्डमाला और जटा में अर्धचन्द्र हैं। शिव एवं उमा दोनों की आकृतियां सम्मुख दर्शन वाली हैं। २० वीं शती ई. की उमा - महेश्वर मूर्ति का एक अन्य उदाहरण मंगलागौरी मंदिर में है। यहां भी उमा शिव की गोद में आसीन हैं। शिव के एक हाथ में त्रिशूल है एवं एक हाथ आलिंगनमुद्रा में है। अर्धचन्द्र से सुशोभित शिव की जटा से गंगा को अवतरित होते दरशाया गया है।

लकुलीश

शैवधर्म की पाशुपत शाखा के प्रवर्तक लकुलीश को शिव का २८ वां अवतार माना गया है। लकुलीश मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में प्रारंभ हुआ। लकुलीश की स्वतंत्र मूर्तियां मध्यकाल में पश्चिमी और पूर्वी भारत में प्रचुर संख्या में प्राप्त हुई हैं जिनके कुछ प्रमुख उदाहरण उड़ीसा एवं गुजरात के अतिरिक्त एलिफैण्टा, एलोरा, पट्टडकल, बादामी, अयहोल, हिंगलाजगढ़ जैसे स्थलों से मिले हैं। काशी के किसी मंदिर से शिव के लकुलीश स्वरूप की कोई मूर्ति नहीं मिली है। ११ वीं - १२ वीं शती ई. की लकुलीश मूर्ति का अकेला उदाहरण पंचक्रोशी मार्ग स्थित पैगम्बरपुरा मुहल्ले (सारनाथ के निकट) के एक मंदिर से प्राप्त हुआ है। मूर्तियों में सामान्यतः लकुलीश के बायें हाथ में बीजपूरक एवं दाहिनें में लकुट दिखाने की परम्परा रही है किन्तु काशी से प्राप्त प्रस्तुत उदाहरण में चतुर्भुज लकुलीश के बायें हाथ में लकुट का प्रदर्शन हुआ है। करों के खंडित होने के कारण अन्य हाथों की सामग्री नष्ट हो गई है। पद्मासीन लकुलीश ऊर्ध्वलिंग हैं और उनके मस्तक पर छत्र भी अंकित है जो सर्पफण जैसा प्रतीत होता है। आसन के नीचे वृषभ वाहन का अंकन भी हुआ है।

दक्षिणामूर्ति (महायोगेश्वर)

शिव योग, व्याख्यान और संगीत तथा अन्य शास्त्रों के महान ज्ञाता और आचार्य माने गये हैं। देव एवं महर्षियों को धर्म एवं ज्ञान का उपदेश देने के लिए शिव द्वारा दक्षिण की ओर मुख करके बैठने के कारण ही प्रस्तुत मूर्ति को दक्षिणामूर्ति कहा गया। ज्ञान, योग, वीणा तथा अन्य शास्त्रों के आचार्य होने के आधार पर ही शिव की चार प्रकार की दक्षिणामूर्तियां बनाई गईं जिन्हें तद्नुरूप ज्ञान दक्षिणामूर्ति, योग दक्षिणामूर्ति, वीणाधर दक्षिणामूर्ति तथा व्याख्यान दक्षिणामूर्ति कहा गया है। इन स्वरूपों में शिव को एकाकी और सामान्यतः ध्यानमुद्रा में विराजमान दिखाया गया है। दक्षिणामूर्ति के निर्माण की परम्परा गुप्तकाल में प्रारंभ हुई जिसके उदाहरण मृण्मुद्राओं एवं पाषाण मूर्तियों में देखे जा सकते हैं। शिव का वीणाधर दक्षिणामूर्ति स्वरूप उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक लोकप्रिय था जिसके कुछ प्रमुख उदाहरण एलिफैण्टा और एलोरा में देखे जा सकते हैं।

काशी से दक्षिणामूर्ति स्वरूप की मूर्तियों के उदाहरण क्रमशः तिलभाण्डेश्वर मंदिर (तिलभाण्डेश्वर), मीरघाट, केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट), मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), नागेश्वरमठ तथा दक्षिणामूर्ति मठ से प्राप्त हुए हैं। सभी उदाहरण व्याख्यान स्वरूप की दक्षिणामूर्तियां हैं। उपरोक्त सभी उदाहरणों में तिलभाण्डेश्वर एवं मीरघाट की गुप्तकालीन मूर्तियां सर्वप्राचीन हैं। ।ये दोनों ही प्रतिमायें द्विभुजी हैं। तिलभाण्डेश्वर मंदिर के गुप्तकालीन उदाहरण में शिव को एक वृक्ष के नीचे व्याख्यानमुद्रा में पैर लटकाए और एक के ऊपर एक पैर रखे हुए दिखाया गया है (चित्र १२)। शास्त्र व्याख्याता के रूप में शिव को एक बड़े वटवृक्ष के नीचे ध्यानस्थ निरूपित करने का विधान मिलता है। प्रस्तुत उदाहरण में शिव के मस्तक के ऊपर सुन्दर रूप में बने वृक्ष (संभवतः वटवृक्ष) का अंकन हुआ है। सम्मुख दर्शन वाली प्रतिमा के केश गुप्तकालीन केश - सज्जा का सुन्दर उदाहरण हैं जिसमें केशों को लटों के रूप में कन्धों तक लटकते दिखाया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिव के पार्श्वों की चार आकृतियां उनके शिष्यों की प्रतीत होती हैं।

१९ वीं शती ई. की केदारेश्वर मंदिर की मूर्ति भी व्याख्यान दक्षिणामूर्ति है जिसमें शिव को वृक्ष के नीचे ऊंचे आसन पर ललितमुद्रा में बैठे दिखाया गया है। शिव के दाहिने पैर के नीचे अपस्मार पुरुष का अंकन दक्षिण भारतीय मूर्ति परंपरा की विशेषता है। चतुर्भुज शिव के दो सम्मुख हाथ खंडित हैं तथा दो में सर्प और चामर प्रदर्शित हैं। ज्ञातव्य है कि शिव के हाथ में चामर का प्रदर्शन एक अभिनव विशेषता है जो जावा (इण्डोनेशिया) की ८ वीं शती ई. के बाद की मूर्तियों में सामान्य विशेषता के रूप में मिलता है। शिव के केश कन्धे तक लटक रहे हैं। प्रतिमा के बायें पार्श्व में नीचे की ओर एक छोटी बैठी हुई आकृति दिखाई गई है। केदारेश्वर मंदिर की दूसरी मूर्ति (२० वीं शती) में पर्वत रूपी आसन पर ललितासीन शिव का दाहिना पैर अपस्मार पुरुष पर स्थित है। नीचे हाथ जोड़े शिष्यों की आकृतियां बनी हैं। शिव का एक हाथ व्याख्यानमुद्रा में है तथा अन्य में अक्षमाला, चामर एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं। शिव की खुली हुई जटायें लहराती हुई दिखाई गयी हैं।

कल्याण - सुन्दर मूर्ति

शिव - पार्वती के विवाह प्रसंग से संबंधित मूर्तियां कल्याण - सुन्दर (या पार्वती - परिणय) मूर्तियों के नाम से जानी जाती हैं। शिव - पार्वती के विवाह की कथा पुराणों तथा शैव आगमों में विस्तार से वर्णित है। तारकासुर के संहार के लिए शिवपुत्र की अनिवार्यता के कारण देवताओं के आग्रह पर शिव ने उमा से विवाह किया जिसका विस्तृत काव्यात्मक वर्णन कालिदास के कुमारसंभव में हुआ है। विवाह का यही प्रसंग कल्याण-सुन्दर मूर्तियों में उत्कीर्ण किया जाता है। अंशुमद्भेदागम, उत्तरकामिकागम, पूर्वकारणागम तथा अन्य प्रतिमालाक्षणिक ग्रन्थों में कल्याणसुन्दर मूर्तियों में पाणिग्रहण की मुद्रा में शिव और पार्वती के मध्य पुरोहित रूप में ब्रह्मा और अग्नि को दिखाने का निर्देश है।[८] साथ ही विष्णु को अपनी दोनों पत्नियों (भूदेवी तथा श्रीदेवी) के साथ उत्कीर्ण करने का सन्दर्भ है। ब्रह्मा एवं विष्णु के अतिरिक्त अष्ट-वसुओं, अष्टदिक्पालों, सिद्ध, यक्ष, ऋषि, गन्धर्व, मातृकाओं तथा अन्य देवताओं की आकृतियों के निरूपण का उल्लेख भी ग्रन्थों में हुआ है। शिव का दाहिना हाथ पाणिग्रहण की मुद्रा में पार्वती का हाथ पकड़े हुए प्रदर्शित होगा। विवाह पूर्व की मूर्ति होने के कारण इसमें पार्वती को शिव के दक्षिण पार्श्व में दिखाया गया है। कल्याण - सुन्दर स्वरूप की मूर्तियां उत्तर एवं दक्षिण भारत में सामान रूप से प्रचलित थीं। मयमत (३६.५१-५८) में शिव की कल्याण - सुन्दर मूर्ति का उल्लेख मिलता है। शिल्प में कल्याण - सुन्दर मूर्ति के उदाहरण छठी - सातवीं शती ई. से प्राप्त होने लगते हैं। कालान्तर में यह स्वरूप सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय हुआ। कल्याण - सुन्दर स्वरूप की सर्वश्रेष्ठ मूर्तियां कन्नौज, एटा, एलिफैण्टा, एलोरा, खजुराहो, कांचीपुरम तथा भुवनेश्वर से प्राप्त हुई हैं।

काशी से शिव के कल्याणसुन्दर स्वरूप की केवल एक मूर्ति मिली है जो मणिकर्णिकाघाट की सीढ़ियों की एक देवकुलिका में स्थित है। १२ वीं शती ई. की यह मूर्ति पर्याप्त घिसी हुई है किन्तु मूर्ति के लक्षण स्पष्ट हैं। प्रस्तुत उदाहरण में शिव के दाहिने हाथ में पार्वती का दाहिना हाथ पाणिग्रहण की मुद्रा में प्रदर्शित है (चित्र १५)। शिव और उमा की आकृतियों के मध्य नीचे ब्रह्मा की आसीन आकृति बनी है जिन्हें अग्नि में समिधा डालते हुए दिखाया गया है। शिव के दक्षिण पार्श्व में द्विभुजा पार्वती की आकृति खड़ी है जिनके बायें हाथ में पद्म है जबकि दाहिना हाथ शिव के हाथ में है। चतुर्भुज शिव के दो हाथों में अभयमुद्रा और सर्प हैं जबकि एक हाथ कटि पर स्थित है। शिव के मस्तक पर जटामुकुट सुशोभित है। उनके दाहिने पार्श्व में हिमवान तथा मैना की आकृतियां उकेरी हैं और बायें पार्श्व में विष्णु तथा लक्ष्मी की आकृतियां खड़ी हैं। नीचे ६ आकृतियां बैठी हैं जिनका सन्द ͬ स्पष्ट नहीं है। इन आकृतियों के नीचे पांच मंगल - कलश बने हैं। ऊपरी भाग में कुछ दिक्पाल और नवग्रह आकृतियां उत्कीर्ण हैं जिनमें मात्र सूर्य की पहचान संभव है। एक ओर गज पर आरूढ़ इन्द्र को तथा उनके पीछे पाणिग्रहण के पश्चात् शिव और पार्वती को वृषभ पर बैठकर जाते हुए दिखाया गया है।

गंगाधर मूर्ति

पुराणों में पृथ्वी पर गंगा के अवतरण की कथा मिलती है जिसके अनुसार ब्रह्मा द्वारा कमण्डलु से गंगा को पृथ्वी पर प्रवाहित किया गया। गंगा के प्रवाह के

८- भुवनेश्वर, एटा, कन्नौज तथा एलोरा से प्राप्त कल्याण - सुन्दर मूर्तियों में परम्परा विरुद्ध पार्श्वों में गणेश और कार्त्तिकेय का भी अंकन मिलता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेग से पृथ्वी की रक्षा के लिए शिव ने गंगा को अपनी जटा में धारण किया। तत्पश्चात् गंगा का पृथ्वी पर आगमन हुआ। शिव के इसी स्वरूप को गंगाधर नाम दिया गया जिसमें शिव स्थानक रूप में दिखाये जायेंगे। उनकी खुली हुई जटाओं में ऊपर से आती गंगा की जलधारा को दिखाया जायेगा। शिव के पार्श्वों में भगीरथ तथा अन्य ॠषियों की आकृतियां उनकी प्रशंसा करते हुए निरूपित होंगी। कामिकागम तथा कारणागम में चतुर्भुज शिव को त्रिनेत्र बताया गया है तथा उनके करों में अभयमुद्रा, कटकमुद्रा, परशु एवं मृग प्रदर्शित होंगे। गंगाधर स्वरूप की प्रमुख मूर्तियां अयहोल, एलिफैण्टा, गंगैकोण्डचोलपुरम, खजुराहो, पट्टडकल जैसे स्थलों से प्राप्त हुई हैं। महाबलिपुरम (पल्लवकालीन) के विशाल चट्टानी शिल्प (सातवीं शती ई.) में इस स्वरूप को कथात्मक शैली में विस्तारपूर्वक दिखाया गया है।

काशी से शिव के गंगाधर स्वरूप का केवल एक उदाहरण प्राप्त हुआ है जो भोंसलाघाट के रघुराजेश्वर मंदिर (१७९५ ई.) की दक्षिणी भित्ति की जंघा पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट है कि शिल्पी ने शास्त्रीय परम्पराओं का मूर्ति के निर्माण में पालन नहीं किया है। यहां सौम्यमुख शिव को सर्प की कुंडलियों पर रखे आसन पर बैठे दिखाया गया है। शिव - मस्तक के दाहिनी ओर सात सर्पफणों का छत्र तथा बायीं ओर जटा से निकलकर गंगा की धारा को प्रवाहित होते दिखाया गया है। त्रिनेत्र शिव के मस्तक पर भी सर्प लिपटा है। इसके अतिरिक्त भुजबन्ध एवं मेखला भी सर्पाकार हैं। शिव के गले में सामान्य हार के साथ मुण्डमाला भी द्रष्टव्य है। द्विभुज शिव के करों में अक्षमाला और सर्प स्पष्ट हैं।

रावणानुग्रह मूर्ति

शिव के अनुग्रह स्वरूपों में काशी से केवल रावणानुग्रह स्वरूप की एक मूर्ति मिली है। शिव का यह स्वरूप भारतीय शिल्प में अत्यन्त लोकप्रिय था। शिवपुराण की कथा के अनुसार रावण यक्षराज कुबेर को पराजित कर लंका वापिस लौट रहा था। मार्ग में स्थित मनोरम स्वर्ण पर्वत पर विश्राम करने का उसका विचार हुआ। इस विचार के फलस्वरूप उसने अपने विमान को पर्वत की ओर बढ़ाया परन्तु पर्वत पर शिव और पार्वती के विहार करने के कारण शिव के गण नन्दी द्वारा उसे पर्वत पर जाने से रोका गया। इस पर क्रोधित होकर रावण ने पर्वत को ही मार्ग से हटाने का असफल प्रयास किया। रावण पर्वत को तो नहीं हटा सका किन्तु पर्वत के हिलने के कारण पर्वतशिखर पर विराजमान पार्वती एवं अन्य आकृतियां भयभीत हो गयीं। दूसरी कथा के अनुसार स्वयं शिव के संकेत पर रावण ने कैलाश पर्वत को हिलाकर पार्वती के मन में भय का संचार किया और इस प्रकार रूठी हुई पार्वती को शिव के समीप लाने का कार्य किया था। उपर्युक्त कथानकों के आधार पर ही शिव के रावणानुग्रह स्वरूप की मूर्तियां बनीं। इस स्वरूप में शिव को उमा सहित पर्वत शिखर पर आसीन और पर्वत के हिलने पर पार्वती को सहमकर शिव के समीप आते हुए दिखाया गया है। शिव - पार्वती के समीप सेवकगण भी अंकित किये गये हैं। शिव शान्त भाव से बैठै होते हैं और अपने पैर के अंगूठे से पर्वत को दबाकर रावण के प्रयास को निष्फल करते हुए प्रदर्शित होते हैं। रावणानुग्रह मूर्तियों का शिल्पांकन गुप्तकाल में प्रारंभ हुआ और कालान्तर में प्रायः सभी मध्यकालीन स्थलों (भुवनेश्वर, एलोरा, पट्टडकल, खजुराहो, हलेबिड, बेलूर) पर इस स्वरूप की मूर्तियां बनीं। एलोरा के कैलाश मंदिर में इस स्वरूप का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण देखा जा सकता है।

काशी में भैरवनाथ स्थित सोरईया महादेव मंदिर में रावणानुग्रह स्वरूप की पर्याप्त घिसी हुई एक मूर्ति है। ल. १३ वीं शती ई. के इस उदाहरण में पर्वत पर शिव और पार्वती को बैठे दिखाया गया है। पार्वती की भयाक्रान्त आकृति पर्वत के हिलने से एक ओर झुकी हुई उत्कीर्ण है। नीचे की ओर रावण को अपनी पूरी शक्ति से पर्वत को हिलाने की चेष्टा करते हुए दिखाया गया है। रावण की आकृति पार्श्व से द्रष्टव्य है जबकि उसका मुख शिव - पार्वती की ओर है। शिव के एक हाथ में त्रिशूल स्पष्ट है। शिल्पी ने पर्वत के किंचित् प्रकम्पन को शिव - पार्वती आकृतियों को थोड़ा तिरछा दिखाकर सम्पूर्ण कथा को ही जीवन्त कर दिया है।

शिव के संहार स्वरूपों में काशी से केवल दो स्वरूपों- अंधकारि एवं गजान्तक की ही मूर्तियां मिली हैं।

अन्धकारि मूर्ति

शिवपुराण की कथा के अनुसार शिव के मद जल से उत्पन्न असुर का नाम अन्धक था। अन्धक ने ब्रह्मा की कठिन तपस्या कर यह वरदान प्राप्त किया कि देवता, दैत्य, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, नारायण, शंकर द्वारा उसकी मृत्यु न हो। किन्तु उसके साथ यह बात भी जुड़ी थी कि जब किसी नारी के प्रति उसमें काम भावना जागृत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होगी तभी उसका विनाश होगा। अन्धक को यह भी वरदान प्राप्त था कि उसके शरीर से भूमि पर गिरने वाली रक्त की प्रत्येक बूंद से सहस्त्र अन्धकासुर पैदा होंगे। देवता और ऋषियों ने अन्धकासुर के अत्याचारों से त्रस्त होकर उसके समक्ष पार्वती के सौन्दर्य का वर्णन कर उसे पार्वती के पास जाने और परिणामस्वरूप शिव से युद्ध के लिए प्रेरित किया। शिव ने त्रिशूल से अंधक के शरीर को छेद डाला और उसके रक्त की बूंदों से उत्पन्न अंधकों का विनाश करने के लिए योगेश्वरी का आह्वान किया जो अंधक के शरीर से गिरने वाली रक्त की बूंदों को कपाल - पात्र में संचित कर पीने लगीं।[९]

इस स्वरूप में अष्टभुज शिव को सामान्यतः प्रत्यालीढ़ - मुद्रा में त्रिशूल से अन्धकासुर का संहार करते हुए दिखाया जाता है। दो हाथों में स्थित त्रिशूल पर शिव अन्धक की आकृति को उठाये होते हैं। शिव के अन्य करों में युद्ध से संबंधित आयुध होते हैं। मूर्तियों में अन्धक की आकृति के नीचे योगेश्वरी को कपालपात्र में अन्धकासुर के शरीर से निकले रक्त को संचित करते हुए दिखाया जाता है।

अन्धकारि मूर्तियों का निर्माण लगभग आठवीं शतीई. में प्रारम्भ हुआ। दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में यह स्वरूप अधिक लोकप्रिय था। उत्तर भारत की अन्धकारि मूर्तियों (वाराणसी, खजुराहो) में शिव के दो ऊर्ध्व करों में गजचर्म दिखाकर गजान्तक और अन्धकारि स्वरूपों को एक साथ व्यक्त किया गया है। काशी में ११ वीं - १२ वीं शती ई. की अन्धकारि (६६x१०१ से. मी.) स्वरूप की एक मूर्ति नन्देश्वर घाट से प्राप्त हुई है। मूर्ति पर्याप्त खंडित एवं घिसी है। दशभुजी शिव को रौद्र रूप में त्रिशूल से अन्धक पर प्रहार करते हुए दिखाया गया है। त्रिशूल पर अन्धक की आकृति लटकी है। नीचे की ओर कपालपात्र लिये योगेश्वरी की आकृति बनी है। शिव के पैरों के पीछे नन्दी आमूर्तित है। शिव के ऊपर के दो हाथों में गजचर्म है जो गजान्तक स्वरूप का भाव व्यक्त करता है। भारत कला भवन, वाराणसी एवं सारनाथ संग्रहालय (अपूर्ण मूर्ति) में भी इस स्वरूप की मूर्तियां सुरक्षित हैं। सारनाथ संग्रहालय की ११ वीं शती ई. की महाप्रमाण मूर्ति अपूर्ण किन्तु अत्यन्त उग्रस्वरूप वाली है।

कर्दमेश्वर मंदिर की उत्तरी भित्ति की भद्ररथिका में भी इस स्वरूप की एक मूर्ति है। ल. १३ वीं. - १४ वीं. शती ई. की प्रस्तुत दशभुज मूर्ति में आलीढ़मुद्रा में शिव को दाहिना पैर मजबूती से पृथ्वी पर जमाये और बायां हाथ जोड़े दो आकृतियों के ऊपर रखे दिखाया गया है। देवता के दो ऊपरी हाथों में गजचर्म है जबकि नीचे के दो हाथों में त्रिशूल है जिस पर पारम्परिक शैली में अन्धक की आकृति लटकी है। शिव के अन्य करों में कपाल, पाश एवं खेटक स्पष्ट हैं। अन्य हाथ खंडित हैं। शिव के मस्तक पर जटा - जूट के स्थान पर मध्यकालीन शैली का त्रिकोणाकार मुकुट है। श्मश्रु और मूछों तथा छन्नवीर एवं अन्य आभूषणों से सज्जित शिव उग्र रूप में दिखाये गये हैं। शिव का पेट निकला हुआ, मुख भयावह और दांत बड़े हैं। नीचे नन्दी की आकृति को आश्चर्य से शिव की ओर देखते अंकित किया गया है (चित्र १६)।

नटराज

शिव की नृत्य मूर्तियों को नटराज या नटेश नाम से अभिहित किया गया। प्रलय के उपरान्त शिव ने विराट नृत्य किया था। शिव को नृत्य शास्त्र का प्रणेता माना गया है। भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित १०८ प्रकार की नृत्यमुद्राओं का सर्वप्रथम शिव ने ही सम्पादन किया था। इन नृत्यमुद्राओं से संबंधित मूर्तियां दक्षिण भारत के तन्जौर के बृहदीश्वर और चिदम्बरम के नटराज मंदिरों में देखी जा सकती हैं। शिव की नटेश मूर्तियां उत्तर और दक्षिण भारत दोनों में लोकप्रिय थीं किन्तु उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में इस स्वरूप की अधिक मूर्तियां बनीं। एलोरा की ब्राह्मण गुफाओं एवं चोल कांस्य मूर्तियों में नटेश स्वरूप की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। कुमारस्वामी ने नटराज मूर्तियों में शिव द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का प्रतिनिधित्व करने का उल्लेख किया है।[१०] मत्स्यपुराण (२५८. ३-१२), अंशुमद्भेदागम (अध्याय ६५), उत्तरकामिकागम (अध्याय ४६) आदि ग्रन्थों में शिव के नटराज स्वरूप का विस्तृत निरूपण मिलता है। लगभग छठी शती ई. से शिव की नृत्यमूर्तियों का निर्माण प्रारंभ हुआ जो कालान्तर में शिव का सर्वाधिक लोकप्रिय स्वरूप हो गया। शिव की नृत्यमूर्तियों के अनेक उदाहरण बादामी, भुवनेश्वर, एलोरा, कांचीपुरम, एलिफैन्टा, ओसियां, खजुराहो तथा तंजौर जैसे केन्द्रों पर देखे जा सकते हैं।

९ - शिवपुराण, रुद्रसंहिता (पंचम युद्ध खंड), अध्याय ११ से १४।
१०- कुमारस्वामी, डान्स ऑफ शिव, न्यूयार्क, १९१८, पृ. ८७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

काशी से शिव के नटराज स्वरूप की केवल तीन मूर्तियां मिली हैं। इनमें से एक उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा), दूसरा विश्वनाथ मंदिर के समीप स्थित हनुमान मंदिर और तीसरा भैरवनाथ स्थित शीतला मंदिर से प्राप्त हुआ है। सभी उदाहरणों में शिव गतिमान रूप में नृत्य करते दिखाये गये हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये मूर्तियां १२ वीं से १४ वीं शती ई. के मध्य की हैं। १३ वीं शती ई. की कर्दमेश्वर मंदिर की चतुर्भुज नटेश मूर्ति मंदिर की पश्चिमी भित्ति की भद्ररथिका में उत्कीर्ण है। नृत्यरत शिव के करों में त्रिशूल, डमरू, खप्पर एवं त्रिशूल - घण्ट हैं। त्रिशूल युक्त हाथ खंडित है। जटामुकुट, कुण्डल, वलय, कपालमाला, मेखला तथा अन्य आभूषणों से सज्जित त्रिनेत्र शिव को उग्र रूप में नृत्य करते दिखाया गया है। पैरों की मुद्रा से तीव्र नृत्य का भाव व्यक्त हुआ है। शिव के वाम पार्श्व में भावपूर्ण मुद्रा में दुन्दुभिवादक की आकृति बनी है। शिव के दाहिने पार्श्व में पैरों के समीप नन्दी की आकृति उत्कीर्ण है। १३ वीं - १४वीं शती ई. की हनुमान मंदिर की नटराज मूर्ति (३८x५३ से. मी.) पर्याप्त ऋतुक्षरित है किन्तु इसमें नृत्य की लयात्मक मुद्रा की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। अष्टभुजी शिव के दो हाथ नृत्य की मुद्रा (गज़हस्त) में प्रदर्शित हैं। उनके अन्य करों में त्रिशूल, परशु एवं सर्प स्पष्ट हैं। शिव के मस्तक पर त्रिकोणाकार मुकुट है। उनका दाहिना पैर नृत्य की मुद्रा में ऊपर उठा है जबकि बायां भूमि पर स्थित है। नटराज मूर्ति का १२ वीं - १३ वीं शती ई. का शीतला मंदिर का तीसरा उदाहरण पर्याप्त ऋतुक्षरित होने के कारण विवरण की दृष्टि से अस्पष्ट है।

भैरव

भैरव मूर्तियां शिव के अघोर स्वरूप को व्यक्त करती हैं। विश्व के रक्षक और भयंकर स्वरूप के कारण ही शिव को भैरव कहा गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने भैरव को रुद्र (शिव) का ही एक भयानक स्वरूप बताया है। भैरव स्वरूप का विस्तृत विवरण **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** (५९.१-४) में मिलता है। कालान्तर में **अपराजितपृच्छा** (२१२.३३-३४), **रूपमण्डन** (४.२३-२४) एवं आगम ग्रन्थों में भी भैरव स्वरूप का निरूपण मिलता है। भैरंव का वाहन श्वान है। ग्रन्थों में भैरव मूर्तियों के कई अलग - अलग स्वरूपों का उल्लेख मिलता है जिसमें बटुक, असितांग, चण्ड, कपाल, क्रोधन, उन्मत्त, संहार, अतिरिक्तांग स्वरूप मुख्य हैं। आगम ग्रन्थों में ६४ भैरवों का उल्लेख मिलता है जो ६४ योगिनियों के स्वामी देव हैं। **शिवपुराण** में भैरव की उत्पत्ति की कथा मिलती है। **स्कन्दपुराण** के **काशीखंड** (३१.४०-४१) में भी भैरव की उत्पत्ति की कथा वर्णित है जिसके अनुसार शिव ने स्वयं भैरव का नाम काल-भैरव रखा। पाप का विनाश करने के कारण भैरव को 'पापभक्षक' और दुष्टों का दमन करने के कारण 'आमर्दक' भी कहा गया है। **शिवपुराण** की कथा के अनुसार ब्रह्म हत्या से मुक्त होने के लिए विष्णु के परामर्श पर भैरव काशी आये थे। काशी में मत्स्योदरी तथा गंगा के संगम पर स्नान करने के पश्चात् ही उन्हें ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति मिली थी। भैरव के हाथों से चिपके ब्रह्मा के कपाल के यहीं छूटकर गिरने के कारण इस स्थान का नाम कपालमोचन पड़ा जहां आज भी कालभैरव, पापभक्षक तथा आमर्दकेश्वर के रूप में भैरव की पूजा होती है। लोकमान्यता के अनुसार भैरव काशी के कोतवाल माने जाते हैं। काशी में मंगलवार युक्त अष्टमी तथा चतुर्दशी को तथा प्रत्येक मंगलवार को कालभैरव के दर्शन का विशेष महत्व है। काशी में आठ स्थानों पर आठ भैरवपीठों की स्थापना का भी उल्लेख मिलता है। इनके नाम हैं रुरुभैरव, चण्डभैरव, असितांग भैरव, कपाली भैरव, क्रोधन भैरव, उन्मत्त भैरव, संहार भैरव तथा भीषण भैरव।[११]

ग्रन्थों में उल्लिखित भैरव के विभिन्न स्वरूपों में उत्तर भारत में बटुक भैरव स्वरूप ही विशेष लोकप्रिय था जिसके उदाहरण भुवनेश्वर, ओसियां, एलोरा, खजुराहो आदि विभिन्न स्थलों पर देखे जा सकते हैं। **रूपमण्डन** में अष्टभुज बटुकभैरव के हाथों में वरदमुद्रा, खट्वांग, खड्ग, पाश, शूल, डमरू, कपाल तथा सर्प का उल्लेख हुआ है और उनका वाहन श्वान बताया गया है।[१२]

काशी में आठ प्रमुख भैरव पीठों के अतिरिक्त नगर के विभिन्न मंदिरों से भी भैरव की विविध रूपों वाली मूर्तियां मिली हैं। इनमें बटुकभैरव, क्रोधनभैरव स्वरूपों के अतिरिक्त भैरव की सामान्य स्वरूप वाली मूर्तियां भी हैं। इन उदाहरणों में भैरव को स्थानक तथा आसन

११- भैरवपीठों के स्थान के लिए द्रष्टव्य कुबेरनाथ सुकुल, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. १०५-०६।

१२- खट्वांगमसिपाशंच शूलंच दधतः करैः। डमरूक्ष कपालंच वरदं भुजंग तथा।।
रूपमण्डन ५.७६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दोनों रूपों में बनाया गया है। श्वान वाहन लगभग सभी उदाहरणों में दिखाया गया है पर कुछ में भैरव श्वान पर आरूढ़ भी दिखाये गये हैं। इन मूर्तियों में सामान्यतः भैरव का शांत स्वरूप ही अभिव्यक्त हुआ है किन्तु कुछ उदाहरणों में उनका उग्र और विकराल स्वरूप भी देखने को मिलता है। भैरव की ये मूर्तियां काशी के तिलभाण्डेश्वर मंदिर (तिलभाण्डेश्वर), बटुक-भैरव और कामाक्ष्या देवी मंदिर (कमच्छा), शिव मंदिर (प्रीताम्बरपुरा), केदार मंदिर (केदारघाट), महाकालेश्वर मंदिर (त्रिलोचन), दुर्गा मंदिर (रामनगर), गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी),मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), बिन्दुमाधव मंदिर (पंचगंगाघाट), रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट), हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), पंचपाण्डव मंदिर (शिवपुर), शिव मंदिर (राजातालाब एवं नई सड़क), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) तथा मान्धातेश्वर एवं ललितादेवी मंदिर (ललिताघाट) और शिव मंदिर (अवड़े ग्राम) से प्राप्त हुई हैं। कालक्रम की दृष्टि से ये मूर्तियां १३ वीं - १४ वीं शती ई. से २० वीं शती ई. के मध्य की हैं।

१३ वीं - १४ वीं शती ई. की रुरुभैरव की एक प्रतिमा (५८x३१ से. मी.) रुरुभैरव मंदिर से मिली है। दक्षिणी देवकुलिका में सुरक्षित प्रस्तुत प्रतिमा क्रोध में चलने की मुद्रा में बनी है। देवता का एक हाथ जांघ पर है जबकि अन्य दो में त्रिशूल एवं पात्र हैं और एक हाथ वक्ष के समीप देखा जा सकता है। मूछों से युक्त भैरव की ऊंची केश - सज्जा, नीचे तक लटका उत्तरीय, धोती तथा शरीर पर अन्य आभूषण और काष्ठ पादुका उल्लेखनीय हैं। भैरव के नेत्र बंद जान पड़ते हैं। आसन पर श्वान की आकृति भी बनी है। १५ वीं -१६ वीं शती ई. की वास्तुखण्ड पर उकेरी भैरव की एक मूर्ति महाकालेश्वर मंदिर (त्रिलोचन) से प्राप्त हुई है। सम्मुख दर्शन वाले विकराल मुख भैरव उग्र रूप में चलायमान दिखाये गये हैं। देवता के तीन करों में लम्बा दण्ड, खड्ग तथा शिरस् हैं। गले में लम्बी मुण्डमाला स्पष्ट है।

१६ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की समभंग में श्वान वाहनसहित खड़ी चतुर्भुज बटुकभैरव मूर्तियों के उदाहरण केदारेश्वर मंदिर, शिव मंदिर (नई सड़क), पंचपाण्डव मंदिर, कालभैरव, रघुराजेश्वर मंदिर तथा केदारघाट की सीढ़ियों पर स्थित एक देवकुलिका में देखे जा सकते हैं। प्रायः इन उदाहरणों में भैरव के हाथों में त्रिशूल, अभयमुद्रा तथा खड्ग या त्रिशूल , अभय - मुद्रा, डमरू (या कपाल - पात्र) एवं सर्प (या वरद - मुद्रा) प्रदर्शित हैं। सभी उदाहरणों में भैरव के समीप श्वान की आकृति बनी है। रघुराजेश्वर मंदिर के उदाहरण में श्वान की दो आकृतियां बनी हैं। भैरव के केश जटा-जूट के रूप में संवरे है। केदारेश्वर मंदिर के उदाहरण में गले में लम्बी माला द्रष्टव्य है। नई सड़क स्थित शिव मंदिर का उदाहरण मंदिर के दक्षिणी प्रवेश - द्वार के ललाट बिम्ब के रूप में उत्कीर्ण है।

अन्य उदाहरणों में देवता श्वान पर आरूढ़ हैं। रामनगर के दुर्गा मंदिर (दक्षिणी भित्ति) से ऐसा ही एक उदाहरण प्राप्त हुआ है जिसमें श्वान पर आरूढ़ शिव के करों में त्रिशूल, परशु, सर्प तथा दण्ड और गले में मुण्डमाला प्रदर्शित हैं। इस वर्ग की अन्य मूर्तियों के उदाहरण तिलभाण्डेश्वर मंदिर, शिव मंदिर (ग्राम ओसवारी), रामेश्वर मंदिर तथा ललितादेवी मंदिर से प्राप्त हुए हैं। तिलभाण्डेश्वर मंदिर की मूर्ति मंदिर के दाहिनी ओर की देवकुलिका में स्थित है जिसमे कौपीनधारी भैरव शांतमुद्रा वाले हैं। जटाजूटधारी भैरव के करों में खड्ग, गदा, पद्म और कपाल प्रदर्शित हैं। ओसवारी ग्राम का उदाहरण भी कुछ इसी रूप में बना है, किन्तु इसमें हाथ खंडित है। रामेश्वर मंदिर, शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा) तथा सनातनधर्म इंटर कालेज स्थित शिव मंदिर (नई सड़क) के उदाहरणों में श्वान पर एक पैर मोड़कर बैठे सम्मुख दर्शन वाले भैरव के हाथों में फल और मुद्गर देखे जा सकते हैं। अन्य दो हाथों के आयुधों की पहचान संभव नहीं है। भैरव के मस्तक पर जटा - जूट, चेहरे पर मूंछ और गले में माला स्पष्ट हैं। श्वान की आकृति यहां सङ्क्षिप्त रूप में बनी है।

समराजेश्वर महादेव मंदिर (ललिताघाट) पर काष्ठ में बनी बटुकभैरव की कई अष्टभुज मूर्तियां हैं जो क्रमशः मंदिर की उत्तरी और पश्चिमी भित्तियों पर उकेरी हैं। इन उदाहरणों में विकराल मुख भैरव की संपूर्ण आकृति से उग्रभाव व्यक्त है तथा केश -रचना ज्वालामय है। प्रस्तुत मंदिर के उदाहरणों में देवता के करों के कुछ आयुध किसी अप्राप्य शास्त्रीय परम्परा से निर्दिष्ट प्रतीत होते हैं। मत्स्य एवं नरमुण्ड ऐसी ही विशेषताएं हैं। पश्चिमी भित्ति की आकृति में करों में त्रिशूल, अक्षमाला, डमरू, खड्ग, खेटक, पाश और मत्स्य हैं (चित्र १७)। उत्तरी भित्ति की दूसरी आकृति में करों में पात्र (वक्ष पर), घण्ट,डमरू, खड्ग, खेटक, खटवांग, नरमुण्ड एवं व्याख्यान - मुद्रा प्रदर्शित हैं। इन दोनों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकृतियों का दाहिना पैर श्वान पर तथा बायां एक पीठिका पर स्थित है। उत्तरी भित्ति की दूसरी आकृति शव पर आरूढ़ है तथा उसके हाथों में खट्वांग, शंख (?), खड्ग, खेटक,सर्प, खट्वांग तथा त्रिशूल दिखाया गया है। तीनों भैरव आकृतियों के गले में मुण्डमाला, मस्तक पर ज्वालापुञ्ज तथा शरीर पर अन्य आभूषणों की सज्ज्ञा है।

नन्दी

काशी के शिव मंदिरों में प्रायः शिववाहन नन्दी की आकृतियां भी प्राप्त होती हैं। ये नन्दी आकृतियां विभिन्न आकार - प्रकार वाली तथा सादी एवं अलंकृत हैं। सामान्यतया शिव मंदिर के गर्भगृह के सम्मुख नन्दी मण्डप में अथवा स्वतंत्र रूप से नन्दी की आकृतियां स्थापित हैं। कुछ में नन्दी को सामान्य रूप से अलंकृत शिवलिंग की ओर मुख किये बैठे बनाय गया है। कुछ में नन्दी को स्वाभाविकता से गर्दन उठाये दिखाया गया है। कुछ में नन्दी के मस्तक पर सींगों के मध्य में सर्प का भी अंकन हुआ है और कुछ में अलंकृत नन्दी की पीठ से सटी एक चामरधर आकृति खड़ी है (चित्र ५३)। कुछ ऐसी नन्दी आकृतियां भी हैं जिनमें नन्दी की पीठपर योनिपट्ट सहित शिवलिंग का अंकन मिलता है। कर्दमेश्वर मंदिर से भी एक ऐसा उदाहरण प्राप्त हुआ है। पंचाक्षेश्वर मंदिर (त्रिलोचनघाट) की नन्दीकेश्वर मूर्ति में चतुर्भुज नन्दीकेश्वर को नमस्कारमुद्रा में दिखाया गया है जिसके मध्य में त्रिशूल है। उनके अन्य दो करों में परशु एवं डमरू प्रदर्शित हैं।

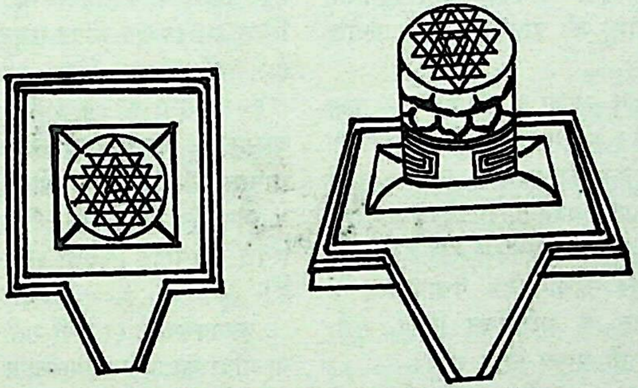

१-२ यंत्रलिंग, १६ वीं शती, बालाजी मंदिर, बालाजीघाट

३- सहस्रलिंग, १६ वीं शती, विश्वनाथगली

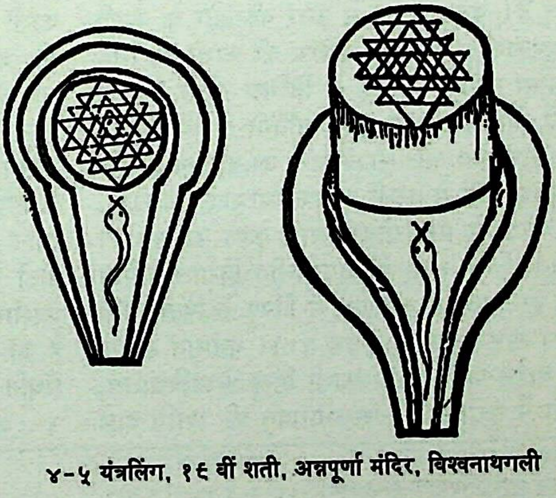

४-५ यंत्रलिंग, १६ वीं शती, अन्नपूर्णा मंदिर, विश्वनाथगली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पंचम अध्याय

विष्णु

जय केशव देवेश जय काशीप्रियाच्युत।
काश्यां रक्षस्व देवेश देहि श्रद्धां जनार्दन।।[1]

पुराणों से ज्ञात होता है कि शिव के पूर्व काशी विष्णु - पूजा की प्रधान स्थली थी। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** में काशी क्षेत्र को 'महालिंगमय जनार्दनम्' कहा गया है। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** में ही काशी के विष्णु क्षेत्र होने के कारण यहां प्रतिदिन विष्णु की प्रार्थना का भी उल्लेख हुआ है।

काशीखंड में भी शिव -पूजा के पूर्व विष्णु - पूजा का सन्दर्भ प्राप्त होता है। काशी में विष्णु के महत्व के कारण ही विष्णु - पूजन की परम्परा अक्षुण्ण बनी रही। शताब्दियों से काशी बहुदेववादी किन्तु धार्मिक समन्वयवादी प्रवृत्ति का जीवित उदाहरण रही है। आज भी काशी की यही मूल पहचान है। पंचोपासना के अन्तर्गत काशी में शिव के अतिरिक्त विष्णु, सूर्य, गणेश और शक्ति को भी महत्व दिया गया।

काशीखण्ड (६१. २०७-९) में नारायण, शेषशायी तथा विष्णु के मत्स्य, कूर्म, कृष्ण, परशुराम, राम और बुद्ध अवतार स्वरूपों की अनेक प्रतिमाओं के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। पंचगंगाघाट से उत्तर की ओर के काशी को विष्णु काशी और उससे दक्षिण की काशी को शिव काशी माना गया है। नगर के विभिन्न स्थलों से प्राप्त विष्णु की विविध स्वरूपों वाली मूर्तियों से भी विष्णु-पूजा की प्राचीनता और लोकप्रियता का परिचय मिलता है। ऐसे उदाहरणों में काशी के बकरियाकुण्ड (अलईपुर, जी. टी. रोड) से प्राप्त गोवर्धनधारी कृष्ण की लगभग चौथी शती ई. के अन्त की गुप्तकालीन विशाल प्रतिमा मुख्य है जो काशी में गुप्तकाल में विष्णु के किसी भव्य मंदिर का स्पष्ट प्रमाण है (चित्र १८)। वर्तमान में यह प्रतिमा भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सुरक्षित है। परमभागवत् की उपाधि वाले गुप्त शासक वैष्णव धर्मावलम्बी थे। अतः उनके शासनकाल में काशी में विष्णु प्रतिमाओं एवं मंदिरों का निश्चित रूप से विकास हुआ होगा। गाजीपुर जिले (उ. प्र.) के भीतरी नामक स्थल के उत्खनन से गुप्त शासक स्कन्दगुप्त के काल के एक विशाल विष्णु मंदिर का अवशेष मिला है। काशी के स्वतंत्र विष्णु मंदिरों में आदिकेशवघाट स्थित आदिकेशव मंदिर समूह (१८ वीं - १९ वीं शती ई.), भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण मंदिर (१८वीं शती ई.), शंकुधारा स्थित द्वारिकाधीश मंदिर, बालाघाट स्थित बालाजी मंदिर, पाण्डेयघाट स्थित गोपालबाड़ी (१८ वीं शती ई.), अस्सीघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण मंदिर (१९ वीं शती ई.) तथा संकटमोचन स्थित राममंदिर (२०वीं शती ई.) विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

कृत्यकल्पतरु (१२ वीं शती ई.) में केवल एक विष्णुपीठ या मंदिर का उल्लेख मिलता है जो वर्तमान में आदिकेशव नाम से विख्यात है। **काशीखंड** एवं अन्य पुराणों में काशी के कुछ अन्य विष्णु पीठों के नाम भी दिये गये हैं। **काशीखंड** (६१.२०७-०९) में स्पष्ट उल्लेख है कि काशी में विष्णु के विभिन्न स्वरूपों में नारायण की पांच सौ, जलशायी की एक सौ, कच्छप रूप की तीस, मत्स्य रूप की बीस, गोपाल की एक सौ आठ, परशुराम की तीस, रामचन्द्र की एक सौ एक तथा बुद्ध की सहस्रों मूर्तियां हैं। विष्णु की केवल एक मूर्ति है जो विश्वेश्वर के मुक्तिमंडप में है। विष्णु के उपर्युक्त सभी स्वरूपों का स्थान निर्देश तो कहीं नहीं मिलता, परन्तु इनमें प्रधान पीठों के विषय में कुछ सूचनायें अवश्य मिलती हैं। **काशीखंड** में निम्नलिखित विष्णुपीठों का वर्णन मिलता है जो गंगा तीर्थों के समीप स्थित थे। इनकी वर्तमान स्थिति इस प्रकार है:[2] -

१- आदिकेशव : वरुणा - संगम के निकट।

१- ब्रह्मवैवर्तपुराण, त्रिस्थली सेतु, पृ. २१६।
२- कुबेरनाथ सुकुल, वाराणसी वैभव, पटना, १९७७, पृ. ७९-८१ से उद्धृत।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२- ज्ञानकेशव : आदिकेशव के समीप।
३- तार्क्ष्यकेशव : आदिकेशव के सामने (लुप्त)।
४- नारदकेशव : वर्तमान प्रहलादघाट पर (लुप्त)।
५- प्रहलादकेशव : प्रहलादघाट पर।
६- आदिगदाधर : दत्तात्रेयेश्वर के दक्षिण (लुप्त)।
७- आदित्यकेशव : वरुणा - संगम के निकट (लुप्त)।
८- भृगुकेशव : गोलाघाट के ऊपर, सीढ़ियों पर।
९- वामनकेशव : (क) आदिकेशव के समीप। (ख) मधुसूदन नाम से प्रसिद्ध, त्रिलोचन के समीप।
१०- नर-नारायण : महथाघाट पर।
११- यज्ञवाराह : (क) स्वर्लीनेश्वर के समीप। (ख) मीरघाट पर हनुमान मंदिर में।
१२- विदार नृसिंह : प्रहलादघाट पर।
१३- गोपीगोविन्द : लालघाट पर गौरीशंकर मंदिर में।
१४- लक्ष्मी नृसिंह : राजमंदिर में, हनुमान मंदिर में।
१५- शेषमाधव : (राजमंदिर में, मकान नं. के. २०/१३७)।
१६- शंखमाधव : शीतलाघाट पर मढ़ी में।
१७- हयग्रीवकेशव : भदैनी आनन्दमयी अस्पताल के निकट।
१८- बिन्दुमाधव : (क) पंचगंगा घाट के ऊपर। (ख) बुचई टोले में। (ग) भाट की गली में। (घ) ब्रह्माघाट पर मठ में।
१९- भीष्मकेशव : वृद्धकाल - मंदिर में।
२०- निर्वाणकेशव : लोलार्क के पास।
२१- त्रिभुवनकेशव : बन्दी देवी के मंदिर में।
२२- ज्ञानमाधव : पांचों पाण्डव - मंदिर में, मकान नं. सीके.२८/१०, ज्ञानवापी के समीप।
२३- श्वेतमाधव : मीरघाट पर हनुमान मंदिर के सामने।
२४- प्रयागमाधव : दशाश्वमेध घाट के ऊपर, मकान नं. डी. १७/१११।
२५- गंगाकेशव : वर्तमान ललिताघाट पर, मकान नं. डी. १/६७।
२६- वैकुण्ठमाधव : सिंधियाघाट के ऊपर, मकान नं. सीके. ७/१६५।
२७- वीरमाधव : आत्मवीरेश्वर मंदिर की बाहरी दीवार के आले में, राहु-केतु पूजन स्थल पर।
२८- कालमाधव : कालभैरव के निकट, काठ की हवेली के पीछे, मकान नं. के. ३०/४।
२९-निर्वाण नृसिंह : पुलस्तीश्वर के दक्षिण ओर (लुप्त)।
३०-महाबल नृसिंह : ओंकारेश्वर के पूर्व, कामेश्वर मंदिर, म. नं. ए. २/९।
३१-प्रचण्ड नृसिंह : १- जगन्नाथ मंदिर, अस्सी। २- दुर्गा मंदिर के घेरे में चण्डभैरव के पूर्व (लुप्त)।
३२-गिरि-नृसिंह : देहलीविनायक, पंचक्रोशी मार्ग।
३३-महाभयहर नृसिंह : पितामहेश्वर के समीप, शीतला गली।
३४-अत्युग्र नृसिंह : कालशेखर के पश्चिम गोमठ में।
३५-ज्वालामाली नृसिंह: वरुणा पार कोटवा ग्राम में।
३६-कोलाहल नृसिंह : गोमठ के समीप, म. नं. सीके. ८/१८९।
३७-विटंक नृसिंह : केदारेश्वर मंदिर, मकान नं. बी. ६/१०२।
३८- अनन्तेश्वर : अज्ञात। तीर्थचिन्तामणि (पृ. ३५२) में। अनन्तकेशव का स्थान वरुणा संगम के पश्चिम में कहा गया है।
३९- दधिवामन : अज्ञात।
४०- त्रिविक्रम : त्रिलोचन के घेरे में उत्तर की ओर।
४१- बलि-वामन : बलभद्रेश्वर के पूर्व (लुप्त)।
४२- ताम्रवाराह : वर्तमान नीलकण्ठ के समीप, ब्रह्मनाल मुहल्ले में।
४३- धरणिवाराह : दशाश्वमेध पर प्रयागमाधव के पास म. नं. डी.१७/१११।
४४- कोकावाराह : किटीश्वर के निकट, सिद्धेश्वरी मंदिर, म. नं.सीके. ७/१२४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४५- खर्व-नृसिंह : १- ब्रह्मचारिणी मंदिर, म. नं. के. २२/७१। २-दुर्गाघाट के ऊपर, म. नं. के. २२/५२।

इन सभी विष्णुपीठों के दर्शन - पूजन से अलग - अलग फल की प्राप्ति बतायी गयी है। अलग - अलग तिथियों पर इनकी यात्रा एवं पूजा के सन्दर्भ भी मिलते हैं। विष्णुपीठों में आदिकेशव और बिन्दुमाधव का स्थान सर्वोच्च माना गया है। आदिकेशव का उल्लेख कृत्यकल्पतरु में और बिन्दुमाधव का उल्लेख मत्स्यपुराण में हुआ है। विश्वनाथ मंदिर के मुक्तिमंडप में भी विष्णु मूर्ति का उल्लेख मिलता है जो औरंगजेब द्वारा विश्वनाथ मंदिर के विनाश के समय नष्ट हो गयी। गहड़वालकालीन प्राचीन आदिकेशव मंदिर ११९४ ई. में कुतुबुद्दीन ऐबक के काल में ध्वस्त किया गया किन्तु पंचक्रोशी यात्रा का एक आवश्यक अंग होने के कारण कालान्तर में यहां दूसरी विष्णु मूर्ति की स्थापना आदिकेशव मूर्ति के रूप में की गयी। लिंगपुराण में केशव को काशी क्षेत्र का क्षेत्रक बताया गया है।

काशी का पंचगंगा घाट १४ वीं शती ई. में वैष्णव उपासना का एक प्रमुख केन्द्र था। यहां वैष्णव धर्माचार्य रामानन्द (१४वीं शती ई.) के प्रभाव में राम की, सीता और लक्ष्मण सहित, उपासना को विशेष लोकप्रियता मिली। इसी कारण इस स्थान को विष्णुकाशी भी कहा गया और यहां बिन्दुमाधव मंदिर का निर्माण हुआ। विष्णु के अवतार - स्वरूप राम के आदर्श और मर्यादित चरित्र को लोक में प्रतिष्ठित करने वाले तुलसीदास (१६वीं - १७ वीं शती ई.) की कार्यस्थली भी काशी ही रही है। प्रस्तुत धार्मिक पृष्ठभूमि के फलस्वरूप काशी में वैष्णव धर्म और कला का स्वतंत्र रूप से निरन्तर विकास होता रहा। परिणामस्वरूप आठवीं से २० वीं शती ई. के मध्य की कई स्वतंत्र विष्णु प्रतिमाएं नगर के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होती हैं। इनमें से अधिकांश उदाहरण कला एवं प्रतिमालक्षण दोनों ही दृष्टियों से अद्वितीय हैं।

काशी में विष्णु मूर्तियों के उदाहरण लगभग तीसरी - चौथी शती ई. से ही मिलते हैं। इन मूर्तियों के उदाहरण भारत कला भवन, वाराणसी में देखे जा सकते हैं। इन उदाहरणों में बालकृष्ण की माखन - चोरी तथा गोवर्धनधारी स्वरूपों को दर्शाया गया है। गुप्त शासक बुद्धगुप्त के शासनकाल (४७८ ई.) का एक चतुर्मुख स्तम्भ (क्रमांक - २९) राजघाट से प्राप्त हुआ है जिस-पर चार दिशाओं में क्रमशः चतुर्भुज स्थानक विष्णु तथा विष्णु के वामन, नृसिंह एवं वराह अवतारों की आकृतियां उकेरी हैं। वर्तमान में यह उदाहरण भी भारत कला भंवन, वाराणसी में सुरक्षित है।

काशी में मंदिरों से संबंधित विष्णु मूर्तियों के उदाहरण लगभग सातवीं शती ई. से प्राप्त होने लगते हैं। मंदिरों से संब्रंधित या मंदिरों के गर्भगृह में प्रतिष्ठापित विष्णु मूर्तियों का यह क्रम निरंतर २० वीं शती ई. तक चलता रहता है। आदिकेशव एवं बिन्दुमाधव काशी के प्रमुख विष्णु मंदिर हैं जिनमें प्रमुख देवता के रूप में विष्णु की मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। इन प्रमुख मंदिरों के अतिरिक्त विष्णु मूर्तियों के उदाहरण शिव मंदिरों में पंचोपासना के अन्तर्गत आने वाले एक प्रमुख देव के रूप में भी मिलते हैं। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त विष्णु को लक्ष्मी - नारायण, शेषशायी, विश्वरूप, गजेन्द्रमोक्ष, नर - नारायण, जगन्नाथ, विट्ठल एवं विभिन्न अवतार - स्वरूपों में भी दिखाया गया है। अवतार -स्वरूप वाली मूर्तियों में नृसिंह, मत्स्य, नृवराह एवं वामन की मूर्तियां मुख्य हैं। कृष्ण की मूर्तियों में गोवर्धनधारी, कालियमर्दन, चीरहरण स्वरूप प्रमुख हैं। इन सब के अतिरिक्त चतुर्विंशति केशव - पट्ट का भी एक विरल उदाहरण मिला है जो प्रतिमालक्षण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। सामान्यतया उपरोक्त सभी उदाहरणों में चतुर्भुज विष्णु को अपनी शक्ति अथवा अनुचरों के साथ आकारित किया गया है। कुछ उदाहरणों में एक ही प्रतिमा में प्रमुख देव विष्णु के साथ शिव, ब्रह्मा एवं विष्णु के अवतार - स्वरूपों का अंकन भी हुआ है। प्रतिमालक्षण की दृष्टि से ये मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। मूर्तियों के ऐसे उदाहरण त्रिदेव कल्पना की महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति हैं, जिसके अन्तर्गत सृष्टि या जगत के पालनकर्ता विष्णु को प्रधान देवता माना गया है।

काशी के मंदिरों से संबंधित विष्णु मूर्तियों में ल.सातवीं शती ई. की लोकार्ककुण्ड (भदैनी) स्थित लोलार्केश्वर महादेव मंदिर के प्रवेशद्वार के समीप की एक स्तम्भ पर उकेरी विष्णु मूर्ति प्रारंभिकतम है (चित्र १६)। प्रस्तुत स्तम्भ काशी में प्रचलित पंचदेव उपासना का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। लोलार्केश्वर महादेव मंदिर काशी के पंचक्रोशी यात्रा क्रम में २७ वें स्थान के रूप में प्रसिद्ध है। यह स्तम्भ गर्भगृह के बाहर दाहिनी ओर जगती के पूर्वी कोने पर स्थित है। विष्णु के अतिरिक्त स्तम्भ पर तीन ओर क्रमशः शिव - पार्वती, दुर्गा एवं गणेश की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकृतियां बनी हैं। सम्भवतः मंदिर को पंचायतन बनाने के उद्देश्य से ही इन चारों देव आकृतियों को एक साथ स्तम्भ पर उकेरित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोलार्क मंदिर में ही इस स्तम्भ का मूल स्थान रहा होगा। वर्तमान स्तम्भ के दक्षिणी भाग में विष्णु की द्विभुज आकृति बनी है। विष्णु समभंग में खड़े और वनमाला, धोती, उत्तरीय, मुकुट, कुण्डल, हार और भुजबन्ध जैसे आभूषणों से सज्जित हैं। चतुर्भुज विष्णु के दाहिने हाथों में गदा एवं पद्म तथा बायें हाथों में शंख और चक्र प्रदर्शित हैं। शंख और चक्र गुप्त मूर्तिकला की शैली में आयुध पुरुषों के रूप में दिखाये गये हैं। प्रस्तुत मूर्ति की बनावट एवं उसका स्वरूप ओसियां से प्राप्त प्रतिहारकालीन मूर्तियों जैसा है। मूर्ति की शान्त एवं मनोरम मुखाकृति, शारीरिक अवयवों का सुन्दर लयात्मक अनुपात और गदा तथा चक्र पर विष्णु के दो हाथों की अवस्थिति परवर्ती गुप्त शैली का स्मरण कराती है। सामान्यतः विष्णु की चतुर्भुज आकृतियां प्राप्त होती हैं। द्विभुज आकृतियों का प्रारंभिक सन्दर्भ बृहत्संहिता में मिलता है। बृहत्संहिता (५७. ३१-३५) में द्विभुज विष्णु का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में बताया गया है और बायें में शंख होने का सन्दर्भ है। परवर्ती ग्रन्थों में विष्णु के चतुर्भुज स्वरूप का निरूपण हुआ है। इनमें विष्णु के चार हाथों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म होने का उल्लेख है जिसके उदाहरण कुषाणकाल से ही मिलने प्रारंभ हो जाते हैं।

काशी के मंदिरों से संबंधित ११ वीं -१२ वीं शती ई. की विष्णु की कई प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। प्रायः इन सभी प्रतिमाओं में विष्णु को समभंग में खड़ा और धोती, उत्तरीय, किरीटमुकुट एवं अन्य आभूषणों से सुशोभित दिखाया गया है। विष्णु की स्वतंत्र मूर्ति का एक उदाहरण खोजवां स्थित शंकुधारा के द्वारिकाधीश मंदिर (१८वीं शती ई.) से प्राप्त हुआ है (चित्र २२)। ११वीं - १२ वीं शती ई. की प्रस्तुत विष्णु प्रतिमा अलंकरण, आभूषण तथा वस्त्र - सज्जा एवं सुन्दर उकेरन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। समभंग में खड़ी चतुर्भुज मूर्ति (६५x१५५ से. मी.) में विभिन्न आकार - प्रकार के छोटे - बड़े हार, लम्बा किरीटमुकुट, भुजबन्ध, वलय, श्रृंखलाओं से अलंकृत सुन्दर मेखला एवं पैरों में नूपुर द्रष्टव्य हैं। इन आभूषणों के अतिरिक्त देवता के गले में अलंकृत वनमाला एवं मस्तक की पृष्ठभूमि में प्रभामंडल का कुछ अंश भी देखा जा सकता है। प्रतिमा काले रंग के पाषाण में उत्कीर्ण है। एक बायें हाथ को छोड़कर प्रतिमा के शेष तीनों हाथ खंडित हैं। एक अवशिष्ट हाथ में गदा का कुछ अंश देखा जा सकता है। आकृति के कपोल भरे हुए, ठुड्डी कुछ नुकीली, नेत्र अर्धनिमिलित और मुख पर मन्दस्मित भाव व्यक्त है। शरीर रचना आनुपातिक एवं ऊर्जायुक्त स्वस्थ्य तरुण की है। अलंकृत आसन पर उत्कीर्ण विष्णु के पार्श्वो में चार आकृतियां बनी हैं जिनमें दो पुरुष आकृतियां हैं। विष्णु के चरणों के निकट हाथ जोड़े उपासिका आकृतियां आकारित हैं। पीठिका पर (मध्य में) लक्ष्मी की पद्मासीन आकृति भी उत्कीर्ण है जिनके पार्श्वों में हाथ जोड़े दो आकृतियां बैठी हैं। अन्य दो पुरुष आकृतियों के हाथों में जलपात्र प्रदर्शित हैं। शैली की दृष्टि से प्रस्तुत मनभावन प्रतिमा चेदी एवं चंदेल कला शैलियों की संयुक्त विशेषताओं वाली है।

पाल और सेन काल की विष्णु की कुछ मूर्तियां गभस्तीश्वर मंदिर (मंगलागौरी) में भी देखी जा सकती हैं। गभस्तीश्वर मंदिर की दो मूर्तियों में चतुर्भुज स्थानक विष्णु के तीन हाथों में शंख, चक्र और गदा स्पष्ट हैं। चक्र और शंख का अंकन आयुध पुरुषों के रूप में हुआ है जो काशी में गुप्तकालीन परम्परा की निरन्तरता को दरशाता है। किरीटमुकुटधारी विष्णु के समीप ही लक्ष्मी और गरुड की आकृतियां भी बनी हैं। ११ वीं शती ई. की परवर्ती गुर्जर - प्रतिहार एवं चंदेल शैली की विशेषताओं वाली विष्णु की एक चतुर्भुज स्थानक मूर्ति (६५x१२८ से. मी.) मानसरोवर स्थित राम मंदिर में है (चित्र २०)। प्रस्तुत प्रतिमा का वक्ष किंचित चौड़ा और शरीर भराववाला बनाया गया है। मुखाकृति के अनुपात में आकृति का कद कुछ छोटा है। नेत्र बड़े,होठ पतले और लम्बे एवं मुख पर मंदस्मित भाव है। अलंकृत किरीटमुकुटधारी विष्णु धोती, उत्तरीय एवं जंघा पर सुन्दर जानु - पट्ट से युक्त हैं। शरीर पर कौस्तुभमणि, वनमाला एवं यज्ञोपवीत के अतिरिक्त कुण्डल, गले से लगा छोटा हार, भुजबन्ध, वलय, मेखला एवं नूपुर भी द्रष्टव्य हैं। चतुर्भुज विष्णु के करों में परम्परानुरूप शंख, पद्म, चक्र और गदा प्रदर्शित हैं। सम्पूर्ण प्रतिमा को देखने से, विशेषतः कमर से नीचे के भाग में एक भारीपन का आभास मिलता है। विष्णु के मस्तक के पीछे कमल आकृति वाला प्रभामंडल है जिसके दाहिनी ओर ललितासीन ब्रह्मा और बायीं ओर शिव रूपायित हैं। ब्रह्मा के हाथों में अभयमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जलपात्र हैं जबकि शिव के करों में अभयमुद्रा, त्रिशूल, सर्प और जलपात्र (?) प्रदर्शित हैं। विष्णु कई पार्श्व आकृतियों से भी वेष्टित हैं जिनमें उपासकों एवं अनुचरों की आकृतियां हैं। पीठिका पर मानव देहधारी गरुड की आकृति भी उत्कीर्ण है।

११ वीं शती ई. की गहड़वालकाल की विष्णु की स्वतंत्र मूर्ति (५५x११२ से. मी.) का एक उदाहरण शुकुलपुरा ग्राम (खोजवां) के शुष्केश्वर मंदिर से प्राप्त हुआ है (चित्र २१)। प्रस्तुत मूर्ति खंडित होते हुये भी कुछ विशेषताओं की दृष्टि से उल्लेखनीय है। चतुर्भुज विष्णु त्रिरथ पीठिका पर समभंग में खड़े हैं। मूर्ति का मुख एवं हाथ खंडित हैं किन्तु शरीर का शेष भाग सुरक्षित है। मूर्ति की अंगयोजना आनुपातिक और शरीर -रचना मनोहारी है। विष्णु छोटे एवं लम्बे हार, लम्बी वनमाला, कौस्तुभमणि, भुजबन्ध एवं मेखला से सज्जित हैं। विष्णु की कमर से घुटने तक लम्बी धोती प्रदर्शित है जिसका मध्यभाग सुन्दर बन पड़ा है। प्रतिमालक्षण की दृष्टि से इस मूर्ति की दो विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। प्रथमतः परिकर में अत्यन्त सुनियोजित रूप में विष्णु के दस अवतारों का अंकन हुआ है, दूसरे मूर्ति के ऊपरी भाग में चतुर्भुज ब्रह्मा एवं शिव की लघु आकृतियां बनी हैं जो मध्यकालीन मूर्तियों की एक सामान्य विशेषता रही है। विष्णु के साथ ब्रह्मा और शिव की मूर्तियों का अंकन तत्कालीन धार्मिक समन्वय की. प्रवृत्ति का प्रमाण है।

साथ ही प्रस्तुत मूर्ति ब्रह्मा और शिव के साथ मिलकर ब्राह्मणत्रयी - ब्रह्मा, विष्णु और शिव का रूपायन करती है जो क्रमशः सृष्टि की रचना, पालन और संहार कार्यों से संबंधित हैं। चतुर्भुज ब्रह्मा के हाथों में स्रुक, पुस्तक एवं जलपात्र स्पष्ट हैं जबकि शिव के हाथों में त्रिशूल स्पष्ट है। प्रस्तुत मूर्ति में विष्णु के तीन हाथ खंडित हैं परन्तु शेष बचे एक हाथ में चक्र है। विष्णु के वाम पार्श्व में सर्पमाला एवं सर्पधारी गरुड की मानव आकृति बनी है। आसन पर पूजकों की आकृतियां हैं। विष्णु के अवतारों में दाहिनी ओर से क्रमशः शर एवं चाप से युक्त राम, अश्वारूढ़ कल्कि, स्थौण-नृसिंह, नृवराह, सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम, वामन, मत्स्य, बुद्ध एवं कूर्म अवतारों का अंकन हुआ है। मत्स्य एवं कूर्म अवतारों का अंकन विष्णु की आकृति के ऊपर मत्स्य एवं कूर्म विग्रह में किया गया है। विष्णु के मस्तक के ठीक ऊपर ध्यानमुद्रा में बुद्ध की पद्मासीन आकृति बनी है। प्रस्तुत मूर्ति शुष्केश्वर महादेव मंदिर के परकोटे की पश्चिमी भित्ति में असुरक्षित अवस्था में रखी है। पश्चिमी भित्ति पर विष्णु के अतिरिक्त सूर्य, अग्नि, वायु, ईशान तथा परकोटे के एक स्तम्भ पर अष्टदिक्पाल, विष्णु, गणेश, सूर्य आदि की मूर्तियां हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां पर किसी समय भव्य गहड़वाल मंदिर रहा होगा जो अब नामशेष हो चुका है।

परिकर में दशावतारों की आकृतियों वाली विष्णु की १० वीं शती ई. की एक चतुर्भुज मूर्ति मत्स्योदरी के त्रिलोचन महादेव मंदिर में सुरक्षित है। प्रस्तुत मूर्ति में स्पष्टतः पूर्वी भारत की पाल एवं कलिंग शैली की इकहरे बदन वाली शारीरिक संरचना तथा सुरुचिपूर्ण अलंकरण-रचना दिखाई देती है। समभंग में अवस्थित विष्णु के तीन हाथों में गदा, चक्र और शंख हैं जबकि एक हाथ वरद - मुद्रा में है। परिकर में विभिन्न अवतार - स्वरूपों में मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, राम, बलराम, नृसिंह आदि का सुन्दर संयोजन हुआ है। मत्स्य एवं कूर्म अवतारों का अंकन ऊपर की ओर दोनों कोणों पर हुआ है। दोनों ही आकृतियां एक आसन पर दिखायी गयी हैं। मत्स्य एवं कूर्म अवतारों के मध्य उड्डीयमान गन्धर्व आकृतियां बनी हैं। १२वीं शती ई. की चतुर्भुज विष्णु मूर्ति का एक महत्वपूर्ण उदाहरण कोटवां गांव से प्राप्त हुआ है। यद्यपि प्रस्तुत मूर्ति का मुख भाग एवं हाथ खंडित हैं किन्तु विष्णु के शरीर पर वनमाला, यज्ञोपवीत, भुजबन्ध, वलय, मेखला एवं वक्षस्थल पर कौस्तुभ मणि द्रष्टव्य हैं। मूर्ति समभंग में एक आसन पर खड़ी है जिसके प्रथम दाहिने हाथ में वरदाक्ष एवं एक हाथ में गदा के नीचे का अंश द्रष्टव्य हैं। शेष दो हाथ खंडित हैं। विष्णु धोती तथा जांघों पर पट्ट से शोभित हैं। विष्णु के पार्श्वों में दो पुरुष अनुचर खड़े हैं एवं नीचे की ओर स्त्री उपासिका और पुरुष पूजक की आसीन आकृतियां प्रदर्शित हैं।

कंदवा ग्राम स्थित कर्दमेश्वर मंदिर[३] की पश्चिमी भित्ति पर विष्णु की दो मूर्तियां हैं। पश्चिमी भित्ति की दक्षिणी रथिका में चतुर्भुज विष्णु की समभंग में खड़ी मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट, वनमाला एवं अन्य आभूषणों से सज्जित विष्णु के करों में वरदाक्ष, गदा, चक्र एवं शंख हैं। विष्णु त्रिरथ आसन पर खड़े हैं और उनके ललाट

३- कर्दमेश्वर मंदिर का विस्तृत विवरण दूसरे अध्याय में दिया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर वैष्णव (अंग्रेजी अक्षर 'यू' के समान) तिलक है। स्थिर चेष्टा और स्थिर भाव वाली मूर्ति के दाहिनी ओर एक पुरुष पूजक आकृति तथा बायीं ओर हाथ जोड़े एक स्त्री उपासिका बैठी है। इन दोनों के पीछे दो अनुचरी आकृतियां हैं जिनके एक हाथ में पुष्प हैं तथा दूसरा हाथ कटि पर अवस्थित है। परिकर में विष्णु के दशावतारों का अंकन हुआ है। दाहिने पार्श्व में द्विभुज बुद्ध की पद्मासन में बैठी मूर्ति है जिनके हाथ ध्यानमुद्रा में हैं। बुद्ध के पीछे द्विभुज राम की स्थानक मूर्ति है जिनके हाथों में बाण और धनुष प्रदर्शित हैं। राम की आकृति के ऊपर कमल पर वामन की आसीन मूर्ति है जिनका दाहिना हाथ अभय - मुद्रा में है और बायें में छत्र है। दाहिनी ओर प्रभामंडल के निकट स्थानक नृवराह की आकृति है जिनके बायें दाढ़ों के पास भूदेवी रूपायित हैं। समीप ही पद्म पर कूर्म और मत्स्य विग्रहों की मूर्तियां हैं। तत्पश्चात् स्थौण नृसिंह की चतुर्भुज आकृति है जो हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण कर रही है। बायें पार्श्व में परशुराम, बलराम और कल्कि की आकृतियां हैं। द्विभुज और आसीन परशुराम की आकृति का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है और बायें में परशु प्रदर्शित है। परशुराम की आकृति के नीचे सर्पफणों के छत्र से आच्छादित बलराम की स्थानक मूर्ति है जिनके दाहिने हाथ में चषक है और बायां कट्यवलम्बित है। कल्कि को अश्वारूढ़ और दाहिने हाथ में खड्ग लिये दिखाया गया है। मानवाकार गरुड की सपंख आकृति आसन के मध्य में उड़ने की मुद्रा में उकेरी है। यद्यपि विष्णु आकृति का मुख पर्याप्त घिसा है परन्तु मूर्ति में आकृतियों का संयोजन कलाकार की कुशलता का परिचायक है। कर्दमेश्वर मंदिर की दूसरी विष्णु मूर्ति भद्ररथिका में उत्कीर्ण है। कालक्रम की दृष्टि से यह चतुर्भुज मूर्ति ऊपर वर्णित विष्णु मूर्ति के कुछ बाद की जान पड़ती है। प्रस्तुत मूर्ति में विष्णु समभंग में खड़े हैं। उनका नीचे का दाहिना हाथ वरद्-मुद्रा में है एवं अन्य तीन करों में क्रमशः गदा, चक्र और शंख प्रदर्शित हैं। विष्णु घुंघर युक्त एकावली, वनमाला एवं अन्य आभूषणों से सज्जित हैं। विष्णु के दाहिने पार्श्व में एक स्त्री की स्थानक आकृति है जिसका दाहिना हाथ कटिमुद्रा में है और बायें हाथ में पद्म प्रदर्शित है। विष्णु के बायें पार्श्व में गरुड की स्थानक मानव आकृति बनी है जिसके दाहिने हाथ में सर्प है जबकि बायां हाथ सूचीमुद्रा में है। परिकर में विष्णु के अवतारों का भी अंकन हुआ है। दाहिनी ओर (नीचे से) सर्वप्रथम भूमिस्पर्शमुद्रा में बुद्ध की आसीन आकृति उकेरी है। उनके ऊपर राम की स्थानक आकृति है जिनके बायें हाथ में सम्भवतः धनुष (?) है और दाहिना हाथ कटिमुद्रा में प्रदर्शित है। दाहिने पार्श्व में ही ऊपर की ओर विष्णु के मत्स्य अवतार और भूवराह स्वरूपों का अंकन हुआ है। विष्णु के बायें पार्श्व में कूर्म और नृसिंह अवतारों की आकृतियां बनी हैं। बायीं ओर बलराम की स्थानक और कल्कि की अश्वारूढ़ मूर्तियां उकेरी हैं। बलराम के दाहिने कर में दण्ड है और बायां कर कट्यवलम्बित है।

१२ वीं - १३ वीं शती ई. के उदाहरणों में नगर के हनुमानघाट स्थित जूना अखाड़े से संबंधित हनुमान मंदिर के समीप की विष्णु प्रतिमा उल्लेखनीय है। काले पत्थर में बनी प्रस्तुत मूर्ति की ऊंचाई लगभग १६० से. मी. और चौड़ाई ८० से. मी. है।[४] समभंग में खड़े चतुर्भुज विष्णु के मस्तक पर प्रतिहारकालीन विशेषताओं से युक्त मुकुट देखा जा सकता है। मूर्ति के परिकर में ऊपर की ओर ब्रह्मा एवं शिव की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। ये दोनों आकृतियां चतुर्भुजी एवं ललितासीन हैं। ब्रह्मा के करों में क्रमशः अक्षमाला, स्रुक, जलपात्र और शिव के करों में अभयमुद्रा, त्रिशूल, सर्प एवं जलपात्र स्पष्ट हैं। पीठिका पर पार्श्वों में आयुध पुरुषों के रूप में दाहिनी ओर गदादेवी एवं बायीं ओर चक्रपुरुष का अंकन हुआ है। दोनों आकृतियां त्रिभंग में खड़ी हैं। गदादेवी के मस्तक पर मुकुट एवं चक्रपुरुष के मस्तक पर घुंघराले केश प्रदर्शित हैं। दोनों आकृतियां लम्बी, पैरों से कसी एवं रेखाओं से अलंकृत धोती धारण किये हुए हैं। ये लक्षण पाल - सेनकालीन कला के स्पष्ट प्रभाव हैं। चक्रपुरुष के मस्तक पर विष्णु का चक्रयुक्त हाथ तथा गदादेवी के मस्तक पर विष्णु के गदा युक्त हाथ स्थित हैं। विष्णु के अन्य दो हाथों में पद्म एवं शंख प्रदर्शित हैं। गदादेवी एवं चक्रपुरुष की आकृतियों के पैरों के पास हाथ जोड़े स्त्री एवं पुरुष पूजक आकृतियां आकारित हैं। विष्णु मुकुट, हार तथा लम्बी वनमाला से आभूषित हैं। मूर्ति का शरीर एवं मुख मांसल, चेहरा गोल किन्तु हाथ की अंगुलियां अत्यन्त तीखे स्वरूप वाली हैं जो पाल - सेन कला का प्रभाव दरशाती हैं। वर्तमान में यह मूर्ति पूजित है।

१२वीं शती ई. की सामान्य विवरणों वाली कुछ

४- मूर्ति के वस्त्रों से ढकी होने के कारण एवं मंदिर में प्रवेश वर्जित होने के कारण मूर्ति का ठीक माप एवं सम्पूर्ण विवरण नहीं दिया जा सका है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्तियां यमघाट एवं बद्रीनारायणघाट स्थित देवकुलिकाओं में भी हैं। १२ वीं शती ई. की विष्णु मूर्तियों के कुछ उदाहरण पंचोपासना के क्रम में स्तम्भों पर प्राप्त हुए हैं जिनपर क्रमशः विष्णु के साथ तीन ओर गणेश, देवी एवं सूर्य की आकृतियां उकेरी हैं। ऐसे उदाहरणों में एक ललिताघाट स्थित ललितादेवी मंदिर में एवं दूसरा शुकुलपुरा ग्राम (खोजवां) स्थित शुष्केश्वर महादेव मंदिर में स्थित है। ललितादेवी मंदिर के उदाहरण में मंदिर के भीतर की पूर्वी भित्ति पर समभंग में खड़ी चुतुर्भुज आकृति उत्कीर्ण है। विष्णु के हाथों में वरदमुद्रा, गदा, चक्र और शंख द्रष्टव्य हैं। विष्णु के मस्तक पर किरीटमुकुट, कानों में कुण्डल, गले में लम्बी वनमाला, हार एवं कमर पर मेखला शोभित हैं। प्रस्तुत आकृति किसी वास्तुखंड का अंग है जिसपर शिव एवं देवी की ललितासीन छोटी आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। शुष्केश्वर महादेव मंदिर के उदाहरण (१४x३२ से. मी.) में समभंग में खड़े चतुर्भुज विष्णु के हाथों में गदा और चक्र हैं। एक हाथ की सामग्री अस्पष्ट है। विष्णु के पार्श्व में स्थानक स्त्री एवं पुरुष आकृतियां दिखाई गयी हैं। विष्णु का मुख पर्याप्त खंडित है किन्तु कुण्डल, हार, यज्ञोपवीत एवं वनमाला स्पष्ट हैं। विष्णु की स्वतंत्र मूर्ति का एक उदाहरण (ल. १३ वीं शती ई.) पिशाचमोचन मंदिर की एक देवकुलिका में भी है। किरीटमुकुटधारी विष्णु वनमाला से युक्त हैं और उनके करों में पद्म (?) और चक्र स्पष्ट हैं।

कोटवां ग्राम से वर्तमान में ज्वाला विष्णु नाम से पूजित विष्णु की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है ।यह त्रिमुखी मूर्ति सम्भवतः वैकुण्ठ - विष्णु की है जिसके करों में गदा, शंख, चक्र और पद्म प्रदर्शित हैं। प्रस्तुत स्थानक मूर्ति त्रिरथ आसन पर अवस्थित है। मूर्ति के तीनों मस्तकों पर मुकुट एवं शरीर पर वनमाला, यज्ञोपवीत, कुण्डल, हार, भुजबन्ध आदि आभूषण प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के मस्तक के ऊपर कीर्तिमुख प्रदर्शित है जिसके दोनों पार्श्वों में आकाशधारी गंधर्व आकृतियां उकेरी हैं। विष्णु के पार्श्वों में दो अनुचर आकृतियां भी बनी हैं।

विष्णु की स्वतंत्र मूर्तियों के उदाहरणों में वर्तमान आदिकेशवघाट स्थित आदिकेशव मंदिर की काले रंग के पत्थर से निर्मित विष्णु प्रतिमा प्रमुख है। गर्भगृह में स्थापित प्रस्तुत विष्णु मूर्ति एक सादे शिलापट्ट पर बनाई गई है। समभंग में खड़े विष्णु चतुर्भुज हैं और उनके करों में सनालपद्मकलिका, शंख, अलंकृत चक्र एवं गदा प्रदर्शित हैं। प्रतिमा के दोनों पार्श्वों में चामरधर आकृतियां खड़ी हैं। विष्णु का चेहरा गोल एवं मांसल है। छोटे मुकुट, गोलकर्णाभूषण, मनकों के छोटे - बड़े हार, भुजबन्ध, वलय एवं सादी वनमाला से मूर्ति सुसज्जित है। विष्णु की धोती लम्बी तथा जंघपट्ट सादा है। ६२x१०० से. मी.माप वाली प्रस्तुत मूर्ति शैली की दृष्टि से रुक्ष एवं निर्जीव सी है। १६ वीं - २० वीं शती ई. की विष्णु की स्वतंत्र मूर्तियों के कुछ उदाहरण हनुमानघाट के रुरु भैरव मंदिर (बी. ४/१८), मिसिरपोखरा के पंचमेश्वर महादेव मंदिर (डी. ४८/३) एवं केदारघाट के केदार मंदिर में देखे जा सकते हैं। इन सभी उदाहरणों में विष्णु को समभंग में खड़ा और शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी अथवा शंख और चक्र के साथ अभय एवं वरद - मुद्रा में दिखाया गया है। सभी उदाहरणों में विष्णु के मस्तक पर किरीटमुकुट का प्रदर्शन हुआ है। केदार मंदिर के दोनों उदाहरण काले पत्थर में निर्मित हैं।

ऊपर वर्णित विशेषताओं वाली विष्णु की मूर्तियों के उदाहरण काशी के मंदिरों में यत्र - तत्र पड़ी देवकुलिकाओं में भी देखे जा सकते हैं। ऐसे उदाहरणों में चुतुर्भुज विष्णु को किरीटमुकुट एवं अन्य आभूषणों से शोभित तथा हाथों में सामान्यतः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म लिये दिखाया गया है। ऐसे उदाहरण अस्सी के जगन्नाथ मंदिर, शिव मंदिर, वाजपेयी मंदिर, भदैनी के लोलार्केश्वर महादेव मंदिर, हनुमानघाट के जूना अखाड़ा स्थित हनुमान मंदिर, आदिकेशवघाट स्थित आदिकेशव मंदिर, भोंसलाघाट स्थित रघुराजेश्वर मंदिर एवं लक्ष्मी - नारायण मंदिर, ललिताघाट स्थित मानधातेश्वर मंदिर, धर्म संघ (बी. २७/९७), दुर्गाकुंड स्थित महादेव मंदिर, त्रिलोचनघाट स्थित गोप्रेक्षेश्वर (गौरीशंकर मंदिर, के. ४/२४) हिरण्यगभेश्वर एवं मधुसूदन मंदिर (ए २/२९), पंचगंगाघाट स्थित बिन्दुमाधव मंदिर, बड़ादेव स्थित त्र्यम्बकेश्वर महादेव तथा दशाश्वमेध स्थित शीतला मंदिर में देखे जा सकते हैं। इन प्रमुख मंदिरों के अतिरिक्त गंगा किनारे के विभिन्न घाटों पर स्थित देवकुलिकाओं में भी विष्णु की मूर्तियां स्थापित हैं जिनमें शीतलाघाट, मंगलागौरीघाट, यमघाट, नन्देश्वरघाट, गोलाघाट, बद्रीनारायणघाट, केदारघाट के उदाहरण प्रमुख हैं। एक उदाहरण में विष्णु के मस्तक पर किरीटमुकुट के स्थान पर ईरानी शैली की टोपी का अंकन किया गया है। १६ वीं शती ई. की प्रस्तुत मूर्ति पंचमेश्वर महादेव

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंदिर मिसिरपोखरा में देखी जा सकती है। प्रायः सभी उदाहरणों में विष्णु के करों में शंख, चक्र, गदा एवं पद्म का ही अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में पद्म एवं गदा के स्थान पर अभय एवं वरद - मुद्रा अथवा जलपात्र का भी प्रदर्शन है। कुछ में विष्णु के पार्श्वों में उपासक एवं उपासिका आकृतियां भी दिखाई गयी हैं। सामान्यतः ऐसी मूर्तियों के निर्माण का क्रम आठवीं - नवीं शतीई. से प्रारंभ होकर निरंतर १९ वीं - २० वीं शती ई. तक चलता रहा। १२ वीं - १३ वीं शती ई. के बाद के स्थिर भाव वाले उदाहरण कला की दृष्टि से सुन्दर या स्वाभाविक नहीं हैं।

२० वीं शती ई. का एक उदाहरण ललिताघाट के (सीके. ३४/१४) मानधातेश्वर मंदिर में है। प्रस्तुत मूर्ति में विष्णु का चेहरा मांसल, ठुड्डी छोटी एवं नुकीली, नेत्र लम्बे एवं शरीर कुछ ठिगना बनाया गया है। आकृति मुकुट, कुण्डल, हार, भुजबन्ध, केयूर, वनमाला, यज्ञोपवीत एवं उत्तरीय से सुशोभित है। चतुर्भुज विष्णु के करों में क्रमशः शंख, चक्र, गदा एवं पद्म देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत मूर्ति का परिकर सादा है। मूर्ति (२९x६० से. मी.) निर्जीव और स्थिर प्रतीत होती है। विष्णु की स्वतंत्र मूर्तियों के कुछ उदाहरण नगर के कुछ प्रमुख मंदिरों पर भी बने हैं। इनमें से एक उदाहरण भोंसलाघाट स्थित रघुराजेश्वर मंदिर (१९ वीं शती ई.) की बाह्य भित्ति की पूर्वी कर्णरथिका में देखा जा सकता है। चतुर्भुज स्थानक विष्णु के दो करों में गदा और दो में पद्म प्रदर्शित हैं। चक्र एवं शंख नहीं दिखाये गये हैं। प्रतिमा रुक्ष एवं निर्जीव सी है। प्रतिमा के गले में सादी वनमाला, सादे आभूषण एवं सिर पर सामान्य मुकुट सुशोभित हैं। प्रतिमा के बाह्य भाग में पुष्पों का अलंकरण है।

रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर के उदाहरण में विष्णु चतुर्भुज के स्थान पर षड्भुज हैं जिनके हाथों में अक्षमाला, डमरू एवं चक्र ही स्पष्ट हैं। आकृति के गले में वनमाला एवं माथे पर वैष्णव तिलक है। १८ वीं-२० वीं शती ई. की मूर्तियों में सामान्यतया विष्णु की स्थानक मूर्तियां ही प्राप्त होती हैं किन्तु रघुराजेश्वर मंदिर की पश्चिमी जंघा की एक मूर्ति में विष्णु की आसीन मूर्ति भी देखी जा सकती है। प्रस्तुत मूर्ति में मानव देहधारी गरुड पर चतुर्भुजी विष्णु को आरूढ़ दिखाया गया है। विष्णु के करों में गदा, शंख, चक्र और पद्म हैं। रघुराजेश्वर मंदिर के समीप स्थित लक्ष्मी- नारायण मंदिर (१८ वीं शती ई.) के बाह्य भाग की एक रथिका में भी चतुर्भुज विष्णु की एक आसीन मूर्ति उकेरी है। प्रस्तुत मूर्ति को समुद्रमंथन के दृश्य में मेरुपर्वत रूपी स्तम्भ के शीर्ष भाग में बनाया गया है। पद्मासीन एवं चतुर्भुज विष्णु के करों में शंख, गदा, चक्र और पद्म हैं। शैली की दृष्टि से आकृति सामान्य कोटि की है।

शेषशायी मूर्ति

शेषशायी विष्णु की कुल तीन मूर्तियों के उदाहरण मंदिरों से प्राप्त हुये हैं। इनमें से एक लक्ष्मी - नारायण मंदिर (भोंसलाघाट) की बाह्य भित्ति की दक्षिणी जंघा पर और दूसरी रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट) की दक्षिणी भित्ति की जंघा पर उत्कीर्ण है। तीसरा उदाहरण रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर की पश्चिमी जंघा पर है। लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिरों की मूर्तियां भद्र - रथिकाओं में बनी है। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के उदाहरण में विष्णु को पांच फणों वाले नाग की कुण्डलियों पर शयन करते दिखाया गया है। विष्णु का दाहिना पैर बायें पैर पर स्थित है। विष्णु के पैर दबाती लक्ष्मी की छोटी आकृति भी प्रदर्शित है। चतुर्भुज विष्णु के करों में चक्र, गदा, पद्म एवं पद्म प्रदर्शित हैं। लक्ष्मी के समीप ही हाथ जोड़े गदाधारी कपिमुख हनुमान की आकृति का अंकन उल्लेखनीय है जो राम के सेवक हैं। शेषशायी मूर्ति में हनुमान का अंकन एक दुर्लभ विशेषता है। वस्तुतः लक्ष्मी -नारायण मंदिर पर हनुमान की आकृतियों की प्रचुरता तथा विष्णु और राम का अन्तर्संबंध ही शेषशायी रूप में हनुमान की उपस्थिति का कारण रहा है। विष्णु आकृति मुकुट एवं अन्य आभूषणों तथा वनमाला से सुशोभित है। एक अन्य कपिमुख आकृति हाथ जोड़े सर्पफण पर खड़ी है। विष्णु के नाभिपद्म पर त्रिमुख एवं चतुर्भुज ब्रह्मा की आसीन आकृति बनी है जिनके करों में वरदमुद्रा, स्रुक एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं। एक हाथ की सामग्री अस्पष्ट है। ये आकृतियां यद्यपि कला की दृष्टि से जीवन्त नहीं हैं तथापि रिलीफ में इनका अंकन अत्यन्त कुशलता से किया गया है। शेषशायी मूर्ति का रघुराजेश्वर मंदिर से प्राप्त दूसरा उदाहरण लक्ष्मी - नारायण मंदिर के उदाहरण से पर्याप्त समानता रखता है (चित्र २३)। शेषशायी - विष्णु के प्रायः सभी विवरण लक्ष्मी - नारायण मंदिर के उदाहरण के समान ही हैं। शेषशायी - विष्णु का तीसरा उदाहरण रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर (१८ वीं शती ई.) से प्राप्त है जो मंदिर की पश्चिमी भित्ति पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्कीर्ण है। शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी विष्णु के नाभि - पद्म पर जलपात्र एवं अक्षमाला लिये ब्रह्मा पद्मासीन हैं। ब्रह्मा के दोनों ओर खड्ग एवं खेटकधारी मधु - कैटभ की स्थानक आकृतियां उकेरी हैं। पांच फणों वाले नाग आकृति पर शयन करती विष्णु की आकृति का पैर लक्ष्मी दबा रही हैं। प्रस्तुत दृश्य की पृष्ठभूमि में जल का अंकन कथा की पृष्ठभूमि में किया गया है जो समुद्र का सूचक है (चित्र २४)।

मंदिरों से प्राप्त शेषशायी -विष्णु की उपरोक्त मूर्तियों के अतिरिक्त नगर के विभिन्न स्थानों से भी शेषशायी - विष्णु की कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक उदाहरण (१२ वीं शती ई.) लक्ष्मीकुण्ड तालाब के उत्तरी किनारे पर एक वृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर बने गणेश की आकृतियों के पीछे की ओर बना है। इसमें सप्तफणों वाले नाग पर शयन करते विष्णु का बायां पैर लक्ष्मी दबा रही हैं। नाभिपद्म पर ब्रह्मा विराजमान हैं जिनके एक ओर मधु और कैटभ तथा दूसरी ओर स्त्री - पुरुषों की आकृतियां हैं। सम्पूर्ण पट्ट की लम्बाई लगभग एक मीटर है। १३ वीं - १४ वीं शती ई. का दूसरा उदाहरण दुर्गाघाट से प्राप्त हुआ है। सामान्य विवरण की दृष्टि से यह मूर्ति लक्ष्मीकुंड के उदाहरण जैसी है किन्तु इसमें दशावतारों का अंकन भी हुआ है। दशावतारों में वराह, मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि की आकृतियां स्पष्ट हैं। कल्कि के दाहिने हाथ में खड्ग है। मत्स्य और कूर्म अवतारों को पशु -विग्रह में ही बनाया गया है। ये सभी आकृतियां बैठी हुई हैं। तीसरा उदाहरण बालाजी घाट के समीप एक मढ़ी में स्थित है। इसमें भी सात फणों वाले शेष पर गदा, पद्म, चक्र और शंखधारी विष्णु शयन कर रहे हैं। विष्णु की आकृति किरीटमुकुट, यज्ञोपवीत एवं अन्य आभूषणों से सज्जित है। लक्ष्मी विष्णु का दाहिना पैर दबा रही हैं। नीचे की ओर अश्व आकृतियां एवं अंजलिमुद्रा में गरुड और हनुमान की मूर्तियां हैं। चौथा उदाहरण (१६ वीं शती ई.) ब्रह्माघाट की सीढ़ियों पर स्थित देवकुलिका में देखा जा सकता है। सप्तफणों वाले नाग पर शयन करती विष्णु आकृति के करों में गदा, चक्र, पद्म और शंख प्रदर्शित हैं। विष्णु के पैर दबाती लक्ष्मी और हाथ जोड़े पार्श्व आकृतियां भी द्रष्टव्य हैं।

विट्ठल

लक्ष्मी- नारायण मंदिर (भोंसलाघाट) से विष्णु की एक विट्ठल स्वरूप वाली मूर्ति (१८ वीं शती ई.) भी प्राप्त हुई है। प्रस्तुत विट्ठल मूर्ति प्रथम पंक्ति की मूर्तियों में चौथी रथिका में (दाहिने से बायें) स्थित है। मूर्ति द्विभुज है जिसके दोनों हाथ कमर पर स्थित हैं जिनमें क्रमशः शंख और चक्र देखे जा सकते हैं। समभगं में खड़ी आकृति की केश - सज्जा कुछ गोलाकार टोपी जैसी है और शरीर पर धोती एवं उत्तरीय प्रदर्शित हैं। विट्ठल मूर्ति का यह अकेला उदाहरण है। यह स्वरूप पश्चिम भारत में विशेष लोकप्रिय था और सन्दर्भित मंदिर के महाराष्ट्रियों द्वारा बनवाये जाने का प्रतिफल है। स्थिर भाव वाली प्रस्तुत मूर्ति में कलात्मकता का अभाव है। विट्ठल की एक ऐसी ही मूर्ति संकठा देवी मंदिर, भोंसलाघाट से भी प्राप्त हुई है। मूर्ति के विवरण लक्ष्मी - नारायण मंदिर की मूर्ति (११x२२ से. मी.) के समान ही हैं किन्तु उससे यह मूर्ति कुछ बड़ी है। इसी प्रकार दुर्गाघाट स्थित विट्ठल मंदिर में भी काले पत्थर की विट्ठल की एक प्रतिमा देखी जा सकती है।

लक्ष्मी - नारायण

विष्णु की कुछ मूर्तियां उनकी शक्ति लक्ष्मी के साथ भी मिलती हैं जिनमें उन्हें लक्ष्मी के साथ खड़े अथवा लक्ष्मी को अपनी गोद में बैठाये और उनका आलिंगन करते हुए रूपायित किया गया है। ज्ञातव्य है कि लक्ष्मी-नारायण मूर्तियों का उत्कीर्णन सातवीं शती ई. के बाद सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय था। काशी की उपलब्ध लक्ष्मी - नारायण मूर्तियां १६ वीं - २० वीं शती ई. की हैं। मूर्तियों में चतुर्भुज विष्णु को सामान्यतः अक्षमाला, शंख, गदा एवं चक्र लिये प्रदर्शित किया गया है। विष्णु की लक्ष्मी के साथ स्थानक मूर्तियों के उदाहरण शिव मंदिर (बी. १/२४८, अस्सी), कामेश्वर मंदिर (डण्डीघाट), महादेव मंदिर (बी. २७/९७, दुर्गाकुंड), अन्नपूर्णा मंदिर (राजमंदिर), देवकुलिका (मंगलागौरीघाट), गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी), नन्दीश्वर महादेव मंदिर (ए. २/७०, त्रिलोचनघाट), केदार मंदिर (केदारघाट), शिव मंदिर (डी. १४/११२, टेढ़ीनीम), त्रिलोचन महादेव मंदिर (मत्स्योदरी) एवं रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) से प्राप्त हुए हैं। इन सभी मूर्तियों में चतुर्भुज विष्णु के आयुधों को किसी निश्चित क्रम में नहीं दिखाया गया है। सामान्यतः ऐसी आकृतियों में समभंग में खड़े विष्णु सामान्य मुकुट एवं अन्य आभूषणों तथा वनमाला से सज्जित हैं। जिन उदाहरणों में नीचे के हाथों में क्रमशः गदा और पद्म का प्रदर्शन हुआ है उनमें पद्म की नाल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लम्बी बनायी गयी है। ऐसी आकृतियों में लक्ष्मी को सामान्यतः विष्णु के साथ बायीं ओर हाथ जोड़े खड़ी दिखाया गया है। लक्ष्मी की आकृति सामान्य सज्जा वाली है। कुछ आकृतियों में मानव देहधारी गरुड का भी अंकन हुआ है।

लक्ष्मी के साथ विष्णु की आसीन मूर्तियों के भी कुछ उदाहरण मिलते हैं। इनमें से दो उदाहरण लक्ष्मी - नारायण मंदिर और पीताम्बरपुरा (सोनारपुरा) के शिव मंदिर के गर्भगृह में प्राप्त हुये हैं। एक उदाहरण शंकुधारा स्थित द्वारिकाधीश मंदिर के गर्भगृह में भी स्थित है। ब्रह्मचारिणी मंदिर (दुर्गाघाट) से भी विष्णु की लक्ष्मी के साथ एक आसीन मूर्ति मिली है जिसमें विष्णु की गोद में लक्ष्मी विराजमान हैं। वर्तमान में यह प्रतिमा रंगी हुयी है। दुर्गाघाट की दूसरी मूर्ति गरुडासीन विष्णु - लक्ष्मी की है जो स्व. बाबूराम घाटिया की मढ़ी में सुरक्षित है। विष्णु के हाथों में चक्र, शंख, सनाल - पद्म, गदा और चक्र हैं तथा लक्ष्मी के एक हाथ में पद्म है। लक्ष्मी का दूसरा हाथ विष्णु के कन्धे पर है। संभवतः यह १३ वीं - १४वीं शती ई. का उदाहरण है। लक्ष्मी - नारायण मूर्ति का एक उदाहरण मंदिर के अंगशिखर की रथिका पर दक्षिण की ओर तथा दूसरा मंदिर के जंघा पर बना है। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के एक उदाहरण में चतुर्भुज विष्णु के तीन करों में अक्षमाला, शंख और गदा हैं जबकि चौथा हाथ आलिंगनमुद्रा में है। लक्ष्मी विष्णु की गोद में नमस्कारमुद्रा में आमूर्तित हैं। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के दूसरे उदाहरणों में विष्णु के आयुधों में केवल गदा स्पष्ट है और लक्ष्मी उनके जानु पर विराजमान हैं। शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा) के उदाहरणों में भी आसीन विष्णु का एक हाथ घुटने पर स्थित है। दो करों में गदा एवं चक्र हैं जबकि शेष एक हाथ बायीं गोद में हाथ जोड़े बैठी लक्ष्मी का आलिंगन कर रहा है।

चतुर्विंशति मूर्तियां

विष्णु के प्रारंभिक चतुर्व्यूह - वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध रूप से ही बढ़कर विष्णु की चौबीस व्यूह या चतुर्विंशति मूर्तियों का विकास हुआ जिसे चतुर्विंशति केशव के नाम से जाना गया। **महाभारत** के अनुशासन पर्व (१४९, १२-१११) में विष्णु के सहस्त्र नामों का उल्लेख हुआ है जिनमें निम्नलिखित चौबीस नाम विशेष महत्वपूर्ण हैं - केशव, नारायण, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, ऋषिकेष, पद्मनाभ, दामोदर, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नृसिंह, अच्युत, उपेन्द्र, हरि तथा कृष्ण। ये सभी चतुर्विंशति मूर्तियां एक समान समपादस्थानकमुद्रा में चतुर्भुज बनाई जाती हैं। इन्हें पद्मासन पर स्थानक रूप में दिखाया गया है। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म होते हैं किन्तु उनके प्रदर्शन में क्रमभेद मिलता है। किन्हीं भी दो मूर्तियों में इन आयुधों का एक समान प्रदर्शन नहीं हुआ है। आयुधों की स्थिति की भिन्नता के कारण ही इनके २४ रूप बने।

चतुर्विंशति मूर्तियों के विवरण विभिन्न पुराणों में वर्णित हैं जिनमें **पद्मपुराण** (पातालखंड ७८,१६-२७) और **अग्निपुराण** (अध्याय ४८) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त अनेक परवर्ती ग्रन्थों उदाहरणार्थ - **चतुर्वर्ग चिन्तामणि** (व्रतखंड, अध्याय - १, पृ. ११४-१५), **देवतामूर्तिप्रकरण** (५.८-१३), **रूपमंडन** (३.९-२१) आदि में भी चतुर्विंशति मूर्तियों के विवरण उपलब्ध हैं। प्रायः उपरोक्त सभी ग्रन्थों में मूर्तियां समान क्रम में वर्णित हैं और उनके लांछनों के क्रम में भी समरूपता है किन्तु **पद्मपुराण** में उपेन्द्र, जनार्दन और हरि ये तीन नाम नहीं मिलते हैं। **अग्निपुराण** में यद्यपि सभी २४ मूर्तियों का वर्णन है किन्तु प्रद्युम्न और केशव का लांछन क्रम एक समान वर्णित है, इस कारण एक मूर्ति छूट गई है। इसी प्रकार **चतुर्वर्गचिन्तामणि** में कृष्ण का उल्लेख नहीं है और केशव के लांछनों का वर्णन छूट गया है। **देवतामूर्तिप्रकरण** में यद्यपि सभी मूर्तियां वर्णित हैं, किन्तु कई मूर्तियों के लांछन क्रमों में कोई अन्तर नहीं है। **रूपमंडन** (१५ वीं शती ई.) में सभी मूर्तियों का वर्णन है और किसी मूर्ति के लांछन क्रम में कोई पुनरावृत्ति भी नहीं हुई है। इस कारण **रूपमंडन** की चतुर्विंशति तालिका को सर्वाधिक प्रामाणिक माना जा सकता है। सम्भवतः **रूपमंडन** की तालिका **अग्निपुराण** और **मानसोल्लास** की तालिका पर आधारित है।[५]

विष्णु की चतुर्विंशति मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल से प्रारंभ हुआ जिसकी परम्परा कालान्तर में भी दिखाई देती है। काशी में चतुर्विंशति मूर्ति का एकमात्र उदाहरण शंकुधारा स्थित द्वारिकाधीश मंदिर में सुरक्षित है (रेखाचित्र ६)। यद्यपि प्रस्तुत उदाहरण १८ वीं - १९ वीं शती ई. का है किन्तु चतुर्विंशति विष्णु के सभी स्वरूपों को इस

५- बलराम श्रीवास्तव, रूपमंडन, वाराणसी, १९८९ संस्करण, पृ. ५१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण में रूपायित किया गया है। एक शिलापट्ट पर विष्णु के रेखाचित्र उत्कीर्ण हैं। प्रस्तुत चतुर्विंशति केशव-पट्ट का उत्कीर्णन रूपमंडन में वर्णित चौबीस केशव मूर्तियों की अवधारणा के आधार पर किया गया है। ऋषिकेष, प्रद्युम्न, पद्मनाभ और श्रीधर की आकृतियां पद्मपुराण और त्रिविक्रम की आकृति अग्निपुराण से निर्दिष्ट जान पड़ती है। माधव का विवरण किसी भी ग्रन्थ पर आधारित नहीं है। सम्भवतः शिल्पी की त्रुटि के कारण ऐसा हो गया है। इस पट्ट की विशेषता यह है कि २४ केशवों की स्थानक आकृतियों के साथ उनके पारम्परिक नाम भी उत्कीर्ण हैं। पट्ट पर सबसे ऊपरी भाग में आदित्य की मुखाकृति बनी है और आकृतियों के सबसे नीचे 'काशी खण्डे केशवादि चतुर्विंशति मूर्तयः' उत्कीर्ण है।

प्रस्तुत चतुर्विंशति केशवपट्ट में २४ आकृतियों को चार - चार की संख्या में छः पंक्तियों में उत्कीर्ण किया गया है। सभी चतुर्भुज आकृतियां समभंग में धोती और उत्तरीय तथा मस्तक पर मुकुट धारण किये उत्कीर्ण हैं। आकृतियों के नाम क्रम एवं आयुध इस प्रकार हैं -

१- केशव - पद्म, शंख, चक्र, गदा
२- विष्णु - गदा, पद्म, शंख, चक्र
३- गोविन्द - चक्र, गदा, पद्म, शंख
४- माधव - शंख, चक्र, गदा, पद्म
५- उपेन्द्र - शंख, गदा, चक्र, पद्म
६- ऋषिकेष - गदा, चक्र, पद्म, शंख
७- पुरुषोत्तम - चक्र, पद्म, शंख, गदा
८- दामोदर - पद्म, शंख, गदा, चक्र
९- प्रद्युम्न - चक्र, शंख, गदा, पद्म
१०- जनार्दन - पद्म, चक्र, शंख, गदा
११- अच्युत - गदा, पद्म, चक्र, शंख
१२- कृष्ण - शंख, गदा, पद्म, चक्र
१३- नारायण - शंख, पद्म, गदा, चक्र
१४- त्रिविक्रम - पद्म, गदा, चक्र, शंख
१५- माधव - गदा, चक्र, शंख, पद्म
१६- मधुसूदन - चक्र, शंख, पद्म, गदा
१७- वामन - गदा, शंख, चक्र, पद्म
१८- अधोक्षज - पद्म, गदा, शंख, चक्र
१९- नृसिंह - चक्र, पद्म, गदा, शंख
२०- हरि - शंख, चक्र, पद्म, गदा
२१- पद्मनाभ - शंख, पद्म, चक्र, गदा
२२- श्रीधर - पद्म, चक्र, गदा, शंख
२३- अनिरुद्ध - चक्र, गदा, शंख, पद्म
२४- संकर्षण - गदा, शंख, पद्म, चक्र

प्रस्तुत चतुर्विंशति केशवपट्ट मध्यकाल में काशी में चौबीस केशवों के पूजन की परम्परा को उजागर करता है। प्राचीन शास्त्रों के अनुरूप उनका निरूपण भी महत्वपूर्ण है।

विष्णु की अवतार (विभव) मूर्तियां

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम अधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधुनाम विनाशायच दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे - युगे।

श्रीमद्भागवद्गीता ४.७-८

समय - समय पर कुछ निश्चित उद्देश्यों (धर्म की स्थापना एवं दुष्टों के विनाश) की पूर्ति के लिये विष्णु मानव या पशु रूप में अवतरित हुए। ऐसा माना जाता है कि अवतारवाद वैष्णव धर्म की विशिष्टता है। विष्णु के अवतारों की संख्या के संदर्भ में विभिन्नता मिलती है। कहीं इनकी संख्या ३६ बतायी गयी है और कहीं २२। विष्णु के विभिन्न अवतारों में से दस अवतार मुख्य हैं जिनमें - मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, दशरथीराम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि की गणना की जाती है। कुछ शास्त्रों में कृष्ण के स्थान पर बलराम का उल्लेख प्राप्त होता है। सामान्यतया इन अवतारों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

१- पशु अवतार - मत्स्य, कूर्म, वराह।
२- संयुक्त अवतार - नृसिंह, नृवराह।
३- मानव अवतार - वामन, राम, कृष्ण, कल्कि।

इन अवतारों में से राम और कृष्ण को पूर्णावतार, परशुराम को आवेशावतार और आयुध पुरुषों एवं गरुड को अंशावतार माना गया है।

दशावतारों का सामूहिक अथवा स्वतंत्र अंकन कुषाणकाल से पूर्व नहीं मिलता है। कुषाणकाल में विष्णु के वराह, कृष्ण, बलराम अवतारों का शिल्पांकन हुआ। गुप्तकाल से दशावतारों के सन्दर्भ में साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्य भी प्राप्त होने लगते हैं। गुप्तकाल के पश्चात् विष्णु के दशावतारों का अंकन और व्यापक हुआ और ओसियां, भुवनेश्वर, खजुराहो, एलोरा आदि केन्द्रों पर अवतार - स्वरूपों की अनेक मूर्तियां बनीं। अवतार - स्वरूपों में वराह, त्रिविक्रम (वामन) एवं नृसिंह स्वरूपों की ही सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं।

दशावतारों का अंकन दो रूपों में हुआ - स्वतंत्र एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामूहिक। सामूहिक अंकन में सामान्यतः दशावतारों अथवा केवल कुछ अवतारों का अंकन एक पट्ट या फलक पर किया गया। सामान्यतया ऐसे शिलापट्टों का प्रयोग वैष्णव मंदिरों में अलंकरण के उद्देश्य से किया गया है। उत्तर भारत में नवीं शती ई. के बाद की सभी क्षेत्रों की विष्णु मूर्तियों में परिकर में दशावतारों का अंकन लोकप्रिय था। काशी की ११ वीं से १३ वीं शती ई. की विष्णु मूर्तियों में भी परिकर में दशावतारों का उत्कीर्णन हुआ है। काशी के विभिन्न मंदिरों में विष्णु के अवतार - स्वरूपों की स्वतंत्र मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। अवतार मूर्तियों का दो स्वरूपों में अंकन मिलता है। कुछ उदाहरणों में प्रमुख विष्णु प्रतिमा के साथ परिकर में विष्णु के दस अवतारों का अंकन किया गया है जिनके प्रारंभिक उदाहरण १२ वीं शती ई. के हैं। ऐसे उदाहरण सुकुलपुरा ग्राम स्थित शुष्केश्वर मंदिर (चित्र २१), कंदवा स्थित कर्दमेश्वर मंदिर, गभस्तीश्वर मंदिर, मंगलागौरी, राममंदिर (मानसरोवर - चित्र २०) एवं त्रिलोचन महादेव मंदिर (मत्स्योदरी) में देखे जा सकते हैं। एक शिलापट्ट (१५ वीं - १६ वीं शती ई.) पर एक साथ विष्णु के केवल तीन अवतारों का अंकन करुणेश्वर मंदिर (सीके. ३४/१०) में देखा जा सकता है। मंदिर के गर्भगृह की उत्तरी भित्ति पर बायीं ओर स्थित एक शिलापट्ट पर (२०x४२ से. मी.) अलग - अलग तीन रथिकाओं में क्रमशः वराह, नृसिंह और वामन की आकृतियां उकेरी हैं। प्रस्तुत पट्ट में बायीं ओर सर्वप्रथम विष्णु के वराह अवतार को भूदेवी के साथ दिखाया गया है। चतुर्भुज मूर्ति के पर्याप्त घिसे होने के कारण हाथों के आयुधों का विवरण स्पष्ट नहीं है। मध्य में स्थाण नृसिंह हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण करते उत्कीर्ण हैं। यहां विष्णु एक आसन पर बैठे हैं जिनका बायां पैर नीचे लटका है तथा दाहिना कुछ ऊपर मुड़ा हुआ है। उनकी गोद में निरूपाय हिरण्यकशिपु की आकृति लेटी है। अन्य कोई विवरण स्पष्ट नहीं है। शिलापट्ट पर बायीं ओर छत्र और जलपात्रधारी वामन की आकृति उकेरी है। वामन आकृति की तुलना में छत्र का आकार बड़ा है।

अवनारों के स्वतंत्र अंकनों में मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वराह, वामन, राम, बलराम तथा कृष्ण की मूर्तियों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं।

मत्स्यावतार

मत्स्यावतार के अंकन रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर, भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर तथा सिद्धेश्वरी स्थित गंगा मंदिर से प्राप्त हुए हैं। दुर्गा मंदिर एवं भोंसलाघाट के मंदिरों के उदाहरण मंदिर की पश्चिमी भित्ति पर हैं। लक्ष्मी - नारायण मंदिर की मूर्ति मंदिर के अंगशिखर की रथिका में उत्कीर्ण है। १८ वीं - १९ वीं शती ई. के प्रस्तुत उदाहरणों में कटि से नीचे का भाग विशाल मत्स्य के रूप में तथा ऊपर का भाग मानव रूप में बनाया गया है। दुर्गा मंदिर के उदाहरण में हाथों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं (चित्र २५)। भोंसलाघाट की चतुर्भुज मूर्ति के हाथों में विष्णु के पारंपरिक आयुध पद्म, गदा, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। विष्णु के मस्तक पर अलंकृत मुकुट एवं शरीर पर अन्य आभूषण हैं। मूर्ति गोल चेहरे एवं तीखे नाक - नक्श वाली है। मूर्ति के दाहिने पार्श्व में पुरुष का अंकन हुआ है। दो अन्य उदाहरण भोंसलाघाट स्थित रघुराजेश्वर मंदिर से प्राप्त हुए हैं। दोनों ही उदाहरणों में विष्णु को मत्स्य - नर - विग्रह (कमर से नीचे का भाग मत्स्य रूप में एवं ऊपर का मानव रूप में) में दिखाया गया है। विष्णु के मस्तक पर मुकुट और अन्य आभूषण हैं। विष्णु के चार हाथों में एक हाथ असुर का केश पकड़े हुए है जबकि अन्य हाथों में गदा, चक्र एवं शंख हैं। गदा एवं चक्र में एकरूपता की दृष्टि से शिल्पी ने चक्र में भी एक लम्बे दंड का प्रयोग किया है। समभंग में खड़ी प्रस्तुत मूर्ति भाव शून्य है। श्रृंगधारी असुर (सम्भवतः हिरण्याक्ष) को भूमि पर हाथ जोड़ कर बैठे दिखाया गया है। रघुराजेश्वर मंदिर की ये मूर्तियां पश्चिमी अंगशिखर की भद्ररथिका में और दक्षिणी जंघा पर उकेरी हैं। सिद्धेश्वरी स्थित गंगा मंदिर में विष्णु के मत्स्य - नर - विग्रह स्वरूप का अंकन मिलता है। विष्णु के करों में गदा, चक्र, पद्म और शंख (?) प्रदर्शित हैं।

कूर्म अवतार

कथात्मक शैली में कूर्म अवतार का एक उदाहरण (१८ वीं शती ई.) रामनगर के दुर्गा मंदिर की भित्ति पर उत्कीर्ण है। संपूर्ण दृश्य को समुद्र - मंथन के कथा प्रसंग में दिखाया गया है। कूर्म देहधारी विष्णु के ऊपर एक स्तम्भ के रूप में मंदराचल पर्वत तथा सबसे ऊपर गदा, चक्र एवं शंखधारी विष्णु की आसन मूर्ति बनी है। वासुकि नाग को पकड़े दोनों पार्श्वों में देव (दक्षिण पार्श्व) एवं असुर आकृतियां खड़ी हैं और पृष्ठभूमि में समुद्रमंथन से निकले १४ रत्न भी दिखाये गये हैं जिनमें लक्ष्मी, धन्वन्तरि, चन्द्रमा, धनुष, कामधेनु, ऐरावत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गज, अश्व, कल्पवृक्ष, अमृत एवं कालकूट विष का अंकन स्पष्ट है।

वराह

काशी में वराह - विग्रह रूप की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। सभी उदाहरणों में नृवराह की आकृति ही बनी है। काशी में विष्णु के वराह अवतार का प्रारंभिकतम उदाहरण (१२ वीं शती ई.) श्री पंचअग्नि अखाड़ा (प्रहलादघाट) के प्रवेशद्वार की बाह्य भित्ति पर दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। सामान्य प्रकार की इस मूर्ति के पर्याप्त खंडित होने के कारण मूर्ति के अन्य विवरण स्पष्ट नहीं हैं। ऐसी ही एक प्रतिमा पंचक्रोशी मार्ग पर अवड़े ग्राम के मोक्षेश्वर मंदिर से भी प्राप्त हुई है। प्रस्तुत उदाहरण भी पर्याप्त ॠतुक्षरित है किन्तु यहां भूदेवी की आकृति स्पष्ट है। श्री पंचअग्नि अखाड़े के स्वर्लीनेश्वर महादेव मंदिर (ए ११/३०) के गर्भगृह में भी गदा, शंख, चक्र और पद्मधारी वराह की समभंग आकृति (२० वीं शती ई.) देखी जा सकती है। नृवराह स्वरूप की एक सुन्दर चतुर्भुज मूर्ति रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर की पूर्वी भित्ति पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में मानव आकृति (संभवतः हिरण्याक्ष असुर) पर खड़े विष्णु को एक दाढ़ पर भूदेवी के स्थान पर सम्पूर्ण पृथ्वी (वृत्त के रूप में) को ही उठाये दिखाया गया है। शिल्पी ने पशु - पक्षियों एवं अन्य प्राणियों के सजीव चित्रण द्वारा पृथ्वी की प्रस्तुति को जीवन्त कर दिया है। वराह आकृति की मुद्रा स्वाभाविक है (चित्र २६)। नृवराह स्वरूप का एक अन्य उदाहरण लक्ष्मी - नारायण मंदिर के उत्तरी अंगशिखर की भद्ररथिका में उत्कीर्ण है। चतुर्भुजी वराह के दाढ़ों पर सम्भवतः भूदेवी की आकृति बनी है। वराह के तीन करों में शंख, पद्म और गदा स्पष्ट हैं। वराह के चरणों के समीप खड्ग (?) एवं खेटक लिये हिरण्याक्ष की आकृति पड़ी है। वस्त्र एवं विभिन्न आभूषणों से सज्जित प्रस्तुत आकृति चलने की मुद्रा में अपने चरणों को भूमि से ऊपर उठाए दिखायी गयी है। नृवराह आकृति का एक उदाहरण सिद्धेश्वरी के गंगा मंदिर में स्थित स्तम्भ की आकृतियों के साथ देखा जा सकता है। प्रस्तुत आकृति में वरद, गदा और चक्र के साथ वराह को एक हाथ में भूदेवी को उठाये हुए आकारित किया गया है।

नृसिंह

नृसिंह की मूर्तियां मुख्यतः दो रूपों सौम्य और उग्र में बनीं। सौम्य रूप में केवल और लक्ष्मी - नृसिंह स्वरूप मुख्य थे। केवल नृसिंह मूर्ति में नृसिंह अकेले और लक्ष्मी - नृसिंह में लक्ष्मी सहित आलिंगनमुद्रा में निरूपित होंगे। उग्र रूप में स्थौण - नृसिंह मुख्य हैं जिसमें देवता हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण करते हुए दिखाये जायेंगे। उत्तर भारतीय शिल्प में स्थौण - नृसिंह मूर्ति का उदाहरण राजमंदिर मुहल्ले के हनुमान मंदिर में सुरक्षित है। काले रंग के पत्थर में बनी मूर्ति का, वस्त्र से ढ़के होने के कारण, पूरा विवरण देना संभव नहीं है' ऊपर के हाथों में अंकुश और शंख हैं जबकि एक हाथ आलिंगन - मुद्रा में है। देवता का मुकुट सुन्दर है। इकहरे बदन वाली मूर्ति में देवता की तुलना में लक्ष्मी की आकृति लाघव रूप में बनी है। सिंहासीन देवता के समीप विनीतभाव में प्रहलाद की आकृति भी द्रष्टव्य हैं।

१२ वीं - १३ वीं शती ई. की स्थौण - नृसिंह मूर्तियों के दो उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट) के प्रवेशद्वार (पूर्व) की ओर घाट की सीढ़ियों पर स्थित एक देवकुलिका में और दूसरी वशिष्ठेश्वर मंदिर (यमघाट) में हैं। केदारघाट के उदाहरण में शिलापट्ट पर आसीन नृसिंह को दो हाथों से हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण करते हुए दिखाया गया है। देवता के अन्य दो करों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं। मूर्ति का बायां पैर आसन पर और दाहिना भूमि पर कुछ तिरछे रूप में स्थित है। मूर्ति पर्याप्त खंडित एवं घिसी है किन्तु उसके गोद में हिरण्यकशिपु की आकृति स्पष्ट है। वशिष्ठेश्वर मंदिर की मूर्ति छोटी एवं पर्याप्त घिसी है। नृसिंह की एक अन्य आकृति (२० वीं शती ई.) सिद्धेश्वरी के गंगा मंदिर स्थित स्तम्भ पर उत्कीर्ण है जिसमें नृसिंह दो करों से हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण करते और दो में चक्र तथा पद्म लिये दिखाये गये हैं। उनके पार्श्वों में स्त्री - पुरुष की हाथ जोड़े आकृतियां आमूर्तित हैं।

एक नृसिंह मूर्ति (२० वीं शती ई.) अस्सी स्थित जगन्नाथ मंदिर में स्थापित है। यद्यपि यह प्रतिमा पाषाण निर्मित है, किन्तु वर्तमान में पूजित होने एवं वस्त्रों से ढके होने के कारण इसका विवरण स्पष्ट नहीं है। प्रस्तुत विशाल प्रतिमा में चतुर्भुज विष्णु को एक हाथ दाहिने पार्श्व में खड़ी प्रहलाद आकृति के मस्तक पर रखे दिखाया गया है। उनके दो अन्य करों में पद्म एवं शंख हैं तथा एक हाथ अभयमुद्रा में है। एक मूर्ति प्रहलादघाट के नृसिंह मंदिर में भी देखी जा सकती है। यह प्रतिमा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रंगी हुई एवं जगन्नाथ मंदिर के उदाहरण से पर्याप्त समानता रखती है। केवल हाथों के आयुधों के क्रम में भिन्नता मिलती है। यहां तीन हाथों में चक्र, शंख एवं पद्म हैं जबकि एक हाथ प्रहलाद के मस्तक पर आशीर्वाद की मुद्रा में स्थित है।

लक्ष्मी - नृसिंह की १८ वीं शती ई. की एक मूर्ति आदिकेशव घाट स्थित ज्ञानकेशव मंदिर के गर्भगृह की दक्षिणी रथिका में उकेरी है। प्रस्तुत उदाहरण में नृसिंह की गोद में शक्ति बैठी हैं। चतुर्भुज देवता का एक हाथ अभयमुद्रा में है तथा दो में चक्र और शंख हैं। एक हाथ से नृसिंह गोद में बैठी देवी का आलिंगन करते दिखाये गये हैं। देवी द्विभुजी हैं जिनके एक हाथ में पद्म प्रदर्शित है और दूसरा नृसिंह के कन्धे पर स्थित है। नृसिंह के मस्तक पर पांच सर्पफणों का अंकन हुआ है और पैरों के समीप नमस्कारमुद्रा में मानवाकार गरुड की आकृति बनी है। यह मूर्ति ३३.५x४८ से. मी. वाले एक शिलापट्ट पर उकेरी है। स्थौण नृसिंह की एक मूर्ति खड्ग विनायक मंदिर से प्राप्त हुई है जिसमें चतुर्भुज नृसिंह को दो हाथों से हिरण्यकशिपु का उदर विदीर्ण करते तथा दो हाथों में चक्र और शंख लिये दिखाया गया है। ऐसी दो आकृतियां गायघाट के कामेश्वर मंदिर में भी देखी जा सकती हैं। किन्तु इन दोनों आकृतियों में पार्श्वों में स्थानक आकृतियां भी बनी हुई हैं। ऐसा ही एक उदाहरण रामनगर के दुर्गा मंदिर पर भी द्रष्टव्य है जिसमें हिरण्यकशिपु का मस्तक नृसिंह के पैर के नीचे दबा है। हिरण्यकशिपु के हाथ में खड्ग भी द्रष्टव्य है। केवल नृसिंह की एक मूर्ति (२०वीं शती ई.) मणिकर्णिकाघाट के शिव मंदिरसे प्राप्त हुई है। नृसिंह के करों में क्रमशः पद्म, चक्र, शंख एवं गदा प्रदर्शित हैं। विष्णु का पद्म युक्त हाथ प्रहलाद के मस्तक पर स्थित है जिसे नमस्कारमुद्रा में दिखाया गया है।

वामन अवतार

विष्णु के वामन - अवतार की एक मूर्ति (ल. १३वीं शती ई.) कंदवा ग्राम स्थित कर्दमेश्वर मंदिर से प्राप्त हुई है (चित्र २७)। प्रस्तुत मूर्ति मंदिर की उत्तरी भित्ति की भद्ररथिका में उत्कीर्ण है। वामन स्वरूप में द्विभुज विष्णु को पद्म पर समभंग में दिखाया गया है। वामन का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है और बायें में शंख प्रदर्शित है। आकृति के केश घुंघराले हैं और गले में क्षुद्र घंटियों से युक्त माला है। इसके अतिरिक्त भुजबन्ध, वलय, मेखला, वनमाला, यज्ञोपवीत, कुंडल भी प्रदर्शित हैं। आकृति का शरीर स्थूलकाय है किन्तु मुख पर अलौकिक मुस्कान है। वामन आकृति के वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह भी उत्कीर्ण है। आकृति के दाहिनी ओर एक स्त्री पूजिका और बायीं ओर पूजक की आसीन आकृतियां बनी हैं। ये दोनों ही आकृतियां नमस्कारमुद्रा में हैं। इनके अतिरिक्त दाहिनी ओर मानवाकार गरुड की और बायीं ओर लक्ष्मी की झुकी हुई आकृतियां उकेरी हैं। गरुड के केश ऊपर की ओर उठे हैं और उनके हाथ में सर्प प्रदर्शित है। वामन मूर्ति का दूसरा उदाहरण विश्वनाथगली स्थित रामेश्वर शिव मंदिर (सीके. ११/७३) से प्राप्त हुआ है। वनमाला एवं प्रभामंडल युक्त विष्णु पद्मपीठ पर खड़े हैं। वामन के करों में वरदमुद्रा, पद्म, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। २० वीं शती ई. की एक आकृति सिद्धेश्वरी के गंगा मंदिर में है जिसमें मृगचर्मधारी वामन को छत्र एवं जलपात्र लिये दिखाया गया है।

बलराम

कृष्ण के अग्रज बलराम मूलतः कृषि के देवता हैं। इसी कारण हल और मुसल उनके विशिष्ट आयुध हैं। बलराम की लगभग १२ वीं शती ई. की एक विशिष्ट मूर्ति गायघाट में एक पीपल वृक्ष के नीचे द्रष्टव्य है जो वर्तमान में स्थानीय साधु द्वारा शीतला नाम से पूजित है। कई अन्य देव मूर्तियों के संदर्भ में भी ऐसी विडम्बनाएं देखने को मिली हैं। इस उदाहरण में सप्त- सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम अपनी शक्ति के साथ निरूपित हैं। बलराम की एक अन्य आकृति मणिकर्णिका के मनोकामनेश्वर महादेव मंदिर के बाहर स्थित है। अवड़े ग्राम के मोक्षेश्वर मंदिर से भी एक स्थानक प्रतिमा प्राप्त हुई है जिसमें बलराम सप्त - सर्पफणों के छत्र वाले दिखाये गये हैं। कर्दमेश्वर मंदिर से १२ वीं शती ई. की बलराम - रेवती की एक नयनाभिराम मूर्ति प्राप्त हुई है। बलराम सप्त - सर्पफणों के नीचे त्रिभंग में खड़े हैं। यह मूर्ति उत्तरी भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। चतुर्भुज बलराम के तीन हाथों में चषक, हल एवं मुसल हैं जबकि एक हाथ आलिंगनमुद्रा में रेवती को स्पर्श कर रहा है। बलराम के मस्तक पर सुन्दर केश - सज्जा, कानों में कुंडल एवं गले में हार सुशोभित हैं। चेहरे पर उल्लास का भाव प्रकट है। बलराम के बायीं ओर रेवती हैं जिनके बायें हाथ में उत्तरीय है जो दाहिने कन्धे तक उठा हुआ है (चित्र ३३)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बलराम के यमुना-कर्षण का एक विरल उदाहरण रामनगर के दुर्गा मंदिर पर उत्कीर्ण है। **श्रीमद्भागवत्** (अध्याय ६५) में दी गयी कथा के अनुसार गोकुल में गोपियों के साथ जलक्रीड़ा की इच्छा से बलराम ने यमुना को निकट आने का आदेश दिया। यमुना द्वारा अवमानना करने पर क्रोधित बलराम ने यमुना के गर्व को चूर करने के लिए उसे कई धाराओं में विभक्त कर पास लाने का निश्चय किया। यही कथा प्रस्तुत उदाहरण में शिल्पांकित है। बलराम हल से यमुना के जल को विभक्त कर खींच रहे हैं। आवेशपूर्ण मुद्रा में बलराम की आकृति के ऊपर उनके द्वारा फेंका गया मुसल भी देखा जा सकता है। बलराम के पीछे कदम्ब वृक्ष के नीचे वेणु लिये कृष्ण की स्थानक आकृति बनी है। ज्ञातव्य है कि **भागवत्** में इस कथा प्रसंग में कृष्ण की उपस्थिति का उल्लेख नहीं मिलता है (चित्र ३२)।

कृष्ण

कृष्ण की मूर्तियां मुख्यतः उनकी बाल और किशोर लीलाओं से संबंधित हैं जिसका एक प्रारंभिक गुप्तकालीन उदाहरण भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित है। गोवर्धनधारी – कृष्ण की यह विशाल मूर्ति गुप्तकाल का एक सुन्दर उदाहरण है जिसमें किशोर – वय कृष्ण द्वारा पर्वत शिखर उठाने की सहज मुद्रा अलौकिक है (चित्र१८)।

कृष्ण की दो मूर्तियों के उदाहरण भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी – नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिरों से प्राप्त हुए हैं। इनमें कृष्ण के गोवर्धनधारी और कालियमर्दन स्वरूप अभिव्यक्त हैं। लक्ष्मी – नारायण मंदिर से गोवर्धनधारी स्वरूप की दो मूर्तियां मिली हैं। सामान्यतया इन आकृतियों को बायें हाथ पर पर्वत उठाये और दाहिने हाथ में दंड अथवा पद्म लिये दिखाया गया है। एक उदाहरण में कृष्ण के दाहिने पार्श्व में बलराम तथा बायें पार्श्व में एक स्त्री आकृति उकेरी है। दोनों ही पार्श्वों में गायों का मनोरम अंकन हुआ है जो सहज रूप में कृष्ण की ओर देख रही हैं। ये मूर्तियां पश्चिमी एवं पूर्वी अंगशिखरों की रथिकाओं में उत्कीर्ण हैं। गोवर्धनधारी स्वरूप की एक सुन्दर आकृति रामनगर के दुर्गा मंदिर की उत्तरी भित्ति पर भी देखी जा सकती है। प्रस्तुत उदाहरण में अविरल वर्षा, गोपिकाओं, गायों के साथ गोप आकृतियों एवं पर्वत पर पशु – पक्षी आकृतियों का विस्तृत अंकन हुआ है जिससे सम्पूर्ण कथा प्रसंग जीवन्त हो उठा है। एक हाथ में वेणु पकड़े कृष्ण को सहजमुद्रा में पर्वत को धारण किये निरूपित किया गया है (चित्र ३०)।

कालियमर्दन स्वरूप के तीन उदाहरण मिले हैं। इनमें से एक लक्ष्मी – नारायण मंदिर (उत्तरी अंगशिखर) तथा दूसरा रघुराजेश्वर मंदिर पर है। लक्ष्मी – नारायण मंदिर की अपेक्षा रघुराजेश्वर मंदिर का उदाहरण अधिक अलंकृत है। दोनों ही उदाहरणों में कृष्ण को दाहिने पैर से पांच फणों वाले सर्प का मर्दन करते हुए दिखाया गया है। कृष्ण के एक हाथ में शंख है और एक से वह कालियनाग की पूंछ पकड़े हुए हैं। अन्य दो हाथ वेणुवादन की मुद्रा में हैं। दोनों ही आकृतियों के पार्श्वों में नागी आकृतियां उत्कीर्ण हैं। एक अन्य मूर्ति अन्नपूर्णा मंदिर (विश्वनाथगली) पर देखी जा सकती है। प्रस्तुत मूर्ति में कृष्ण को पांच सर्पफणों वाले नाग के मस्तक पर सहज रूप में बैठे और शान्तमुद्रा में वेणुवादन करते दिखाया गया है। क्षमा याचना की मुद्रा में नागी आकृतियां बनी हैं जो कालिय की रानियां हैं।

कृष्ण कथा से संबंधित चीरहरण के तीन उदाहरण मिले हैं। इनमें से दुर्गा मंदिर (रामनगर) का उदाहरण सर्वश्रेष्ठ है (चित्र २९)। प्रस्तुत उदाहरण में कृष्ण को कदम्ब वृक्ष पर वेणुवादन करते दिखाया गया है। वृक्ष की शाखाओं पर गोपियों के वस्त्र भी परिलक्षित हैं। नीचे जल की तरंगों का सुन्दर अंकन हुआ है जिसमें अपने को छिपाये लज्जावनत गोपियां कृष्ण से वस्त्र वापिस देने की प्रार्थना कर रही हैं। ऐसा ही एक अंकन टेढ़ीनीम स्थित शिव मंदिर (डी १४/११२) के द्वार के ऊपर उत्कीर्ण है। यहां केवल दो ही गोपियां दिखाई गई हैं। वृक्ष के समीप ही कृष्ण की ओर देखती हुई गायों का अंकन भी मनभावन हुआ है। कृष्ण की लीलाओं से संबंधित कुछ अन्य उदाहरण भी प्राप्त हुए हैं जिनमें पूतनावध तथा कृष्ण के गोदोहन एवं दधिमन्थन के दृश्य प्रमुख हैं। ये आकृतियां मणिकर्णिका स्थित शिव मंदिर (१८५७ ई.) से प्राप्त हुई हैं। वेणुवादक कृष्ण की एक आकृति सिद्धेश्वरी के गंगा मंदिर में और दूसरी त्रिलोचन के ओंकारेश्वर मंदिर में है। रामनगर के दुर्गा मंदिर से कृष्ण की एक एकल मूर्ति भी मिली है जो मंदिर की पूर्वी भित्ति पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत मूर्ति में पद्म पर खड़े कृष्ण गोपिका के हाथ में स्थित पात्र से माखन निकाल रहे हैं। कृष्ण के बायें पार्श्व में एक गोपिका भी खड़ी है। नीचे कृष्ण की ओर देखती दो गायें भी बनी हैं।

राम

१४ वीं से १७ वीं शती ई. के मध्य रामानन्द और तुलसीदास ने राम को जन – जन का आराध्य देव बना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिया। काशी से राम की कुल सात मूर्तियां मिली हैं। सभी उदाहरणों में राम के साथ सीता रूपायित हैं और कुछ में राम और सीता के साथ लक्ष्मण एवं हनुमान भी आमूर्तित हैं। राम - सीता और लक्ष्मण की मूर्ति का प्रारंभिकतम उदाहरण १५८२ ई. के लेख से युक्त है(चित्र ३५)। वर्तमान में यह उदाहरण कंगनवाली हवेली (पंचगंगाघाट) के राम मंदिर में प्रतिष्ठित है। लगभग २' ऊंची प्रतिमा मूलरूप में कंगनवाली हवेली के निकट स्थित रामानन्दपीठ (श्रीमठ) में स्थापित रही जान पड़ती है। द्विभुज राम के हाथों में परम्परानुरूप धनुष और बाण प्रदर्शित हैं। समभंग में खड़े राम के दक्षिण पार्श्व में धनुष एवं बाण से युक्त लक्ष्मण एवं वाम पार्श्व में जलपात्र एवं पद्म से युक्त सीता की स्थानक आकृतियां बनी हैं। काले पत्थर की इस मूर्ति में किरीटमुकुट एवं अन्य आभूषणों से सज्जित राम और लक्ष्मण की पीठ पर तूणीर भी स्पष्ट है (चित्र ३५)। राम - सीता की अन्य मूर्तियां प्रहलादघाट की सीढ़ियों पर स्थित देवकुलिका (१७ वीं शती ई.), रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर, दशाश्वमेध के शूलकंटेश्वर महादेव मंदिर तथा सिद्धेश्वरी के गंगा मंदिर से प्राप्त हुई हैं। सभी उदाहरणों में राम धनुष - बाण धारी हैं। गंगा मंदिर एवं प्रहलादघाट के उदाहरणों में लक्ष्मण तथा हाथ जोड़े गदाधारी हनुमान की आकृतियां भी बनी हैं। रामनगर के दुर्गा मंदिर पर राम दरबार की मनोरम छवि भी देखी जा सकती है।

जगन्नाथ

पूर्वी भारत की वैष्णव परम्परा में जगन्नाथ पूजा विशेष लोकप्रिय थी जिसका जीवित उदाहरण १२ वीं शती ई. का पुरी का जगन्नाथ मंदिर और उसमें प्रतिष्ठित बलभद्र, जगन्नाथ एवं सुभद्रा की काष्ठ प्रतिमाएं हैं।

काशी में जगन्नाथ मूर्तियों के कुल तीन उदाहरण मिले हैं जो क्रमशः अस्सी और प्रहलादघाट के जगन्नाथ मंदिरों तथा रामनगर के दुर्गा मंदिर में हैं। नगर से मिले दोनों उदाहरणों में मूर्ति के रंगे हुए मुख ही द्रष्टव्य हैं और परम्परानुरूप दोनों हाथ अपूर्ण हैं। रामनगर के दुर्गा मंदिर का उदाहरण पुरी के जगन्नाथ मंदिर में स्थापित जगन्नाथ मूर्ति की तर्ज पर बना है। रथ के रूप में और स्तम्भों द्वारा विभक्त तीन आसनों पर क्रमशः बलभद्र, सुभद्रा और जगन्नाथ की आसीन आकृतियां उकेरी हैं। सभी आकृतियां मुकुट एवं अन्य अलंकरणों से सज्जित हैं और उनके हाथों का आधा अग्रभाग नहीं दिखाया गया है (चित्र ३६)।

गजेन्द्र - मोक्ष

विष्णु ने समय - समय पर अनुग्रहपूर्वक अपने भक्तों की संकट के समय रक्षा की थी। विष्णु के अनुग्रह स्वरूप की मूर्तियों में दो मूर्तियां गजेन्द्रमोक्ष की कथा से संबंधित हैं। गजेन्द्रमोक्ष की कथा का विस्तारपूर्वक वर्णन **भागवतपुराण** में प्राप्त होता है। काशी से गजेन्द्रमोक्ष स्वरूप की केवल दो मूर्तियां मिली हैं।

एक मूर्ति रामनगर के दुर्गा मंदिर की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में नमस्कारमुद्रा में खड़े मानव देहधारी गरुड की पीठ पर विष्णु आरूढ़ हैं। विष्णु दाहिने हाथ से गज का एक पैर पकड़कर उसे मकर से मुक्त कराने के लिए ऊपर खींच रहे हैं। गज का एक पैर मकर के मुख में उसके दांतों के मध्य दबा हुआ है। विष्णु द्वारा गज को ऊपर खींचने की प्रक्रिया में मकर भी खींचा चला आ रहा है जो कथा प्रसंग को यथार्थ अभिव्यक्ति देता है। मकर की गर्दन पर विष्णु द्वारा चक्र से प्रहार और मकर के आहत होने का समूचा कथा दृश्य मार्मिक है (चित्र २८)। गजेन्द्रमोक्ष स्वरूप का दूसरा उदाहरण राजघाट पर एक वृक्ष के नीचे सुरक्षित है। प्रस्तुत मूर्ति (१३ वीं - १४ वीं शती ई.) में गरुडासीन विष्णु के करों में गदा और पद्म स्पष्ट हैं। गरुड के पैरों के समीप ही गजेन्द्र विष्णु की ओर सूंड किये खड़ा है।

हयग्रीव

देवीभागवत् की कथा के अनुसार हयग्रीव नामक असुर का संहार करने के लिए देवताओं के आग्रह पर विष्णु ने हयग्रीव स्वरूप धारण किया था। प्रस्तुत स्वरूप में मानव देहधारी देवता का मुख अश्व का होता है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** में उनके चार करों में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म दिखाने का विधान है। विष्णु के हयग्रीव स्वरूप की एक मूर्ति रामनगर के दुर्गा मंदिर से प्राप्त हुई है जिसमें अश्वमुख देवता के चार करों में पद्म, शंख, चक्र तथा गदा प्रदर्शित हैं।

नर - नारायण

महाभारत में अर्जुन एवं कृष्ण के पूर्वजन्म में नर और नारायण नामक ऋषियों के रूप में हिमालय पर रहने का उल्लेख हुआ है। नर - नारायण की मूर्तियों के निर्माण का सन्दर्भ **विष्णुधर्मोत्तर** में प्राप्त होता है। इसमें उन्हें कृष्णाजिन धारण किए और जटामंडल के साथ रूपायित करने का संदर्भ है। इस स्वरूप की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रारंभिक मूर्तियां देवगढ़ के दशावतार मंदिर (छठी शती ई.) एवं ओसियां के हरिहर मंदिर (८वीं शती ई.) पर मिली हैं। ज्ञातव्य है कि नर - नारायण की बहुत कम मूर्तियां मिली हैं। काशी में नर - नारायण मूर्ति का एक उदाहरण रामनगर के दुर्गा मंदिर की दक्षिणी भित्ति पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में दो चतुर्भुज ऋषियों को हाथों में जलपात्र, पुस्तक तथा दंड लिये आमने - सामने खड़ा दिखाया गया है। उनके एक हाथ की सामग्री स्पष्ट नहीं है। दोनों ही आकृतियां मुंडित मस्तक हैं और घुटने तक लंबी धोती तथा आभूषणों से सज्जित हैं। इन आकृतियों को एक - दूसरे के सम्मुख पूर्ववर्ती देवगढ़ की नर - नारायण मूर्ति के समान ज्ञान देने और ज्ञान पाने की मुद्राओं में दिखाया गया है (चित्र ३१)।

परशुराम - सहस्त्रबाहु युद्ध

परशुधारी परशुराम को भी विष्णु का एक अवतार माना गया है। रामनगर के दुर्गा मंदिर (१८ वीं शती ई.) पर परशुराम और सहस्त्रबाहु के युद्ध की कथा का जीवन्त अंकन हुआ है। सहस्त्रबाहु किसी समय परशुराम की कामधेनु गाय चुरा ले गया था। उसी गाय को पुनः प्राप्त करने के लिए परशुराम ने सहस्त्रबाहु से युद्ध कर उसका संहार किया था। मंदिर की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण दृश्य में धनुष और परशुधारी द्विभुज परशुराम को सामने खड़े अनेक हाथों वाले सहस्त्रबाहु से युद्ध करते दिखाया गया है। परशुराम प्रहार की मुद्रा में परशु उंठाये हैं जबकि सहस्त्रबाहु के सभी हाथों में खड्ग हैं। ऊपर की ओर गाय की आकृति दिखलाकर शिल्पी ने कथा सूत्र को पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है। साथ ही युद्ध के परिणाम का भी संकेत दिया गया है जिसमें कई कटे हुए करों, मस्तकों तथा धड़ द्वारा सहस्त्रबाहु के अन्त को दरशाया गया है (चित्र ३४)।

काशी की विष्णु मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि शिव की केन्द्रस्थली होने के बाद भी यहां विष्णु को पर्याप्त महत्व प्रदान किया गया। सम्भवतः यही कारण है कि विष्णु के विभिन्न स्वतंत्र और अवतार - स्वरूपों की मूर्तियां यहां बनीं। ये मूर्तियां आसन एवं स्थानक दोनों ही रूपों में तथा अधिकांशतः चतुर्भुज हैं। विष्णु के आयुधों के अंकन में यद्यपि किसी निश्चित क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है तथापि उनमें पारम्परिक आयुध शंख, चक्र, गदा एवं पद्म ही प्रदर्शित हैं। प्रारंभिक मूर्तियों की ओजस्विता और भावप्रवणता बाद की मूर्तियों में क्रमशः भावशून्यता, चेष्टाओं की स्थिरता और रुक्षता में परिवर्तित होती चली जाती है। परवर्ती उदाहरणों में विषयवस्तु का विस्तार या विविधता दिखायी देती है जिसके यथेष्ट उदाहरण १८ वीं से २० वीं शती ई. के लक्ष्मी- नारायण, दुर्गा एवं आदिकेशव मंदिरों पर देखे जा सकते हैं। इनमें पारंपरिक एवं प्रचलित स्वरूपों के साथ ही कुछ विशिष्ट एवं दुर्लभ स्वरूपों और वैष्णव कथाओं से संबंधित मूर्तियां मिलती हैं। इनमें समुद्र - मन्थन, गोवर्धनधारण, परशुराम - सहस्त्रबाहु युद्ध, बलराम का यमुना -कर्षण, नर-नारायण, विठ्ठल, जगन्नाथ, चीरहरण तथा कालियमर्दन स्वरूप मुख्य हैं। विष्णु की एकल एवं लक्ष्मी-नारायण तथा शेषशायी और अवतार स्वरूपों तथा बलराम - रेवती की सर्वाधिक मूर्तियां बनीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

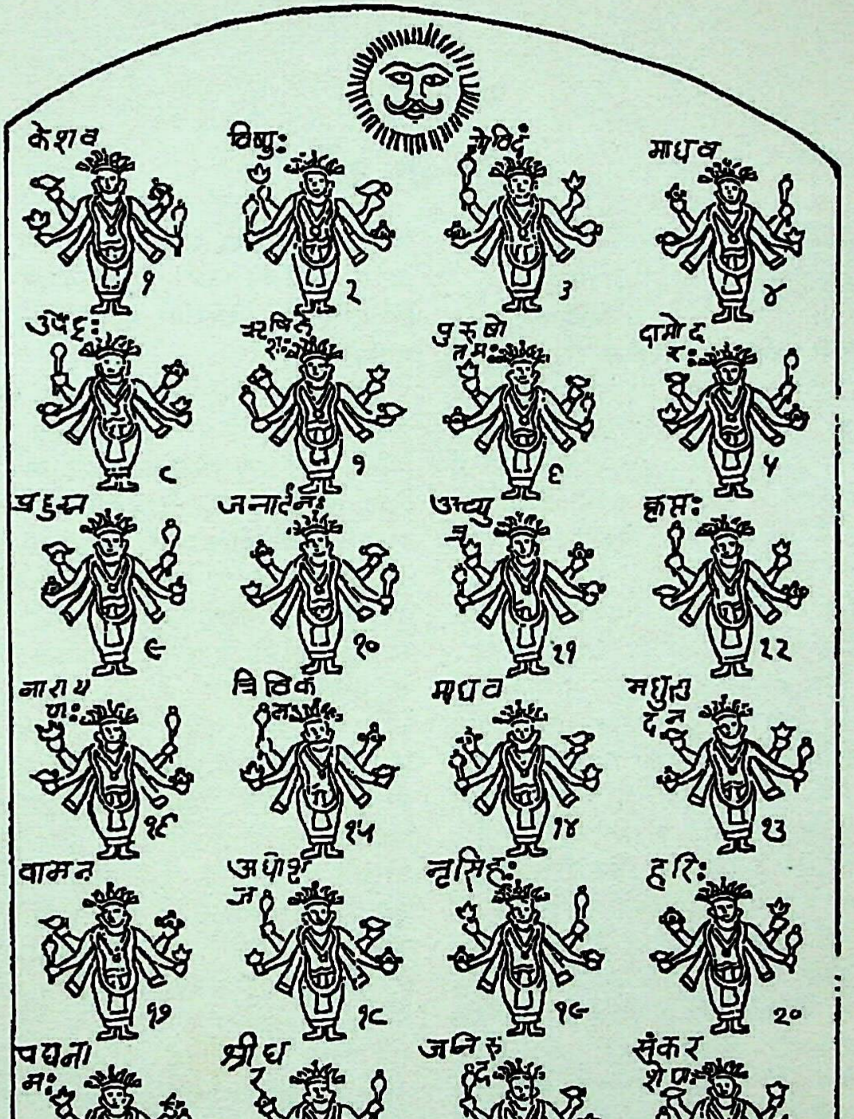

६ - चतुर्विंशति केशवपट्ट, १८वीं शती, द्वारिकाधीश मंदिर, शंकुलधारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

षष्ठ अध्याय

शक्ति या देवी

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

दुर्गासप्तशती ५.३२

विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में सर्वप्रथम शक्ति या देवी की उपासना की गयी जो मानव जीवन में शक्ति या ऊर्जा की अनिवार्यता का द्योतक है। देवी पूजन दो रूपों में प्राप्त होता है - एक शक्ति के रूप में और दूसरा मातृदेवी के रूप में। प्रारंभ में देवी की उपासना माता के रूप में अधिक लोकप्रिय थी। यही कारण है कि प्राचीन पुरातात्विक स्थलों से मातृदेवी स्वरूप की मूर्तियों के उदाहरण ही अधिक प्राप्त होते हैं। पुराणों में देवी के मातास्वरूप का ही संकेत मिलता है। सृष्टि की निरतंरता बनाये रखने के लिए ही मातृदेवियों का पूजन प्रारंभ हुआ। शक्ति - पूजन के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं की क्रियाशीलता उनकी शक्ति में निहित मानी गयी और तदनुरूप सभी प्रमुख देवताओं की अलग - अलग शक्तियों की कल्पना की गयी। गुप्तकाल तक शक्ति - पूजन का इतना विकास हुआ कि ब्राह्मण धर्म के पांच प्रमुख सम्प्रदायों में शक्ति के उपासकों का भी एक स्वतंत्र शाक्त सम्प्रदाय बना। शिव, विष्णु, ब्रह्मा, कार्त्तिकेय, इन्द्र आदि ब्राह्मण देवों की शक्तियों का भी मातृकाओं के रूप में सात या आठ के समूह में या अलग - अलग रूपायन हुआ। विभिन्न देवो से संबंधित होने के कारण मातृका मूर्तियों में संबंधित देवताओं के वाहन और आयुध प्रदर्शित किये गये। मातृकाओं की गोद में बालकों को दिखलाकर उनके मातृपक्ष को उजागर किया गया। मातृदेवियों और शक्ति देवियों की समवेत कल्पना के फलस्वरूप शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत अनेक देवियों की धारणा का विकास हुआ। ग्रंथों में शक्ति को सर्वव्यापी, सर्वदर्शी, सर्वशक्तिमान, जगदम्बा एवं जगन्माता कहा गया है। गुप्तोत्तर काल में शक्ति की कल्पना को शिव की शक्ति उमा या पार्वती से एकीकृत किया गया और यह माना गया कि स्वयं उमा या पार्वती ही समय - समय पर अलग - अलग स्वरूप धारण करती हैं। शक्ति के विभिन्न रूपों में महालक्ष्मी, महाकाली और महासरस्वती मुख्य हैं।

संस्कृति के विकासक्रम में भौतिक प्रगति ने मानव मन में आकांक्षाओं की प्रबलता उत्पन्न की। मनुष्य की विभिन्न प्रकार की शक्तियों (शारीरिक , आध्यात्मिक, विद्या, अलौकिक, सांसारिक) को प्राप्त करने की अनन्त इच्छा ने शक्ति की उपासना को व्यापक आयाम दिया। इसमें राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों एवं सोच की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। विदेशी आक्रमणकर्ताओं के प्रतिरोध, आपसी संघर्ष एवं स्वयं के व्यक्तिगत सामर्थ्य में वृद्धि की इच्छा के कारण शक्ति के अलग - अलग रूपों को व्यापक जन स्वीकृति प्राप्त हुई। धन प्राप्ति की लालसा ने समृद्धि और ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की उपासना और विद्या तथा संगीत में विदग्धता की इच्छा नें संगीत और विद्या की देवी सरस्वती की उपासना को लोकप्रतिष्ठा दी। फलस्वरूप शुंग - कुषाणकाल से ही साहित्य एवं शिल्प (भरहुत, सांची, मथुरा, एलोरा, खजुराहो आदि) दोनों में उनका निरूपण होने लगा जो आज के जीवन और व्यवहार में भी देखा जा सकता है। लक्ष्मी के साथ दिखाये जाने वाले पदुम, कलश और गज समृद्धि और ऐश्वर्य के सूचक हैं जबकि सरस्वती का हंस वाहन एवं करों में प्रदर्शित पुस्तक एवं अक्षमाला ज्ञान, विद्या और आध्यात्मिक साधना को अभिव्यक्त करते हैं। यही सरस्वती जब संगीत की देवी के रूप में परिकल्पित होती हैं तो वाहन मयूर हो जाता है और हाथों में पुस्तक एवं अक्षमाला के साथ ही वीणा भी दिखायी जाने लगती है जो खजुराहो, भुवनेश्वर एवं विमलवसही की मूर्तियों में देखे जा सकते हैं। यही नहीं हलेबिड (कर्नाटक) एवं कुछ अन्य परवर्ती उदाहरणों में सरस्वती को नृत्यरत भी रूपायित किया गया। तात्पर्य यह कि देवताओं या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आराध्यदेवों की परिकल्पना और उनका स्वरूपगत विकास मानव मन और सोच का प्रतिबिम्ब या अक्स रहा है। यह भाव वेद - वाक्य 'एकम् सद् विप्राः बहुधा वदन्ति' से तुलसी की पंक्ति 'जाकि रहि भावना जैसी प्रभु मूरत देखी तिन तैसी' में निरन्तर देखा जा सकता है। शक्ति का उग्र या संहार स्वरूप, जिसका विशद् विवेचन मार्कण्डेयपुराण एवं अन्य ग्रन्थों में हुआ है, मनुष्य के उग्र या संहारक शक्ति प्राप्त करने की इच्छा का बिम्ब है। भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में जैसे - जैसे बाहर की आक्रामक चुनौतियां बढ़ती गयीं वैसे - वैसे प्रतिरोधक और मारक शक्तियों की आवश्यकता भी बढ़ती गयी। इन स्वरूपों में मनुष्य के भीतर के अन्धकार और अज्ञानता या पैशाचिक प्रवृत्तियों से स्वयं के निरन्तर संघर्ष और उनपर विजय का शाश्वत् संदेश भी छिपा है। फलस्वरूप दुर्गा, चामुण्डा, काली और महिषमर्दिनी रूपों की कल्पना की गयी जो भारतीय समाज के लिए अजस्र शक्ति की प्रेरणा का स्रोत बनीं। शक्ति की परिकल्पना जीवन की ऊर्जा या क्रियाशीलता का सूचक है जिसके बिना मनुष्य क्या स्वयं शिव भी शव यानी निष्क्रिय हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि शक्ति की कल्पना जीवन और क्रियाशीलता की कल्पना है और उसी में सृष्टि और मानवता के विकास की सभी सम्भावनाएं निहित हैं। शक्ति की व्यापक परिकल्पना के विकास के फलस्वरूप विभिन्न देवियों के स्वतंत्र - पूजन और मूर्ति- निर्माण की परम्परा भी विकसित हुई।

भारतीय शिल्प में कुषाण -गुप्तकाल और उसके बाद से शक्ति के विविध रूपों के अंकन मिलते हैं, जिनके श्रेष्ठतम उदाहरण ओसियां, आबनेरी, खजुराहो, भुवनेश्वर, एलोरा, महाबलीपुरम, बादामी, अयहोल, जगत, हलेबिड, बेलूर जैसे स्थलों पर देखे जा सकते हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण, दुर्गासप्तशती, अपराजितपृच्छा, रूपमंडन, शिल्परत्न आदि ग्रन्थों में शक्ति के विविध स्वरूपों का विस्तृत निरूपण मिलता है।[१]

देवी या शक्ति की मूर्तियों को मुख्यतः सामान्य (या सौम्य) तथा उग्र (या संहारक) रूपों में विभाजित किया गया है। संहार स्वरूपों में देवी के हाथों में त्रिशूल या शूल, धनुष, बाण, खड्ग, खेटक पाश, अंकुश, शंख, चक्र, खट्वांग एवं कपालपात्र जैसे आयुध होते हैं और एक हाथ अभय या वरद्मुद्रा में होता है। इन स्वरूपों में महिषमर्दिनी, दुर्गा, काली, चामुण्डा, भूतमाता, कालरात्रि, रौद्री, शिवदूती, भैरवी, मनसा, शीतला, चौसठयोगिनी मुख्य हैं। देवी के सौम्य स्वरूपों में लक्ष्मी एवं क्षमा (पद्मधारिणी), सरस्वती (पुस्तक एवं वीणाधारिणी), गौरी, पार्वती (शिव या शिवलिंग एवं गणेश की आकृतियां धारण किये), गंगा - यमुना (कलश एवं पद्म धारिणी) तथा अन्नपूर्णा मुख्य हैं।

काशी में अन्य देवपीठों के समान शक्ति या देवीपीठ और मातृपीठों के भी उल्लेख मिलते हैं। काशीखंड में ६८ देवीपीठों का उल्लेख है जिनमें १६ विशिष्ट कोटि में रखी गयी हैं। काशीखण्ड (६७. ४५-४६) में मातृकाओं के लिये मातरः शब्द मिलता है। इसके साथ ही मातृतीर्थ के रूप में केवल एक तीर्थ का उल्लेख हुआ है जहां मातृकापीठ स्थित था। काशी से प्राप्त विभिन्न देवी मूर्तियों से स्पष्ट है कि यहां लक्ष्मी, सरस्वती, महिषमर्दिनी, सिंहवाहिनी दुर्गा, सप्तमातृका, काली, अन्नपूर्णा एवं गंगा-यमुना और शीतला के पूजन की परम्परा थी। वर्तमान में दुर्गा, लक्ष्मी, अन्नपूर्णा, काली एवं शीतला के स्वतंत्र मंदिर भी विद्यमान हैं, जिनमें आज भी इन देवियों की पूजा परम्परागत रूप में की जाती है। दुर्गा के पूजन की यहां विशेष परम्परा है जिनका विशेष पूजन एवं दर्शन वर्ष में दो बार चैत्र तथा शारदीय नवरात्र में होता है। नवदुर्गाओं के नाम से प्रचलित दुर्गा की नव प्रतिमाएं नगर के विभिन्न मुहल्लों में विभिन्न नामों से मंदिरों में प्रतिष्ठित हैं। काशी में नवदुर्गाओं में प्रथम दिन शैलपुत्री (अलईपुर रेलवे स्टेशन के पास), दूसरे दिन ब्रह्मचारिणी (काठ की हवेली, गणेश जी का फाटक, दुर्गाघाट), तीसरे दिन चन्द्रघंटा (चौक - ठठेरीबाजार), चौथे दिन कुष्माण्डा (दुर्गा मंदिर, दुर्गाकुण्ड), पांचवें दिन स्कन्दमाता (जैतपुरा - वागेश्वरी देवी), छठे दिन कात्यायनी (आत्मावीरेश्वर मंदिर परिसर, संकठाघाट), सातवें दिन कालरात्रि (कालिकागली - मकान नं. डी. ८/१७), आठवें दिन महागौरी (अन्नपूर्णा मंदिर एवं समीप स्थित राममंदिर में भवानी गौरी मंदिर) तथा नौवें दिन सिद्धिदात्री देवी (सिद्धमाता की गली स्थित मंदिर, गोलघर) के दर्शन का विधान है। काशी में गौरीपीठों का भी उल्लेख मिलता है। काशीखण्ड (१००.६८-७२) में नवगौरी यात्रा का विवरण मिलता है। कुछ प्रमुख देवियों का स्वतंत्र उल्लेख यहां अपेक्षित है -

---

१- टी० ए० गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खण्ड-१, भाग २, पृ. ३२७-४००; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. ४८६-५०६; लालमणि दूबे, अपराजितपृच्छा ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, १६८७, पृ. ३२७-३३५, बलराम श्रीवास्तव, आइकनोग्राफी ऑफ शक्ति, वाराणसी, १६७८।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लक्ष्मी

भारतीय परम्परा में लक्ष्मी समृद्धि, सौभाग्य और सौन्दर्य की प्रतीक हैं। लक्ष्मी को श्री, पद्मा, कमला नामों से भी सम्बोधित किया गया है। भारत में आज भी विभिन्न अवसरों पर इनके पूजन की परम्परा प्रचलित है जिनमें दीपावली सर्वप्रमुख है। काशी में लक्ष्मीकुंड में प्रतिवर्ष १६ दिनों तक चलने वाला लक्ष्मी- पूजन भी विशेष महत्वपूर्ण है। ब्राह्मण धर्म के अतिरिक्त बौद्ध और जैन धर्मों में भी लक्ष्मी लोकप्रिय रही हैं। भरहुत और सांची के बौद्ध स्तूपों पर तथा जैन स्थलों पर मांगलिक स्वप्नों के अंकन में गजलक्ष्मी की मूर्तियां मिलती हैं। ऐसे उदाहरण खजुराहो, विमलवसही, एलोरा, भुवनेश्वर, लूणवसही जैसे स्थलों पर देखे जा सकते हैं।

पुराणों में लक्ष्मी को विष्णु से संबंधित किया गया है। लक्ष्मी की उत्पत्ति सागर - मंथन के फलस्वरूप अन्य निधियों के साथ हुई बताई गई है। विभिन्न शिल्पशास्त्रों में लक्ष्मी को गौरवर्णा, दिव्यस्वरूपा, चिरयौवना और सर्वाभरणभूषिता कहा गया है। लक्ष्मी कभी द्विभुजी, कभी चतुर्भुजी और कभी उससे भी अधिक करों वाली बतायी गयी हैं। उनके हाथों में पद्म, श्रीफल, अमृतघट, बीजपूरक, खेटक, शंख और कौमोदकी गदा के प्रदर्शन का विधान है। सामान्यतः लक्ष्मी को दो हाथों में पद्म लिये और पद्म पर आसीन या खड़ी निरूपित किया जाता है। लक्ष्मी का एक स्वरूप गजलक्ष्मी या अभिषेक लक्ष्मी है। मूर्त अंकनों में गजलक्ष्मी स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। रूपमंडन (५.५७-६०) में लक्ष्मी और महालक्ष्मी दोनों का उल्लेख मिलता है। लक्ष्मी को पद्म पर आसीन और ऊपर के दो हाथों में पद्म लिये निरूपित किया गया है, जबकि नीचे के दो हाथों में अमृतघट और मातुलिंग होने का उल्लेख है। महालक्ष्मी के हाथों में पात्र, कौमोदकी गदा, खेटक तथा श्रीफल होने का संदर्भ है।

भारतीय कला में गजलक्ष्मी का अंकन दूसरी - पहली शती ई. पू. से ही मिलने लगता है जिनके प्रारंभिक उदाहरण भरहुत, सांची, बोधगया, मथुरा जैसे स्थलों पर देखे जा सकते हैं। गुप्तकाल में लक्ष्मी को राष्ट्रीय देवी के रूप में मान्यता मिली। मध्यकाल में लक्ष्मी की अनेक मूर्तियां बनीं जिनमें लक्ष्मी और गजलक्ष्मी दोनों स्वरूपों का स्वतंत्र अंकन हुआ। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त लक्ष्मी - नारायण तथा शेषशायी - विष्णु की मूर्तियों में भी लक्ष्मी का अंकन हुआ है।

काशी में लक्ष्मी की सामान्य और गजलक्ष्मी दोनों ही स्वरूपों की मूर्तियां मिली हैं। लक्ष्मी के सामान्य स्वरूप की मूर्तियां बहुत कम हैं। सामान्य स्वरूप का एक उदाहरण (१८ वीं - १९ वीं शती ई.) नन्देश्वर-घाट से प्राप्त हुआ है। द्वार - उत्तरंग पर उत्कीर्ण उदाहरण में लक्ष्मी को गणेश के बायीं ओर पद्मासन में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र लिये आकारित किया गया है। गजलक्ष्मी मूर्तियों के मुख्य उदाहरण करुणेश्वर मंदिर (ललिताघाट), मोक्षलक्ष्मी मंदिर (केदारघाट), सोरईया महादेव मंदिर (भैरवनाथ), मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट) एवं अन्नपूर्णा मंदिर (विश्वनाथगली) में देखे जा सकते हैं।

१२ वीं शती ई. के करुणेश्वर मंदिर के उदाहरण में चतुर्भुजा गजलक्ष्मी पद्मासन पर ललितासीन हैं। कन्धों के ऊपर देवी का अभिषेक करती दो गज आकृतियां बनी हैं। उनके दाहिने हाथ खंडित हैं किन्तु बायें हाथों में लम्बा नाल युक्त पद्म और पुस्तक स्पष्ट हैं। लक्ष्मी के साथ सरस्वती की विशिष्टता पुस्तक का दिखाया जाना एक दुर्लभ विशेषता है। लक्ष्मी के दोनों पार्श्वों में सेविकाएं बनी हैं। मोक्षलक्ष्मी मंदिर से गजलक्ष्मी के दो उदाहरण प्राप्त हुये हैं। इनमें से एक १२ वीं - १३ वीं शती ई. का और दूसरा १५ वीं - १६ वीं शती ई. का है। १२ वीं - १३ वीं शती ई. की मूर्ति पर्याप्त खंडित एवं घिसी है। प्रस्तुत उदाहरण में समभंग में खड़ी लक्ष्मी के हाथ नीचे की ओर लटके हैं। उनके बायें पार्श्व में कोई आकृति थी जो अब अस्पष्ट है। ऊपर की ओर लक्ष्मी का अभिषेक करती दो गज आकृतियां बनी हैं। दूसरी आकृति में समभंग में खड़ी लक्ष्मी वरदाक्ष, पद्म, पद्म तथा जलपात्र से युक्त हैं। मुकुट एवं आभूषणों से सज्जित आकृति के ऊपर दो गज आकृतियां देवी का जलाभिषेक कर रही हैं। लक्ष्मी के दाहिने पार्श्व में हाथ जोड़े एक पूजक और चामरधारिणी की आकृतियां बनी हैं।

सोरईया महादेव एवं मंगलागौरी मंदिरों के उदाहरणों में भी समभंग में खड़ी लक्ष्मी का अभिषेक करती दो गज आकृतियां उत्कीर्ण हैं। ये आकृतियां १४ वीं - १५ वीं शती ई. की हैं। दोनों ही मूर्तियों में लक्ष्मी के दो हाथों में वरदमुद्रा एवं पद्म स्पष्ट हैं। अन्य हाथ खंडित हैं। मंगलागौरी मंदिर के उदाहरण में लक्ष्मी के पार्श्वों में उपासक आकृतियां भी बनी हैं। अन्नपूर्णा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंदिर के १६ वीं शती ई. के उदाहरण में पद्म पर आसीन देवी के हाथों में अक्षमाला, पद्म, पद्म और फल दिखाये गये हैं। ऊपर जलाभिषेक करती गज आकृतियों के मध्य छत्र उत्कीर्ण है। मंदिरों के अतिरिक्त गंगा किनारे घाट की सीढ़ियों पर भी गजलक्ष्मी की कुछ आकृतियां मिली हैं। इनमें से एक उदाहरण ललिताघाट की सीढ़ी पर और दूसरा केदारघाट की सीढ़ी पर है। दोनों उदाहरणों में ललितासीन देवी चतुर्भुजा हैं। ललिताघाट की १३ वीं शती ई. की मूर्ति में देवी के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं।

पार्वती

उमा या पार्वती द्वादश - गौरी में एक हैं। द्वादश - गौरी रूपों में पार्वती स्वरूप ही भारतीय शिल्प में सर्वाधिक लोकप्रिय था जिसके उदाहरण प्रायः सभी कलाकेन्द्रों पर मिलतें हैं। **अपराजितपृच्छा**[२] तथा **रूपमंडन**[३] में अग्निकुंड से वेष्टित पार्वती के हाथों में अक्षसूत्र, शिव, गणेश तथा कमण्डलु का उल्लेख हुआ है। पार्वती का वाहन गोधा या सिंह बताया गया है। मूर्त उदाहरणों में पार्वती के हाथों में अधिकांशतः शिवलिंग और कभी - कभी शिव और गणेश की मूर्तियां मिलती हैं। ऐसे उदाहरण एलोरा, मोढेरा, ओसियां, भुवनेश्वर, खजुराहो एवं गुर्गी से मिले हैं। कभी - कभी पार्वती के एक हाथ में गणेश और दूसरे में शिवलिंग के स्थान पर कार्त्तिकेय की आकृतियां दिखायी गयी हैं।[४]

काशी से पार्वती की कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो सातवीं से १८ वीं शती ई. के मध्य की हैं। इनमें त्रिशूल और दर्पणधारिणी देवी की प्रधानता है जिन्हें शिवा भी कहा जा सकता है। प्रारंभिक उदाहरण लोलार्केश्वर महादेव मंदिर के द्वार के समीप स्थित चौमुखी पर उत्कीर्ण है। सातवीं शती ई. के प्रस्तुत उदाहरण में चतुर्भुजा पार्वती समभंग में खड़ी हैं और उनके करों में वरदमुद्रा, त्रिशूल, सनालपद्म और जलपात्र (?) प्रदर्शित हैं। पार्वती के मस्तक पर भारी गोल जूड़ा, कानों में कुण्डल और कमर में लम्बी धोती सुशोभित है। पार्वती के दाहिने पार्श्व में सिंह आकृति बैठी है (चित्र ४१)। पार्वती की अन्य मूर्तियां देवकुलिका (लालघाट), शीतला मंदिर (प्रहलादघाट), दुर्गा मंदिर (दुर्गाकुंड), शीतला मंदिर (राजमंदिर), देवकुलिका (नन्देश्वरघाट), पंचमेश्वर महादेव मंदिर (सूर्यकुण्ड); कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा) से प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां लक्षणों की दृष्टि से एक -दूसरे से कुछ -कुछ भिन्न हैं। लालघाट के ११वीं - १२ वीं शती ई. के उदाहरण में ललितासीन पार्वती के हाथों में अभयमुद्रा, त्रिशूल, दर्पण एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। पार्वती के मस्तक पर ऊंचा गोल जूड़ा शोभित है। उनके दाहिने पैर के पास आसन के मध्य वृषभ आकृति उत्कीर्ण है। शीतला मंदिर की ११ वीं - १२ वीं शती ई. की ललितासीन पार्वती मूर्ति में गोद में बालक -स्कन्द भी उत्कीर्ण है जिसका एक हाथ पार्वती के वक्ष पर है। मुकुट एवं आभूषणों से सज्जित पार्वती के तीन हाथों में फल, त्रिशूल, दर्पण हैं जबकि एक हाथ से देवी बालक को पकड़े हुए हैं। दुर्गा मंदिर के उदाहरण में पार्वती के हाथों में वरदमुद्रा, त्रिशूल, सर्प और जलपात्र हैं। उनके पार्श्वों में सिंह एवं वृषभ (?) वाहनों की आकृतियां बनी हैं। इसी प्रकार दुर्गा मंदिर के प्रवेशद्वार के दाहिनी ओर के उदाहरण में ललितासीन पार्वती के करों में अभयमुद्रा, त्रिशूल, पद्म तथा जलपात्र हैं। उनके पार्श्व में चामरधर आकृति भी उपस्थित है। ये दोनों उदाहरण १२ वीं शती ई. के हैं। नन्देश्वरघाट की आकृति भी १२ वीं - १३ वीं शती ई. की प्रतीत होती है जिसमें ललितासीन देवी की गोद में संभवतः कार्त्तिकेय हैं। उनके अन्य दो करों में पात्र तथा दर्पण स्पष्ट हैं। एक हाथ खंडित है और मूर्ति भी पर्याप्त घिसी है। १४ वीं शती ई. की पार्वती की पंचमेश्वर मंदिर की आकृति समभंग में खड़ी है। पार्वती के तीन करों में जलपात्र, दर्पण एवं त्रिशूल हैं। एक हाथ से देवी पार्श्व में खड़े बालक का एक हाथ पकड़े हैं। नीचे सिंह की आकृति भी बनी है। पार्वती के मस्तक पर भारी गोल जूड़ा है। नन्देश्वरघाट का दूसरा आसीन उदाहरण १६वीं शती ई. का है। अष्टभुजी देवी के हाथों में वरदमुद्रा, पद्म, गदा, त्रिशूल एवं सर्प स्पष्ट हैं। उनके दो अन्य हाथों में से एक घुटने पर तथा दूसरा गणेश के मस्तक

२- अक्षसूत्रं शिवो देवो गणाध्यक्षः कमण्डलुः।
पक्षद्वयं चाग्निकुण्डं पार्वती पर्वतोद्भवा।।
अपराजितपृच्छा २२२.६

३- अक्षसूत्रां शिवां देवीं गणाध्यक्षकमण्डलुम्।
पक्षद्वयेऽग्निकुण्डश्च पार्वती पर्वतोद्भवा।।
रूपमण्डन ५.३

४-आर० डी० त्रिवेदी, आइक्नोग्राफी ऑफ पार्वती, दिल्ली, १९८१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर स्थित है। दाहिने पार्श्व में सिंह एवं खड्ग, खेटकधारी मानव आकृतियां बनी हैं। पार्वती मूर्ति का अंतिम उदाहरण कपिलेश्वर मंदिर से प्राप्त हुआ है। इसमें पार्वती सिंह पर आरूढ़ हैं और उनके हाथों में शिवलिंग, खड्ग, एवं त्रिशूल प्रदर्शित हैं।

दुर्गा

आगमों-एवं पुराणों में दुर्गा के नौ अलग - अलग स्वरूपों का उल्लेख मिलता है। दुर्गा - सप्तशती (देवीकवच ३-५) में नवदुर्गाओं के रूप में शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघंटा, कुष्माण्डा,स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी, सिद्धिदात्री का उल्लेख मिलता है। काशी में इन सभी नवदुर्गाओं के अलग - अलग स्थल नियत हैं जिनका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।[५] ग्रन्थों में दुर्गा के नामों एवं लक्षणों के उल्लेख मिलते हैं। अपराजितपृच्छा (२२२.२८-३६) में दुर्गा को सिंह - वाहना और चतुर्भुजा बताया गया है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक दुर्गा के अलग - अलग नामों और लक्षणों का भी सन्दर्भ प्राप्त होता है जो इस प्रकार हैः महालक्ष्मी को वरदमुद्रा, त्रिशूल, खेटक और पानपात्र; नन्दा को अक्षसूत्र, खड्ग, खेटक और पानपात्र; क्षेमंकरी को वरदमुद्रा, त्रिशूल, पद्म और पानपात्र; शिवदूती को कमण्डलु, चक्र, खेटक और पानपात्र; महाचण्डा को खड्ग, त्रिशूल, घंटा और जलपात्र; भ्रमरी को खड्ग, डमरू, खेटक और पानपात्र; सर्वमंगला को अक्षसूत्र, वज्र, घण्टा और पानपात्र; रेवती को दण्ड, त्रिशूल, खट्वांग और पानपात्र तथा हरसिद्धि को कमण्डलु, खड्ग, डमरू और पानपात्र से युक्त बताया गया है। यद्यपि भारतीय शिल्प में नवदुर्गाओं के अलग - अलग अंकन नहीं मिलते किन्तु चतुर्भुजा या उससे अधिक हाथों वाली सिंह-वाहना दुर्गा की सामान्य मूर्तियों के उदाहरण प्रायः सभी मध्यकालीन कला केन्द्रों पर देखे जा सकते हैं।

काशी से दुर्गा की कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जिनमें उन्हें चतुर्भुजा और सिंह पर आरूढ़ या सिंह के साथ खड़ी दिखाया गया है। ये मूर्तियां मंदिरों के गर्भगृहों में प्रतिष्ठापित हैं या फिर देवकुलिकाओं में हैं या मंदिर की बाह्य भित्तियों की रथिकाओं में बनी हैं। दुर्गा मूर्तियों के उदाहरण त्र्यम्बकेश्वर मंदिर (बड़ादेव), केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट), लक्ष्मी - नारायण और रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट), शिव मंदिर (दुर्गाकुण्ड और मणिकर्णिकाघाट) एवं रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) से प्राप्त हुए हैं। वर्तमान दुर्गा मंदिर में पूजित मूर्ति के वस्त्रों एवं आभूषणों से ढके होने के कारण इसका विवरण देना सम्भव नहीं है। लक्ष्मी - नारायण मंदिर के उदाहरण में सिंहवाहिनी दुर्गा छत्रधारिणी हैं। मूर्ति के नीचे गणेश की आकृति बनी है। यह मूर्ति मंदिर की पश्चिमी जंघा पर एक छोटी रथिका में स्थित है। रघुराजेश्वर मंदिर की आकृतियां उत्तरी और पश्चिमी जंघा पर उकेरी हैं। देवी के हाथों में त्रिशूल, खड्ग, कपालपात्र और शिरस् स्पष्ट हैं। ऐसी तीन आकृतियां मिली हैं जिनमें से एक स्थानक है। शिव मंदिर (दुर्गाकुंड) के उदाहरण में सिंह पर आसीन दुर्गा के हाथों में केवल खड्ग और त्रिशूल ही शेष हैं। शेष दो हाथ खंडित हैं। रामेश्वर मंदिर में स्तंभों पर उत्कीर्ण दुर्गा सिंह पर एक पैर रख कर खड़ी हैं। देवी के हाथों में कपालपात्र, खड्ग, त्रिशूल और शिरस् हैं।त्र्यम्बकेश्वर मंदिर के उदाहरण में सिंहवाहिनी दुर्गा के हाथों में अभयमुद्रा, खड्ग, त्रिशूल और शिवलिंग प्रदर्शित हैं। ऊपर वर्णित दुर्गा की अधिकांश आकृतियां १८ वीं से २० वीं शती ई. की हैं।

महिषमर्दिनी

शक्ति भाव की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति महिषमर्दिनी दुर्गा की परिकल्पना में देखी जा सकती है। महिष देहधारी और आसुरी प्रवृत्तियों के सूचक महिषासुर का संहार करने के कारण ही देवी को महिषमर्दिनी कहा गया। इस स्वरूप से संबंधित कथा मार्कण्डेय (सर्ग ७४ एवं ७५) एवं ब्रह्माण्ड पुराणों में वर्णित है। देवसेना को पराजित और देवलोक को त्रस्त करने वाले असुर का संहार करने में देवताओं की असमर्थता के कारण ही सभी देवताओं ने अपनी -अपनी शक्तियों या तेज से एक तेजपुंज स्वरूपा देवी की सृष्टि की और फिर उसे सभी देवताओं ने अपने - अपने विशिष्ट आयुध या अस्त्र - शस्त्र प्रदान किये। इसी देवी ने शक्ति के सूचक सिंह पर आरूढ़ होकर महिषासुर का संहार किया। यह स्वरूप शक्ति के महत्व और उसके समवेत रूप को व्यक्त करता है जिसमें 'सामूहिक शक्ति' का प्रतीक भी निहित है जो सामाजिक संगठन और विकास का मूलाधार है। ग्रन्थ के उल्लेख के अनुसार शिव ने देवी को त्रिशूल, विष्णु ने चक्र, वायु ने धनुष - बाण, इन्द्र ने वज्र, यम ने कालदण्ड, वरुण ने पाश और ऐसे ही अन्य देवताओं ने अपने विशिष्ट आयुध दिये।

५- काशी में नवदुर्गाओं के स्थानों के लिए द्रष्टव्यः कुबेरनाथ सुकुल, पूर्व निर्दिष्ट, पृ . ८७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ज्ञातव्य है कि मूर्तियों में देवी के हाथों में यही आयुध दिखाये गये हैं जो देवी की अपरिमित शक्ति के सूचक हैं। प्रारंभ से ही देवी का यह स्वरूप सभी क्षेत्रों में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। १० वीं शती ई. में राजस्थान में उदयपुर के समीप स्थित जगत का देवी मंदिर इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय है जिसकी दीवारों पर कुषाणकाल से १० वीं शती ई. के मध्य विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित महिषमर्दिनी स्वरूप की मूर्तियों के विविधतापूर्ण उदाहरण उकेरे हैं।

कुषाणकाल में मथुरा एवं अन्य क्षेत्रों की मूर्तियों में महिषमर्दिनी को त्रिशूल या शूल से महिष देहधारी असुर का संहार करते दिखाया गया है। गुप्तकाल और बाद के उदाहरणों में सिंहवाहनी देवी को प्रचण्ड रूप में संहार प्रक्रिया में निरूपित किया गया है। परवर्ती उदाहरणों में असुर को महिष रूप में और देवी द्वारा उसकी गर्दन काटे जाने के बाद उससे मानव रूप में निकलते दिखाया गया है। इस स्वरूप की असंख्य मूर्तियां ओसियां, खजुराहो, भुवनेश्वर, एलिफैण्टा, एलोरा, कांचीपुरम, वाराणसी, मथुरा एवं अन्य स्थलों से मिली हैं। महाबलिपुरम् (तमिलनाडु) की पल्लव तथा एलोरा (कैलाश मंदिर - महाराष्ट्र) की राष्ट्रकूट काल की सातवीं - आठवीं शती ई. की दो मूर्तियां इस दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय हैं जिनमें कथात्मक शैली में पूरी जीवन्तता और नाटकीय क्रियाशीलता के साथ देवी और महिष के मस्तक तथा मानव देहधारी असुर के युद्ध को रूपायित किया गया है। इन उदाहरणों में दोनों की सेनाओं के बीच भी युद्ध हो रहा है। इनमें देवी का मुख्य आयुध त्रिशूल के स्थान पर धनुष - बाण हैं। शरसन्धान - मुद्रा से देवी का आत्मविश्वास उनकी अनन्त शक्ति तथा विजय की आश्वस्ति का भाव व्यक्त हो रहा है।

भारत के उत्तरी और पूर्वी क्षेत्रों में आश्विन नवरात्र में महिषमर्दिनी की पूजा का विशेष महत्व है। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश और असम में शक्ति - पूजा वाले क्षेत्रों में महिषमर्दिनी की पूजा विशेष लोकप्रिय है। महिषासुर के साथ देवी के युद्ध को सत्य और असत्य का संघर्ष माना गया है। महिषमर्दिनी स्वरूप का संदर्भ ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (११७.१८-२५) में सिंहवाहना देवी २० हाथों वाली बताई गई हैं जबकि अपराजितपृच्छा (२२३. ६-११) और रूपमंडन (५.४६-५०) में देवी की केवल दस भुजाओं का ही उल्लेख मिलता है। दोनों ही ग्रन्थों में दशभुजा देवी को सिंहवाहना तथा दक्षिण करों में शूल, खड्ग, वज्र, चक्र, बाण तथा वाम करों में चाप, खेटक, पाश, घंटा और अंकुश से युक्त बताया गया है। प्रायः सभी ग्रन्थों में देवी के करों में त्रिशूल, खड्ग, खेटक, धनुष, बाण, चक्र, वज्र जैसे संहारक आयुधों का उल्लेख हुआ है। मूर्तियों में देवी को सदा महिषासुर से युद्धरत या उसपर आक्रमण करते हुए दिखाया गया है। सामान्यतः देवी त्रिशूल से महिष पर आक्रमण करती प्रदर्शित होती हैं। मध्यकालीन मूर्तियों में महिष की कटी हुई गर्दन से मानव - देहधारी महिष को निकलते हुए भी दिखाया गया है।

काशी से महिषमर्दिनी की कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। दो मूर्तियां कर्दमेश्वर मंदिर पर उत्कीर्ण हैं। नगर के भीतरी (चौखम्भा) क्षेत्रों से प्राप्त ११ वीं शती ई. की द्वादशभुजी महिषमर्दिनी की दो मूर्तियां संप्रति भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित हैं (क्रमांक १५३ एवं १७७- चित्र ४२)। एक उदाहरण में सिंहवाहना देवी के अधिकांश हाथ टूटे हैं किन्तु त्रिशूल से देवी महिष के शरीर से निकले मानव देहधारी असुर पर प्रचण्ड आक्रमण कर रही हैं। दूसरी मूर्ति में संहारक देवी सौम्य - स्वरूपा और हल्के शरीर रचना वाली हैं। यहां भी देवी मानव देहधारी असुर पर त्रिशूल से प्रहार कर रही हैं। सिंहवाहना देवी के अन्य अवशिष्ट करों में असुर के केश, खड्ग (प्रहार की मुद्रा में सिर के ऊपर उठा), खेटक, धनुष, तूणीर, घण्ट, पद्म एवं चक्र प्रदर्शित हैं। सर्वालंकृत देवी की आकृति अलौकिक है। महिषमर्दिनी की अन्य मूर्तियां शीतला मंदिर (राजमंदिर), रामेश्वर मंदिर (रामेश्वर), दुर्गा मंदिर (रामनगर), अमेठी शिव मंदिर (मणिकर्णिका), मान्धातेश्वर मंदिर (ललिताघाट), समराजेश्वर मंदिर (ललिताघाट), बटुकभैरव मंदिर (बटुकभैरव) से प्राप्त हुई हैं। कालक्रम की दृष्टि से प्रारंभिक मूर्ति ९ वीं शती ई. की है जो राजमंदिर के शीतला मंदिर में सुरक्षित है। इसमें कुषाण शैली में उग्र - स्वरूपा देवी को एक हाथ में महिष की पूंछ पकड़े उत्कीर्ण किया गया है। देवी के अन्य हाथों में शूल (या त्रिशूल), खड्ग और खेटक हैं। महिष की गर्दन देवी के दाहिने पैर के नीचे दबी हुई है और शरीर का पिछला भाग ऊपर उठा हुआ है। महिष के दाहिने पार्श्व में अनुचर की एक सामान्य आकृति भी उत्कीर्ण है।

कर्दमेश्वर मंदिर के उदाहरण दक्षिणी और उत्तरी भित्तियों की रथिकाओं में उत्कीर्ण हैं। ल. १२ वीं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शती ई. के इन उदाहरणों में उग्रस्वरूपा देवी की क्रियाशीलता द्रष्टव्य है। दक्षिणी भित्ति की अष्टभुजी मूर्ति में देवी के करों में चक्र, बाण, खड्ग, खेटक और धनुष स्पष्ट हैं। एक हाथ से महिष को दूर हटाती हुई देवी दो करों में स्थित त्रिशूल से महिष पर प्रहार कर रही हैं। आहत असुर को महिष की गर्दन से मानवरूप में निकलते हुए दिखाया गया है। देवी का सिंह - वाहन भी असुर पर आक्रमण की मुद्रा में है। उत्तरी भित्ति की दूसरी मूर्ति चतुर्भुजी है। यहां सिंह पर आरूढ़ देवी दो हाथों से त्रिशूल से मानव देहधारी महिष पर प्रहार कर रही हैं। महिष की कटी गर्दन भूमि पर गिरती दिखायी गयी है और धड़ से असुर आकृति मानवरूप में निकल रही है। देवी का एक पैर महिष की पीठ पर है। देवी के अन्य दो करों में खड्ग और खेटक हैं। खड्गधारी असुर की आकृति गिरती हुई दिखायी गयी है। देवी का सिंह - वाहन भी असुर पर प्रचण्ड आक्रमण की मुद्रा में दिखाया गया है। प्रभामण्डल से युक्त देवी आभूषणों से सज्जित हैं। १२ वीं शती ई. की एक अन्य मूर्ति रामेश्वर मंदिर के दालान में स्थित है। प्रस्तुत उदाहरण में देवी का एक पैर भूमि पर और एक महिष की पीठ पर स्थित है। खड्ग एवं फलकधारिणी देवी त्रिशूल से महिष पर प्रहार कर रही हैं।

दुर्गा मंदिर (रामनगर) के उदाहरण (दक्षिणी प्रवेशद्वार) में पद्म पर आसीन १८ भुजी महिषमर्दिनी शान्तमुद्रा में बनायी गयी हैं। सिंह -वाहन आक्रामक - मुद्रा में महिष पर आक्रमण कर रहा है। महिष की कटी गर्दन निकट ही पड़ी है और उससे खड्ग और खेटकधारी, मानवदेहधारी असुर को निकलते दिखाया गया है। देवी के करों में अक्षमाला, खड्ग, पद्म, शंख, चक्र, त्रिशूल, परशु, शंख, शूल, धनुष, खेटक और जलपात्र स्पष्ट हैं। अमेठी शिव मंदिर से १८५७ ई. की एक द्वादश -भुजी आकृति मिली है जो महिष पर प्रहार की मुद्रा में रूपायित है। लोलार्केश्वर महादेव मंदिर में भी चतुर्भुजा महिषमर्दिनी की एक मूर्ति है। अन्य आकृतियों की भांति यहां भी महिष की कटी गर्दन से मानव देहधारी - असुर आकृति निकल रही है। देवी के हाथों में त्रिशूल, खड्ग, धनुष तथा असुर के केश हैं। आभूषणों से सज्जित देवी रौद्रमुखी हैं। मान्धातेश्वर मंदिर की मूर्ति (१६ वीं शती ई.) गर्भगृह के पश्चिम की ओर स्थित है। यहां भी चतुर्भुजा देवी त्रिशूल से महिष का संहार कर रही हैं। उनके दो हाथों में खड्ग एवं खेटक हैं। देवी के एक हाथ में महिष के केश हैं। सिंह भी असुर पर आक्रमण कर रहा है। महिषमर्दिनी की १८ हाथों वाली एक मूर्ति (१६ वीं शती ई.) समराजेश्वर मंदिर (ललिताघाट) के गर्भगृह की पश्चिमी रथिका में उकेरी है। रौद्रस्वरूपा सिंहवाहना देवी को महिष की कटी गर्दन से निकले असुर पर प्रहार करते दिखाया गया है। उनके करों में त्रिशूल, बाण, चक्र, खड्ग, वरदमुद्रा, खट्वांग, पात्र, खेटक, गदा, धनुष तथा घण्ट हैं। दो हाथों से देवी महिष की पूंछ और पैर पकड़े हैं। महिषमर्दिनी की विंशतिभुजी मूर्ति का एक उदाहरण बटुकभैरव मंदिर से प्राप्त हुआ है। पर्याप्त घिसी होने के कारण मूर्ति के विवरण स्पष्ट नहीं हैं। मुकुटधारी देवी के एक हाथ में खड्ग है और एक हाथ से देवी महिष के केश पकड़े हैं। असुर के एक हाथ में खेटक स्पष्ट है।

सप्तमातृका

विभिन्न देवताओं की शक्तियों के रूप में सप्त या अष्ट - मातृकाओं का निरूपण मिलता है। मूर्त उदाहरणों में मातृकाओं का सात या आठ के समूह में या स्वतंत्र रूप में रूपायन हुआ है। सामूहिक अंकन में एक शिलापट्ट पर क्रम से सात या आठ मातृकायें उत्कीर्ण की गयी हैं। इनके साथ एक ओर गणेश और दूसरी ओर वीरभद्र के अंकन का भी विधान है जो मातृकाओं के शैव परिवार से संबंधित होने का सूचक है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण**, **अपराजितपृच्छा** तथा **रूपमंडन** में ब्रह्माणी, शिवा (या माहेश्वरी), वैष्णवी, ऐन्द्री (या इन्द्राणी), कौमारी, वाराही और चामुण्डा (या चण्डिका) के नाम मिलते हैं। ग्रन्थों में इन मातृकाओं के लक्षणों का भी उल्लेख है। **देवीमाहात्म्य** में मातृकाओं की उत्पत्ति से संबंधित कथा भी मिलती है। विभिन्न देवताओं की शक्तियां होने के कारण मातृकाओं के साथ संबंधित देवताओं के आयुधों तथा वाहनों को दिखाया गया। ये मातृकाएं मुख्यतः विष्णु, शिव, ब्रह्मा, गणेश तथा कार्त्तिकेय से संबंधित हैं। सामान्यतया चामुण्डा को छोड़कर अन्य सभी मातृकायें सौम्य - स्वरूपा हैं और उनकी गोद में बालक का निरूपण भी मिलता है जो उनकी मातृशक्ति का सूचक है। चामुण्डा के कंकाल और रौद्र - स्वरूपा होने के कारण ही उनके साथ बालक का अंकन नहीं मिलता है। मध्यकाल में मातृकाओं की पूजा अधिकांशतः शक्ति रूप में ही देखने को मिलती है। फलस्वरूप पूर्ववर्ती मूर्तियों के समान उनकी गोद में शिशु का प्रदर्शन नहीं हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मातृकाओं के लक्षणों का सर्वप्रथम उल्लेख देवीमाहात्म्य (८.१४-२१) में मिलता है। अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजा मातृका समूह में चामुण्डा, वाराही, ऐन्द्री, कौमारी, ब्रह्माणी, वैष्णवी और माहेश्वरी का निरूपण हुआ है। रूपमंडन (५.६७-७५) में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी तथा चामुण्डा का उल्लेख है। अपराजितपृच्छा में प्रेतवाहना, क्रूरस्वरूपा चामुण्डा को कपालमाला, नरमुण्ड, खट्वांग और शूल; शूकरमुखी वाराही को महिषारूढ़, अक्षपात्र, खड्ग, घंटा और कमण्डलु; गजवाहना ऐन्द्री को अक्षसूत्र, दण्ड, पाश, और कमण्डलु; मयूरवाहना षण्मुखी कौमारी को अक्षसूत्र, शक्ति, ताम्रचूडा और कमण्डलु; हंसवाहना ब्रह्माणी को अक्षसूत्र, स्रच (स्रुक), पुस्तक और कमण्डलु, गरुडवाहना वैष्णवी को गदा, चक्र, शंख और पद्म तथा वृषभारूढ़ा माहेश्वरी को अक्षसूत्र, खड्ग, खट्वांग और मातुलिंग से युक्त बताया गया है (२२३.१२-२१)।

काशी से मातृकाओं की केवल कुछ ही स्वतंत्र आकृतियां प्राप्त हुई हैं। इनके सामूहिक अंकन का उदाहरण नहीं मिला है। कालक्रम की दृष्टि से मातृका मूर्तियों के उदाहरण ८ वीं - ९ वीं शती ई. से २० वीं शती ई. के हैं। ये उदाहरण ड्योढ़ियावीर मंदिर (ड्योढ़ियावीर), कामाक्ष्या मंदिर (कमच्छा), शिव मंदिर (मणिकर्णिका), समराजेश्वर मंदिर (ललिताघाट) तथा देवकुलिका (केदारघाट) से प्राप्त हुए हैं। इन मंदिरों से चामुण्डा, वाराही, ऐन्द्री, शिवा और वैष्णवी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ड्योढ़ियावीर मंदिर से आठवीं - नवीं शती ई. की चामुण्डा, वाराही एवं ऐन्द्री की मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां पर्याप्त खंडित हैं, किन्तु आकृतियों में नृत्य की आकर्षक मुद्रायें स्पष्ट हैं। द्वादशभुजी चामुण्डा के एक हाथ में केवल खड्ग ही शेष है। कृशोदरी और कंकाल-स्वरूपा चामुण्डा का पेट धंसा हुआ है। उनके चारों ओर कपालधारी नृत्यरत आकृतियां उत्कीर्ण हैं। वाराही की आकृति आसीन है जिसके हाथ एवं मस्तक खंडित हैं। परिकर में हाथ जोड़े पूजक एवं मालाधर आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। ऐन्द्री की चतुर्भुजी आकृति भी चामुण्डा के समान नृत्यरत है। देवी के समीप ही गज -वाहन उत्कीर्ण है। चामुण्डा की एक आकृति केदारघाट की देवकुलिका में है। रौद्र -स्वरूपा देवी किसी पशु वाहन पर आरूढ़ हैं जिसके पार्श्व में कोई आकृति बनी है। चामुण्डा की एक आकृति समराजेश्वर मंदिर पर उत्तर की ओर उत्कीर्ण है। यहां चामुण्डा अष्टभुजी हैं और नीचे वाहन के रूप में शव (?) है।

वैष्णवी की आकृति दुर्गा मंदिर (मणिकर्णिका) से प्राप्त हुई है जिसमें देवी को समभंग में पद्म, चक्र, शंख तथा जलपात्र से युक्त दिखाया गया है। मूर्ति के साथ सिंह का अंकन परंपरासम्मत नहीं है। शिवा की एक आकृति कामाक्ष्या मंदिर से मिली है जिसमें देवी सिंह पर आसीन हैं। प्रस्तुत उदाहरण में बालक मातृका के पार्श्व में उत्कीर्ण है। मातृका के तीन हाथों में फल, त्रिशूल तथा दर्पण हैं। देवी का एक हाथ बालक की पीठ पर स्थित है। मातृका के मस्तक पर भारी गोल जूड़ा है।

समराजेश्वर मंदिर पर काष्ठ निर्मित सप्तमातृकाओं की आकृतियां हैं। सभी मातृकाओं के निरूपण में अनिवार्यतः त्रिशूल का अंकन शैव प्रभाव दरशाता है। इनमें वैष्णवी की युद्धरत एवं शान्तमुद्रा में दो आकृतियां बनी हैं। दोनों में वाहन गरुड है। युद्धरत देवी के हाथों में त्रिशूल (प्रहार की मुद्रा में), चक्र और गदा हैं। एक हाथ से देवी असुर का केश पकड़े हैं। देवी के आभूषणों में कपाल का अंकन उल्लेखनीय है। खड्ग और खेटकधारी असुर देवी से युद्धरत दिखाया गया है। शान्तमुद्रा वाली वैष्णवी अष्टभुजी हैं। उनके करों में पात्र, त्रिशूल, चक्र, खड्ग, खेटक, गदा, नरमुण्ड और व्याख्यानमुद्रा प्रदर्शित हैं। समराजेश्वर मंदिर की मूर्तियां शैव तथा तांत्रिक प्रभाव वाली हैं। इस मंदिर पर वाराही की भी दो आकृतियां हैं। शांत और रौद्र - स्वरूपा देवी के साथ वाहन महिष है। युद्धरत देवी के हाथों में क्रमशः त्रिशूल, अंकुश, मत्स्य और असुर का केश देखा जा सकता है। देवी के कपाल युक्त मुकुट से ज्वाला निकल रही है। वैष्णवी के समान यहां भी देवी को युद्धरत दिखाया गया है। महिष पर आरूढ़ शान्त - स्वरूपा वाराही की दूसरी मूर्ति में देवी अष्टभुजी हैं। उनके हाथों में क्रमशः पाश, त्रिशूल, गदा, खड्ग, खेटक, अंकुश और नरमुण्ड हैं। एक हाथ व्याख्यानमुद्रा में है। मंदिर की पश्चिमी भित्ति पर इन्द्राणी की युद्धरत एवं शान्त स्वरूपों वाली दो मूर्तियां उकेरी हैं। गजमस्तक पर पैर रक्खे युद्धरत चतुर्भुजी देवी के तीन हाथों में त्रिशूल, वज्र एवं पद्म हैं जबकि चौथे हाथ से देवी असुर का केश पकड़े हैं। देवी यहां भी असुर से युद्धरत हैं। शांत मूर्ति में अष्टभुजी देवी गजपीठ पर आसीन हैं और उनके करों में क्रमशः पात्र, त्रिशूल, वज्र, खड्ग, खेटक, पाश तथा व्याख्यानमुद्रा हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उत्तरी भित्ति पर चामुण्डा की पर्याप्त खण्डित चतुर्भुजी मूर्ति है। भयंकर - दर्शना देवी कृशोदरी हैं। चामुण्डा की रथ पर आरूढ़ मूर्ति भी मिली है। चामुण्डा के हाथों में क्रमशः पात्र, त्रिशूल, डमरू, खड्ग, खेटक, खट्वांग, नरमुण्ड तथा व्याख्यानमुद्रा हैं। देवी का मुकुट कपाल युक्त है तथा उनके गले में कपाल - माला है। मंदिर की पूर्वी भित्ति पर शान्त और युद्धरत ब्रह्माणी की दो मूर्तियां हैं। युद्धरत देवी के आसन पर हंस वाहन बना है। उनके तीन हाथों में त्रिशूल, अक्षमाला और पुस्तक तथा एक हाथ में असुर के केश हैं। दूसरे उदाहरण में हंस पर आसीन देवी अष्टभुजी हैं। उनके करों में क्रमशः पात्र, त्रिशूल, दण्ड, खड्ग, खेटक, पाश तथा व्याख्यानमुद्रा हैं। पूर्वी भित्ति पर ही शान्त और युद्धरत माहेश्वरी की भी दो आकृतियां बनी हैं। युद्धरत देवी के हाथों में त्रिशूल, अक्षमाला, त्रिशूल और असुर के केश हैं। देवी के साथ असुर युद्धरत है। माहेश्वरी की शान्त मूर्ति वृषभ पर बैठी है और देवी के हाथों में पात्र, त्रिशूल, डमरू, खड्ग, खेटक, पाश तथा व्याख्यान - मुद्रा हैं। कौमारी मयूर - वाहना हैं। कौमारी की भी शान्त और युद्धरत दो आकृतियां हैं। युद्धरत देवी के हाथों में त्रिशूल, अक्षमाला, वज्र तथा राक्षस के केश हैं। यहां असुर की आहत आकृति लेटी है। शान्त मूर्ति में देवी के हाथों में पात्र, त्रिशूल, डमरू, खड्ग, खेटक, खट्वांग, नरमुण्ड तथा व्याख्यानमुद्रा हैं।

सरस्वती

सरस्वती विद्या, बुद्धि और संगीत की अधिष्ठात्री देवी हैं। सरस्वती को वाक्देवी, वागीश्वरी, शारदा, भारती आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। पौराणिक कथाओं में सरस्वती का उल्लेख ब्रह्मा, विष्णु और गणेश की शक्तियों के रूप में हुआ है। बौद्ध एवं जैन धर्मों में भी विद्या और बुद्धि की देवी के रूप में सरस्वती लोकप्रिय रही हैं। सरस्वती के करों में सामान्यतः अक्षमाला, पुस्तक और कमण्डलु दिखाया गया है। संगीत की देवी के रूप में कल्पित किये जाने के बाद सरस्वती के हाथ में वीणा और वाहन के रूप में मयूर का अंकन प्रारंभ हुआ। अपराजितपृच्छा (२३०.१४) में सरस्वती के करों में अक्षमाला, वीणा, पुस्तक और कमण्डलु का उल्लेख मिलता है।

काशी से सरस्वती की मूर्तियों के कुछ उदाहरण मोक्षेश्वर मंदिर (अवड़े ग्राम), दुर्गा मंदिर (मणिकर्णिका), मंगलागौरी मंदिर (सिन्धियाघाट), दुर्गा मंदिर (रामनगर), कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा) तथा हनुमान मंदिर (जंगमबाड़ी) से प्राप्त हुए हैं। प्रायः सभी उदाहरणों में सरस्वती को वीणा अथवा पुस्तक के साथ दिखाया गया है। ११ वीं - १२ वीं शती ई. की मोक्षेश्वर मंदिर की मूर्ति में चतुर्भुजा देवी आसीन हैं। पर्याप्त खंडित होने के कारण मूर्ति के विवरण स्पष्ट नहीं है। रामनगर के दुर्गा मंदिर से १८ वीं शती ई. की सरस्वती की मूर्ति मिली है। यह आकृति मंदिर के प्रवेशद्वार के ऊपर की भित्ति पर गंगा और यमुना की आकृतियों के साथ उत्कीर्ण है (चित्र ४३)। प्रस्तुत उदाहरण में हंस पर आरूढ़ सरस्वती को अक्षमाला, वीणा तथा जलपात्र से युक्त दिखाया गया है। अमेठी शिव मंदिर (१९ वीं शती ई., मणिकर्णिका) के उदाहरण में वीणाधारिणी सरस्वती मयूर - वाहना हैं। मंगलागौरी मंदिर की मूर्ति (१९ वीं शती ई.) में समभंग में खड़ी देवी वरद - मुद्रा, पदम, पद्म और पुस्तक से युक्त हैं। कपिलेश्वर मंदिर की मूर्ति पर्याप्त खंडित है। नन्देश्वरघाट के १८वीं - १९ वीं शती ई. के सरस्वती मूर्ति के एक उदाहरण में देवी के दो हाथों में वीणा और अन्य दो में पद्म और पुस्तक हैं। हनुमान मंदिर की मूर्ति पर्याप्त खंडित है किन्तु सरस्वती के दो हाथों में वीणा और एक में पद्म स्पष्ट हैं।

गंगा - यमुना

पावन नदियों के रूप में गंगा और यमुना के कृषि कार्यों में महत्व के कारण ही उनका दैवीकरण किया गया। इन्हें क्रमशः पवित्रता और भक्ति का मानवीकृत रूप भी माना गया। सामान्यतः गंगा - यमुना की आकृतियां मंदिरों के प्रवेशद्वारों पर उत्कीर्ण की गयीं जिनके उदाहरण गुप्तकाल (देवगढ़ का दशावतार मंदिर) से मध्यकाल के मध्य के सभी क्षेत्रों के मंदिरों में देखे जा सकते हैं। प्रवेशद्वारों पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की स्थानक मूर्तियां जैन मंदिरों पर भी उत्कीर्ण की गयीं। सामान्यतः इनके मस्तक पर छत्र और हाथों में कलश या पद्म दिखाया गया है। मंदिरों के अतिरिक्त गंगा - यमुना की स्वतंत्र मूर्तियों (अहिच्छत्रा - उ. प्र. की आदमकद मृण्मूर्तियां) के उदाहरण भी मिलते हैं।

काशी में विश्वनाथ के बाद गंगा का ही महत्व है। उत्तरवाहिनी गंगा के किनारे घाटों की मीलों लंबी श्रृंखला काशी की सांस्कृतिक चेतना और उसमें समूचे भारतवर्ष की उपस्थिति का प्रतीक है। काशी से गंगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की मूर्तियों के अनेक उदाहरण मिले हैं जिनमें पांच उदाहरण मुख्य हैं। १३ वीं से २० वीं शती ई. के इन उदाहरणों में गंगा मकरवाहिनी हैं। ये उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर (ग्राम कंदवा), दुर्गा मंदिर (रामनगर, चित्र ४३), लक्ष्मी - नारायण मंदिर (भोंसलाघाट), हनुमान मंदिर (राजमंदिर), बिन्दुमाधव मंदिर (पंचगंगाघाट) और शिव मंदिर (राजातालाब) से प्राप्त हुए हैं। प्रायः सभी आकृतियों में गंगा के दो हाथों में पद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। किन्तु कुछ में अक्षमाला अथवा वरद या अभयमुद्रा भी द्रष्टव्य है। ये आकृतियां आसन और स्थानक दोनों रूपों में हैं। कर्दमेश्वर मंदिर के प्रवेशद्वार की १३वीं शती ई. की गंगा की मूर्ति में (त्रिभंग में) एक हाथ में चक्राकार - पद्म है।

यमुना की तीन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो क्रमशः मानमंदिरघाट की सीढ़ियों के ऊपर (एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर), कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा) तथा दुर्गा मंदिर (रामनगर) से मिली हैं। मानमंदिरघाट की मूर्ति में कूर्मवाहना देवी के साथ छत्रधारी एवं पार्श्व में एक दण्डधारी आकृतियां खड़ी है। कर्दमेश्वर मंदिर की मूर्ति गर्भगृह के प्रवेशद्वार पर उत्कीर्ण है। त्रिभंग में खड़ी देवी के एक हाथ में चक्राकार - पद्म है। उल्लेखनीय है कि कर्दमेश्वर मंदिर की गंगा और यमुना आकृतियों में उनके वाहन मकर और कूर्म का अंकन नहीं हुआ है। दुर्गा मंदिर (रामनगर) की आकृति मंदिर के प्रवेश-द्वार के ऊपर गंगा और सरस्वती आकृतियों के साथ उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में यमुना को कूर्म पर बैठे दिखाया गया है (चित्र ४३)।

अन्नपूर्णा

ऐसी मान्यता है कि शिव के आग्रह पर अन्नपूर्णा ने काशी में अपना स्थायी निवास बनाया, इसीलिए काशी को अन्नपूर्णा क्षेत्र भी कहा जाता है। वस्तुतः अन्नपूर्णा सम्पूर्ण जगत को अन्न या भोजन प्रदान करने वाली मातृ - स्वरूपा देवी हैं। दर्वी, धान की बाली और अन्नपात्र - धारिणी अन्नपूर्णा की पूजा और मूर्तियां काशी की धार्मिक और कला परम्परा का वैशिष्ट्य है। १८ वीं - १९ वीं शती ई. के मंदिरों में पार्वती के अतिरिक्त अन्नपूर्णा का भी अनकेशः अंकन हुआ है। ये आकृतियां मुख्यरूप से पंचदेव स्वरूपों के अन्तर्गत बनीं। अन्नपूर्णा की मूर्तियां चिन्ताहरण गणेश मंदिर (आदिकेशवघाट), शिव मंदिर (टेढ़ीनीम), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली), अन्नपूर्णा मंदिर (राजमंदिर), शिव मंदिर (नई सड़क) तथा कई अन्य मंदिरों से प्राप्त हुई हैं। प्रायः सभी उदाहरणों में पद्मासीन अन्नपूर्णा को द्विभुजा और हाथों में दर्वी (काष्ठ चम्मच) तथा अन्नपात्र या जलपात्र लिये निरूपित किया गया है। कुछ उदाहरणों में अन्नपूर्णा का अंकन नमस्कारमुद्रा में भी हुआ है और उनके एक हाथ में धान की बाली भी प्रदर्शित है। प्रायः सभी उदाहरणों में अन्नपूर्णा पात्र से अन्न निकालती दिखायी गयी हैं। चिन्ताहरण गणेश मंदिर के उदाहरण में पात्र के ऊपर अन्न के दानें भी रखे हैं। अधिकांश उदाहरणों में अन्नपूर्णा की नाक में लंबी वृत्ताकार नथ दिखायी गयी है जिसका प्रचलन उत्तर मध्यकाल में मिलता है। काशी में अन्नपूर्णा के १९ वीं - २०वीं शती के तीन प्रमुख मंदिर भी हैं जो क्रमशः विश्वनाथगली, आनन्दमयीघाट तथा राजाघाट पर हैं। इन मंदिरों के गर्भगृह की अन्नपूर्णा मूर्तियों में द्विभुजा देवी को नवधू के रूप में नाक में नथ एवं अन्य आभूषणों से शोभित दिखाया गया है। आज भी विवाह के तत्काल बाद नववधू के रसोई बनाने के मूल में अन्नपूर्णा की परिकल्पना व्यवहार में है। पद्मासीन देवियों के करों में धान की बाली और अन्नपात्र या धान की बाली और शिवलिंग प्रदर्शित हैं। नववधू की नथ को आज भी सौभाग्य का सूचक माना जाता है।

काली

काशी में काली की केवल कुछ ही मूर्तियां मिली हैं जो शीतला मंदिर (दशाश्वमेधघाट), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली), शवशिवा - काली मंदिर (देवनाथपुरा), त्रिलोचन महादेव मंदिर (मत्स्योदरी) तथा काली मंदिर (मणिकर्णिकाघाट) में देखी जा सकती हैं। इन उदाहरणों में उग्र - स्वरूपा काली को शव पर खड़ी और गले में लम्बा मुण्डमाल धारण किये दिखाया गया है। शीतला मंदिर के उदाहरण में काली के पैरों के समीप सर्प के साथ शिव को भूमि पर पड़ा दिखाया गया है। रामेश्वर मंदिर के उदाहरण में काली के हाथों में छुरिका और त्रिशूल स्पष्ट हैं। त्रिलोचन महादेव मंदिर के उदाहरण में चतुर्भुजा - काली के हाथों में वरद तथा अभयमुद्रा, खड्ग और शिरस् स्पष्ट हैं। काली मंदिर की मूर्ति में देवी का पैर शिव के मस्तक पर रखा है और हाथों में त्रिशूल, पात्र तथा खट्वांग प्रदर्शित हैं। शवशिवा - काली मंदिर की मूर्ति में काली का अंकन शिवलिंग के एक ओर हुआ है। देवी को शवशिवा - काली के नाम से संबोधित किया जाता है। शव पर आरूढ़ रौद्र-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वरूपा देवी चतुर्भुजी हैं। उनके एक हाथ में खड्ग स्पष्ट है, किन्तु अन्य हाथों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं।

शीतला

रोग निवारक देवी के रूप में शीतला का उल्लेख मिलता है। **शीतला -अष्टक** में गर्दभ - वाहना शीतला के करों में शूर्प, मार्जनी एवं कलश का उल्लेख मिलता है। शीतला मूर्ति के उदाहरण शीतला मंदिर (भैरवनाथ एवं राजमंदिर) तथा महामाया मंदिर (दुर्गा मंदिर परिसर, दुर्गाकुण्ड) से प्राप्त हुये हैं। प्रायः सभी उदाहरणों में परम्परानुरूप चतुर्भुजी शीतला को गर्दभ·पर आरूढ़ दिखाया गया है। भैरवनाथ के शीतला मंदिर की मूर्ति (१३ वीं शती ई.) में गर्दभवाहना - शीतला के हाथों में पद्म और कलश स्पष्ट हैं। राजमंदिर के उदाहरण में भयंकरदर्शना - शीतला का मुख खुला और जीभ बाहर की ओर निकली हुई है। गर्दभ वाहन के साथ समभंग में खड़ी देवी के दो हाथों में पद्म तथा एक में जलपात्र हैं। महामाया मंदिर की चतुर्भुजा मूर्ति में गर्दभवाहना देवी के करों में अभयमुद्रा, कटार, मार्जनी और जलपात्र प्रदर्शित हैं। काशी की शीतला मूर्तियों में केवल गर्दभवाहन, कलश और कुछ में मार्जनी के अंकन में ही परंपरा का पालन हुआ है। देवी के साथ पद्म का अंकन स्थानीय विशेषता रही है। १६ वीं शती ई. की गर्दभारूढ़ा और दो हाथों में शूर्प तथा एक में मार्जनीधारिणी देवी की एक मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी में भी द्रष्टव्य है।

ऊपर वर्णित देवियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं जिन्हें देवी आकृतियों के अन्तर्गत ही रखा जा सकता है। ऐसी मूर्तियां शिव - मंदिर (राजमंदिर), नन्देश्वर महादेव मंदिर (त्रिलोचनघाट), शीतला मंदिर (प्रहलादघाट) एवं शिव मंदिर (अस्सी एवं दुर्गाकुण्ड) से प्राप्त हुई हैं। ये मूर्तियां ११ वीं - १२ वीं शती ई. से २० वीं शती ई. के मध्य की हैं। इनमें प्रायः सर्वाभूषित चतुर्भुजी देवियों को पद्म, खड्ग तथा त्रिशूल से युक्त दिखाया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सप्तम अध्याय

अन्य ब्राह्मण देव मूर्तियां

ब्रह्मा

ब्रह्मा की गणना ब्राह्मण धर्म के त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, शिव) में की गयी है और उन्हें सृष्टि के रचना-कार्य (सृष्टिकर्ता) से संबंधित किया गया है। त्रिदेवों में एक होने के बाद भी ब्रह्मा को कभी विष्णु और शिव के समान लोकप्रियता नहीं मिली और न ही उनके उपासकों का स्वतंत्र संप्रदाय विकसित हुआ। वैदिक साहित्य में ब्रह्मा के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं जो उनकी लोकप्रियता के साक्षी हैं। पुराणों के समय तक ब्रह्मा की लोकप्रियता में कमी आ गई जिसका मुख्य कारण परवर्ती ग्रन्थों में विष्णु और शिव का ब्रह्मा से श्रेष्ठ निरूपित किया जाना और ब्रह्मा के साथ कुछ दुर्बलताओं का जोड़ा जाना था। पुराणों के समय तक वैदिक प्रजापति का स्थान विष्णु ने ले लिया। फलस्वरूप ब्रह्मा के मत्स्य, वराह और कूर्म -अवतार (शतपथ ब्राह्मण) विष्णु के अवतार मान लिये गये और सृष्टिकर्ता ब्रह्मा को विष्णु के शेषशायी स्वरूप में स्वयं विष्णु के नाभि- पद्म से उत्पन्न बताया गया (देवगढ़ के दशावतार मंदिर की शेषशायी विष्णु मूर्ति)। ब्रह्मा को स्वयंभू, हिरण्यगर्भ, सृष्टा, पितामह, धाता, विधाता, विश्वकर्मन्, प्रजापति, विरंचि, कमलासन, चतुरानन आदि नामों से भी जाना जाता है। स्वयंभू शब्द ब्रह्मा के स्वयं उद्भूत होने का द्योतक है। ब्राह्मण धर्म के साथ - साथ जैन और बौद्ध धर्मों में भी ब्रह्मा को स्थान प्राप्त हुआ। बौद्ध धर्म में बुद्ध के जन्म की कथा के प्रसंग में ब्रह्मा की उपस्थिति साहित्य एवं शिल्प दोनों से ज्ञात है। जैन परम्परा में तीर्थंकर शीतलनाथ के यक्ष और नवें दिक्पाल (आकाशलोक) के रूप में ब्रह्मा निरूपित किये गये हैं। जैन परंपरा में ब्रह्मशांति यक्ष के रूप में भी ब्रह्मा को दिखाया गया है।

पूर्व मध्यकाल में ब्रह्मा के कुछ मंदिरों का भी निर्माण हुआ, यद्यपि अन्य ब्राह्मण देवों की तुलना में ब्रह्मा के मंदिर नगण्य हैं। वर्तमान में अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा का महत्वपूर्ण मंदिर है। विभिन्न शिल्पशास्त्रों में ब्रह्मा की मूर्ति का विस्तृत निरूपण मिलता है, जिनमें **बृहत्संहिता** प्रारंभिकतम है जिसमें चतुर्मुख (मूर्तियों में सम्मुख दर्शन में केवल तीन ही मुख उत्कीर्ण हैं) एवं द्विभुज ब्रह्मा का ध्यान किया गया है।[१] इसी प्रकार **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** (६३ . १ - २) **अपराजितपृच्छा**[२] और **रूपमण्डन**[३] में भी ब्रह्मा के चतुर्मुख तथा चतुर्भुज स्वरूप का ध्यान है और उनके करों में अक्षसूत्र, स्रुक, पुस्तक और कमण्डलु (या अभय या वरदमुद्रा) दिखाने का विधान किया गया है। ब्रह्मा के चार मुखों को चार दिशाओं और वेदों का सूचक माना गया है। ब्रह्मा बुद्धि और ज्ञान के देवता हैं। इसी कारण उनका वाहन हंस है। ब्रह्मा की मूर्तियों को मुख्यतः तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ब्रह्मा की पद्म और दूसरे में हंस - वाहन वाली मूर्तियां आती हैं। तीसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें ब्रह्मा अपनी शक्तियों सावित्री और सरस्वती के साथ निरूपित हैं।

काशी में उपर्युक्त तीनों ही वर्गों की मूर्तियों के उदाहरण प्राप्त हुए हैं जिनमें से कुछ उदाहरणों में उन्हें

१- ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पङ्कजासनस्थश्च।
बृहत्संहिता ५७.४१

२- ऋग्वेदादिविभेदेन कृतादियुगभेदतः। विप्रादिवर्णभेदेन चतुर्वक्त्रश्च चतुर्भुजम्॥
कमण्डलुश्चाक्षसूत्रं श्रुवाश्च पुस्तकं तथा। पितामहस्य मूर्तिः स्यात् त्रेतायां सुखदायिनी॥
अपराजितपृच्छा २१४. १.६

३- दक्षिणाधः करात सृष्टया जयमालां तथा श्रुतम् (श्रुचम्)।
पुस्तं कमण्डलुं धत्ते सकूर्चः कमलासनः॥
रूपमण्डन २.७

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्मश्रु -रहित और कुछ में श्मश्रु -सहित दिखाया गया है। बृहत्संहिता में ब्रह्मा के साथ श्मश्रु का उल्लेख नहीं हुआ हैं। तद्नुरूप ब्रह्मा की श्मश्रु -रहित मूर्तियां कुषाण - गुप्तकाल में बनीं। किन्तु मध्यकाल में श्मश्रु-युक्त एवं श्मश्रु - रहित दोनों ही प्रकार की मूर्तियों के उदाहरण मिलते हैं। लिंगपुराण (कृत्यकल्पतरु, पृ०११६) में विश्वेश्वर के दक्षिण में विधि अर्थात ब्रह्मा का स्थान बताया गया है। काशी से प्राप्त ब्रह्मा मूर्तियों के प्रारंभिकतम उदाहरण नवीं - दसवीं शती ई. के हैं। काशी में ब्रह्मा मूर्तियों के निर्माण की परम्परा १६ वीं - २० वीं शती ई. तक दिखाई देती है। ये मूर्तियां विश्वनाथ मंदिर (विश्वनाथगली) के परकोटे में पीछे की ओर, ब्रह्मा मंदिर (ब्रह्माघाट), केदारेश्वर मंदिर (केदारघाट), कर्दमेश्वर मंदिर (कंदवा), अष्टांग - भैरव (सूरजकुण्ड) एवं दुर्गा मंदिर (रामनगर) से प्राप्त हुई हैं। मंदिरों के अतिरिक्त नगर में भी विभिन्न स्थलों से ब्रह्मा की मूर्तियां मिली हैं जिसका एक उदाहरण (१२ वीं शती ई.) भारत कला भवन में है।

नवीं - दसवीं शती ई. की विश्वनाथ मंदिर के परकोटे से प्राप्त त्रिमुख ब्रह्मा की मूर्ति में शरीर -रचना स्थूलकाय है। मूर्ति के हाथ और पैर खंडित हैं किन्तु शरीर - रचना, जटाजूट और योगमुद्रा से उसका ब्रह्मा मूर्ति होना निर्विवाद है। ब्रह्मा के तीनों मस्तक पर जटाजूट का सुंदर अंकन हुआ है। १२ वीं शती ई. की ब्रह्माघाट से प्राप्त मूर्ति में त्रिमुख और चतुर्भुज ब्रह्मा ललितमुद्रा में आसीन हैं। घटोदर ब्रह्मा के करों में अभयमुद्रा, पद्म (?), स्रुक एवं जलपात्र हैं। मध्यमुख लम्बी दाढ़ी तथा मूंछों से युक्त है। ब्रह्मा के मस्तक पर जटा - मुकुट तथा शरीर पर अन्य आभूषण एवं यज्ञोपवीत सुशोभित हैं। आसन के समीप ही हंस - वाहन की सुन्दर आकृति बनी है। पार्श्व में स्त्री आकृतियों का अंकन हुआ है जिनके विवरण अस्पष्ट हैं। नीचे की ओर हाथ जोड़े स्त्री और पुरुष उपासकों की आकृतियां बनी हैं। प्रस्तुत प्रतिमा से मिलती - जुलती प्रतिमा अष्टांग भैरव मंदिर (सूरजकुण्ड) से प्राप्त हुई है जिसमें पद्मासीन ब्रह्मा शक्तिसहित आलिंगनमुद्रा में दिखाये गये हैं। ब्रह्मा के बायीं जांघ पर उनकी शक्ति विराजमान हैं। श्मश्रु एवं मूछों से युक्त चतुर्भुज ब्रह्मा के मस्तक पर जटामुकुट प्रदर्शित है। ललितासीन ब्रह्मा का दाहिना पैर हंस पर स्थित है। हाथ के आयुधों में केवल अक्षमाला तथा कमण्डलु स्पष्ट हैं जबकि एक हाथ आलिंगन - मुद्रा में है। मूर्ति के घिसी होने के कारण अन्य विवरण अस्पष्ट हैं। कालक्रम की दृष्टि से मूर्ति १२ वीं शती ई. की जान पड़ती है। प्रस्तुत मूर्ति से मिलती -जुलती सूरजकुण्ड से प्राप्त दूसरी मूर्ति वर्तमान में भारत कला भवन, वाराणसी में सुरक्षित है।

कंदवा के कर्दमेश्वर मंदिर के उदाहरण (१३ वीं शती ई.) में अन्य उदाहरणों से अलग हटकर ब्रह्मा की स्थानक मूर्ति बनाई गई है। प्रस्तुत मूर्ति मंदिर की पश्चिमी भित्ति (बाह्य) पर उकेरी है। समभंग में खड़े चतुर्भुज ब्रह्मा के हाथों में वरदाक्ष, स्रुक, पुस्तक और जलपात्र हैं। त्रिमुख ब्रह्मा का केवल एक मुख ही श्मश्रु - युक्त है। घटोदर ब्रह्मा के मस्तक पर जटा - जूट तथा परवर्ती शैली का त्रिकोणाकार मुकुट है। शरीर पर अन्य आभूषण भी दिखाये गये हैं। नीचे ब्रह्मा के पार्श्वों में हाथ जोड़े पूजकों की आकृतियां बनी हैं। इन आकृतियों के समीप ही दो स्त्री आकृतियां भी देखी जा सकती हैं। दाहिने पार्श्व की नारी आकृति के दाहिने हाथ में स्रुक स्पष्ट है। बायीं ओर की स्त्री आकृति के समीप हंस आकृति बनी है। ये ब्रह्मा की शक्तियां सावित्री और सरस्वती की आकृतियां हैं। ब्रह्मा के आसन के नीचे उनका हंस - वाहन उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में श्मश्रु के साथ मूछों का अंकन नहीं हुआ है। केदारेश्वर मंदिर की एक देवकुलिका में भी ब्रह्मा की एकमुखी और चतुर्भुज पद्मासीन मूर्ति (१२ वीं शती ई.) है। ब्रह्मा के करों में वरदाक्ष, स्रुक, पद्म (?) एवं जलपात्र हैं। मूर्ति पर्याप्त ऋतुक्षरित है। पृथुल शरीर वाले ब्रह्मा के मुख पर लम्बी दाढ़ी भी है। ब्रह्मा की एक मूर्ति रामनगर के दुर्गा मंदिर (१८वीं शती ई.) के मण्डोवर पर उकेरी है। पूर्वी भित्ति की प्रस्तुत मूर्ति में ब्रह्मा चतुर्मुख और चतुर्भुज हैं। कमल पर ध्यानमुद्रा में आसीन ब्रह्मा के केवल तीन करों में पुस्तक, स्रुक तथा जलपात्र स्पष्ट हैं।

मंदिरों से प्राप्त उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त नगर के विभिन्न स्थलों से भी ब्रह्मा की मूर्तियों के कुछ उदाहरण प्राप्त हुए हैं। इनमें से एक उदाहरण चौखण्डी सड़क के किनारे एक नये मंदिर के प्रवेशद्वार के उत्तरंग पर है जिसमें ब्रह्मा की आसीन आकृति के पार्श्वों में दो स्त्री आकृतियां उत्कीर्ण हैं। बनावट के आधार पर मूर्ति १२ वीं शती ई. की जान पड़ती है। दूसरा उदाहरण शीतलदास मठ, अस्सी में स्थित है जिसमें ब्रह्मा को त्रिमुख तथा आसीन दिखाया गया है। तीसरी मूर्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कमल पर खड़ी प्रतिमा है जो दशाश्वमेधघाट पर मण्डनजी के निवास पर उनके पूजन में है। चतुर्भुज ब्रह्मा के करों में क्रमशः अक्षमाला, स्रुक, स्रुवा तथा जलपात्र हैं। ब्रह्मा के पार्श्वों में स्त्री आकृतियां तथा उनके नीचे स्त्री एवं पुरुष उपासक आकृतियां हाथ जोड़े बैठी हैं। ब्रह्मा के चरणों के समीप उनका हंस -वाहन भी उत्कीर्ण है। मध्य मुख पर श्मश्रु एवं मूछें प्रदर्शित हैं तथा मस्तक पर जटामुकुट है। यज्ञोपवीत एवं धोती का प्रदर्शन सुन्दर है।

इस प्रकार काशी में ६ वीं - १० वीं शती ई. से १८ वीं शती ई. के मध्य की ब्रह्मा की पर्याप्त मूर्तियां मिली हैं, पर शिव और विष्णु मूर्तियों की तुलना में उनकी संख्या नगण्य है। १३ वीं शती के बाद ब्रह्मा की मूर्तियों की न्यूनता मध्यकाल में उनकी लोकप्रियता में आयी कमी का संकेत देती है।

सूर्य

सौर सम्प्रदाय में आदित्य और ग्रहपति के रूप में सूर्य की उपासना प्रारंभ से ही मिलती है। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में देवताओं की कल्पना के मूल में प्राकृतिक तत्वों के दैवीकरण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मनुष्य के लिए सूर्य की अनिवार्यता के कारण केवल भारत ही नहीं वरन् विश्व की अन्य सभी प्राचीन सभ्यताओं (मिस्र, यूनान, मेसोपोटामिया) में सूर्योपासना के प्रमाण प्राचीन काल से मिलते हैं। वैदिक साहित्य में सूर्योपासना एवं सूर्य के अनेक स्वरूपों के सन्दर्भ हैं। महाकाव्यों एवं पुराणों में सूर्य के नामों एवं स्वरूपों की और भी व्यापक चर्चा की गई है।

भारतीय कला में सूर्य को प्रतीक और मानव दोनों ही रूपों में निरूपित किया गया। सूर्य के लिए चक्र, पद्म और रश्मिमंडल जैसे प्रतीकों का अंकन आहत मुद्राओं (ल. छठी से तीसरी शती ई. पू.) पर देखा जा सकता है। दूसरी - पहली शती ई. पू. से सूर्य की मानव मूर्तियों के उदाहरण भी मिलने लगते हैं। ऐसे उदाहरणों में बोधगया, भाजा, लालाभगत और खण्डगिरि (अनन्त गुफा) के उदाहरण उल्लेखनीय हैं। कुषाणकाल में सूर्य - पूजा और प्रतिमा पर विदेशी प्रभाव (उपानह, चोलक, अव्यंग के रूप में) भी दिखाई देता है।[४] प्रारंभिक मूर्त उदाहरणों में सूर्य को एक चक्र और चार अश्वों वाले रथ पर ऊषा -प्रत्यूषा के साथ दिखाया गया है। मध्यकाल में सूर्य - पूजन की विशेष लोकप्रियता के कारण उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सूर्य के कई मंदिर भी बनें जिनमें ओसियां, कश्मीर (मार्तण्ड), खजुराहो (चित्रगुप्त), मोढेरा और कोणार्क के ८ वीं से १३ वीं शती ई. के मध्य के मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सूर्य प्रतिमा निर्माण के शास्त्रीय संदर्भ **बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तरपुराण** (६७.१७०), **विश्वकर्मा शिल्प, अपराजितपृच्छा** (२१४.११-१२) तथा **रूपमंडन** (२.१८-१६) आदि ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** के विस्तृत उल्लेख में कवचधारी - सूर्य को चतुर्भुज और उदीच्य - वेशधारी (विदेशी प्रभाव वाला) बताया गया है। ज्ञातव्य है कि अन्य सभी ग्रन्थों में सूर्य द्विभुज निरूपित हैं। इसी कारण मूर्तियों में सूर्य सर्वत्र द्विभुज हैं। केवल भुवनेश्वर की कुछ मूर्तियों में सूर्य चतुर्भुज हैं। काशी से प्राप्त १८ वीं - १६ वीं शती ई. की मूर्तियों में भी सूर्य चतुर्भुज दिखाये गये हैं। सप्ताश्वरथ पर अरुण सारथि और पार्श्वों में दण्ड - पिंगल और ऊषा - प्रत्यूषा से वेष्टित सूर्य के दो करों में सनाल - पद्म दिखाने का विधान है।

सूर्य प्रतिमाओं का क्रमिक विकास ई. पू. से प्रारंभ होकर मध्यकाल तक दिखाई देता है। मध्यकालीन सूर्य मूर्तियों को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। पहले वर्ग में साधारण रचना वाली मूर्तियां आती हैं जिनके परिकर में दो या तीन आकृतियां बनाई गयीं। दूसरे वर्ग में ऐसी आकृतियां आती हैं जिनमें पार्श्व देवताओं की संख्या में वृद्धि हुई और तीसरे वर्ग में पूर्ण विकसित कोटि के उदाहरण आते हैं जिनमें सूर्य के साथ सप्ताश्वरथ, अरुण सारथि, दण्ड - पिंगल, ऊषा- प्रत्यूषा के अतिरिक्त परिकर में नवग्रह, द्वादश - आदित्य, ६ ऋतुएं, गणेश एवं कार्त्तिकेय आदि की आकृतियां भी दिखायी गईं।

काशी से उपर्युक्त तीनों ही वर्गों की मूर्तियां मिली हैं जिनका निर्माण ११ वीं से १६ वीं शती के मध्य हुआ। अधिकांशतः सूर्य की आसीन प्रतिमाएं एक चक्र और सात अश्वों वाले रथ पर रश्मियुक्त चक्र के साथ बनाई गई हैं। ऐसे उदाहरणों में रथ को चलाते हुए सारथि अरुण का अंकन भी किया गया है। उल्लेखनीय है कि काशी में प्रतीकों के माध्यम से सूर्य - पूजा की एक लम्बी परम्परा मिलती है जिसका उल्लेख विभिन्न

४- टी० ए० गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खंड १, भाग २, पृ. ३००-३१६; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. ४२८-४५; वी० सी० श्रीवास्तव, सन वरशिप इन एन्शियण्ट इंडिया, इलाहाबाद, १९७२।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पुराणों में भी प्राप्त होता है। काशी में द्वादश - आदित्यों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है जो नगर के विभिन्न स्थानों पर स्थापित हैं।[५] काशी के द्वादश - आदित्यों के नाम निम्नलिखित हैं - १- अरुणादित्य, २- द्रौपदादित्य, ३- गंगादित्य, ४- केशवादित्य, ५- खखोलकादित्य, ६- लोलार्क, ७- मयूखादित्य, ८- सांबादित्य, ९- उत्तरार्क, १०- विमलादित्य, ११- वृद्धादित्य, १२- यमादित्य। इन द्वादश - आदित्यों को काशी का रक्षक बताया गया है। काशीखण्ड में आदित्यों की उत्पत्ति की विभिन्न कथाएं मिलती हैं। भारत के ज्ञात सूर्य मंदिरों में कहीं भी सूर्य - पूजा के संदर्भ प्रतीक रूप में नहीं प्राप्त होते। किन्तु काशी में आज भी सांबादित्य नाम से सूर्य मंदिर (१२वीं शती ई.) का उदाहरण नई सड़क के समीपस्थ सूर्यकुण्ड मुहल्ले में देखा जा सकता है। इसी प्रकार कुछ अन्य आदित्यों के उदाहरण भी विभिन्न मंदिरों से जुड़े हुए हैं।[६]

काशीखण्ड तथा अन्य ग्रन्थों में उल्लिखित द्वादश - आदित्यों के नामों तथा स्थानों के अतिरिक्त नगर के विभिन्न स्थलों से आदित्य मूर्तियों के उदाहरण (११ वीं - १५ वीं शती ई.) प्राप्त होते हैं। प्रतीकात्मक रूप में आदित्यों के अंकन पद्म (चित्र ३७), चक्र, रश्मियुक्त चक्र, चक्र एवं पद्म के संयुक्त स्वरूप, रश्मियुक्त वृत्तों आदि के रूप में मिलते हैं। कुछ उदाहरणों में रश्मि युक्त चक्र के मध्य सूर्य की मुखाकृति (१८वीं - १९ वीं शती ई.) भी उत्कीर्ण है। आदिकेशवघाट के चिंताहरण गणेश मंदिर से प्राप्त एक उदाहरण में रश्मियुक्त चक्र के मध्य चतुर्भुज सूर्य की आसीन मूर्ति (१८वीं शती ई.) भी बनाई गई है। प्रस्तुत उदाहरण में पूर्ण विकसित पद्म पर ध्यानमुद्रा में आसीन सूर्य के नीचे के दो हाथों में से एक वरदमुद्रा में है और दूसरा घुटने पर रखा है। सूर्य के ऊपर के दो हाथों में पद्म (कलिका रूप में) प्रदर्शित है। किरीटमुकुटधारी सूर्य विभिन्न आभूषणों से सज्जित हैं।

सूर्य के प्रतीकात्मक स्वरूपों के मुख्य उदाहरण कामेश्वर मंदिर (गायघाट), मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), आदिकेशव मंदिर एवं चिन्ताहरण गणेश मंदिर (आदिकेशवघाट), हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), शीतला मंदिर (प्रहलादघाट), सोरैया महादेव मंदिर (कालभैरव), हनुमानमंदिर (विश्वनाथगली) एवं शिव मंदिर (राजमंदिर) से प्राप्त हुए हैं। मंदिरों के अतिरिक्त ऐसे उदाहरण नगर के विभिन्न स्थलों पर यत्र - तत्र भी देखे जा सकते हैं। इसी स्वरूप से मिलते -जुलते दो उदाहरण सूर्य - यंत्र के भी मिले हैं। वर्तमान में ये सूर्य - यंत्र पचंगंगाघाट के तैलंगस्वामी मठ में सुरक्षित हैं। प्रस्तुत उदाहरण में एक शिलापट्ट पर यंत्र के मध्य भाग में नगर के अन्य स्थानों से प्राप्त आदित्य के उदाहरणों के समान सूर्य की तिलकधारी मुखाकृति उत्कीर्ण है (रेखाचित्र ७)। यंत्र में कुल पांच खाने बने हैं। प्रत्येक खाने में 'ॐ' लिखा हुआ है। प्रस्तुत सूर्य -यंत्र रश्मियुक्त वृत्त से युक्त है। दूसरे उदाहरण में कमल के मध्य यंत्र बना है (रेखाचित्र ८)।

एक चक्र तथा सात अश्वों वाले रथ पर सूर्य को रूपायित किये जाने का सन्दर्भ विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। काशी में एक चक्र तथा सात अश्वों वाले रथ पर सारथि अरुण के साथ आरूढ़ सूर्य की कई मूर्तियां मिली हैं जो काशी में इस रूप में सूर्य - पूजा की लोकप्रियता का प्रमाण हैं। इन उदाहरणों में ध्यानमुद्रा में रथ पर आसीन सूर्य के मस्तक या सम्पूर्ण शरीर को आवृत्त करता रश्मियुक्त सूर्य -चक्र बना है। सूर्य मूर्तियों के ऐसे उदाहरण नन्दीश्वर महादेव मंदिर (मत्स्योदरी), शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा - बी. ६/३१), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली), त्र्यम्बकेश्वर महादेव मंदिर, शिव मंदिर (टेढ़ीनीम), राजातालाब, अस्सी एवं मणिकर्णिकाघाट, गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी), शूलकण्टेश्वर महादेव मंदिर (दशाश्वमेध), मान्धातेश्वर मंदिर (चौक), पंचमेश्वर महादेव मंदिर (सूर्यकुण्ड), पंचायतन मंदिर (हनुमानघाट), शिव मंदिर (दुर्गाकुण्ड, बी. २७/९७) एवं आदित्यनगर (चित्र ४०), मंगलागौरी मंदिर (सिंधियाघाट), ब्रह्मचारिणी मंदिर (दुर्गाघाट) तथा दुर्गा मंदिर (रामनगर) से मिले हैं। सभी मंदिर प्रायः पंचायतन मंदिरों के उदाहरण हैं जिनमें सूर्य को सौर सम्प्रदाय के प्रमुख देवता के रूप में शक्ति, विष्णु और गणेश की आकृतियों के समान मंदिर की भीतरी भित्ति पर आमूर्तित किया गया है। रामनगर के दुर्गा मंदिर के उदाहरण को छोड़कर प्रायः सभी उदाहरणों में सम्मुख दर्शन वाले सूर्य चतुर्भुज हैं। चतुर्भुज सूर्य के दो करों में शास्त्रीय निर्देशों के अनुरूप पद्म का प्रदर्शन हुआ है। कुछ उदाहरणों में सूर्य के करों में विष्णु के आयुध - पद्म, गदा, चक्र, शंख भी

५- कमल गिरि, 'काशी में द्वादश आदित्य', उत्तर - प्रदेश (काशी अंक), खंड १०-११, १९८३, पृ. ६०-६३।
६- कमल गिरि, पूर्व निर्दिष्ट।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दिखाये गये हैं जो वैदिक परम्परा में आदित्य रूप में विष्णु की सूर्य से अभिन्नता के भाव को मूर्तिमान करते हैं। इनके अतिरिक्त उनके करों में वरदाक्ष अथवा वरदमुद्रा, जलपात्र अथवा फल भी प्रदर्शित हैं। एक उदाहरण में सूर्य के हाथ में पुस्तक का प्रदर्शन भी हुआ है। ऐसी एक मूर्ति (१९ वीं शती ई.) भारत कला भवन, वाराणसी में भी हैं। सभी उदाहरणों में सूर्य को रथ पर पूर्ण विकसित पद्म पर अथवा सामान्य आसन पर पद्मासन में आसीन दिखाया गया है। उनके मस्तक पर सामान्य मुकुट और शरीर पर अन्य आभूषण हैं। अलग - अलग उदाहरणों में अश्वों एवं सारथि अरुण का भिन्न - भिन्न मुद्राओं में अंकन हुआ है। किसी में अश्व गतिमान और किसी में अत्यन्त तीव्रगति से दौड़ने की मुद्रा में उत्कीर्ण है। इनकी मुद्रा सूर्य की गति को अभिव्यक्त करती है। इसी प्रकार अरुण को कहीं सामान्य मुद्रा में रथ के अश्वों का संचालन करते दिखाया गया है तो कहीं वह अश्वों की गति के साथ एक ओर झुके और उनकी लगाम को कसकर पकड़े प्रदर्शित हैं। अश्वचालित रथ पर आरूढ़ कुछ मूर्तियां इस प्रकार बनाई गई हैं कि वे सूर्य के प्रतीक एवं मानव दोनों ही स्वरूपों को एक साथ संघाट रूप में व्यक्त करती हैं। कालक्रम की दृष्टि से उपर्युक्त सभी मूर्तियां १८ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की हैं। सूर्य के रथारूढ़ उदाहरणों में ब्रह्मचारिणी मंदिर से प्राप्त मूर्ति उल्लेखनीय है जिसमें रथ पर सूर्य की मानवाकृति के स्थान पर आदित्य के रूप में शिलापट्ट पर उनकी मुखाकृति का अंकन हुआ है।

काशी में ११ वीं - १२ वीं शती ई. से १५ वीं - १६ वीं शती ई. के मध्य की सूर्य की स्वतंत्र, स्थानक एवं आसीन मानव प्रतिमाओं के उदाहरण भी मिले हैं जिनमें से कुछ उदाहरण कला एवं प्रतिमाशास्त्र दोनों ही दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। ये मूर्तियां मध्यकालीन खजुराहो, ओसियां, भुवनेश्वर, कोणार्क, मोढेरा जैसे सूर्य मंदिरों पर बनी मूर्तियों की लक्षण शैली में बनी हैं। ११ वीं - १२ वीं शती ई. के उदाहरण शुकुलपुरा स्थित शुष्केश्वर मंदिर, प्रहलादघाट के शीतला मंदिर, पीताम्बरपुरा के चिन्तामणि गणेश मंदिर, देहलीविनायक के देहली - विनायक मंदिर, कालभैरव के सोरैया महादेव मंदिर से मिले हैं। इन मंदिरों के अतिरिक्त गंगा के किनारे घाट की सीढ़ियों पर स्थित देवकुलिकाओं में भी ११ वीं - १२ वीं शती ई. की सूर्य प्रतिमाओं के उदाहरण देखे जा सकते हैं। इनमें प्रहलादघाट तथा पंचगंगा घाट की सीढ़ियों पर स्थित देवकुलिकाएं उल्लेखनीय हैं। ११ वीं - १२ वीं शती ई. के उदाहरण गौरीशंकर मंदिर, त्रिलोचन और पंचपाण्डव मंदिर, शिवपुर के अतिरिक्त नगर में यत्र - तत्र भी देखे जा सकते हैं। अधिकांश उदाहरणों में सूर्य की स्थानक आकृतियां ही बनाई गई हैं जिनमें किरीटधारी द्विभुज सूर्य समभंग में खड़े हैं और उनके दोनों हाथों में पद्म है। पद्म की स्थिति कुछ में कन्धों के बराबर किन्तु अधिकांश में कन्धों के कुछ ऊपर तक दिखाई गई है। ये पद्म पूर्ण विकसित सनाल-पद्म के रूप में बने हैं। कुछ प्रतिमाओं का स्वतंत्र विस्तृत विवरण भी यहां अपेक्षित है।

शुकुलपुरा के शुष्केश्वर मंदिर की सूर्य प्रतिमा के शीर्षभाग एवं दोनों हाथ पर्याप्त खंडित हैं किन्तु उत्तरीय, पैरों में लंबा बूट (उपानह), कवच (वर्म) एवं अन्य आभूषण तथा पार्श्व आकृतियां स्पष्ट हैं। पार्श्व आकृतियों में भी शरीर पर कवच स्पष्टतः द्रष्टव्य है। पार्श्व आकृतियों के आयुध यद्यपि स्पष्ट नहीं हैं किन्तु अनुमानतः ये दण्ड एवं पिंगल की आकृतियां हैं। इन आकृतियों के समीप ही कुछ बड़ी दो स्त्री एवं दो पुरुष आकृतियां भी खड़ी हैं जिनके करों में पद्म और कलश प्रदर्शित हैं। स्त्री आकृतियां संभवतः ऊषा एवं प्रत्यूषा की आकृतियां हैं। मूर्ति के दोनों छोरों पर ललितमुद्रा में आसीन द्विभुज - कुबेर की दो आकृतियां बनी हैं जिनके एक हाथ में धन का थैला है। सूर्य के पैरों के मध्य का खंडित अंश किसी आकृति (अरुण) के होने का आभास देता है। मूर्ति के ऊपरी भाग के खंडित होने के कारण अन्य विवरण स्पष्ट नहीं है। इसी मंदिर से मिले किसी स्तम्भ के खंडित भाग पर भी सूर्य का अंकन हुआ है। इस स्तम्भ पर चारों ओर ब्राह्मण धर्म के चार प्रमुख देवों (सूर्य, विष्णु, शक्ति, गणेश) की मूर्तियां बनी हैं। इनके मध्य में दिक्पालों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। इन्हीं में एक सनाल - पद्मधारी सूर्य की द्विभुज आकृति है। किरीटमुकुट से सुशोभित सूर्य समभंग में हैं। उनके समक्ष छाया की आकृति बनी है। पार्श्वों में दो अन्य स्त्री आकृतियां भी हैं जो संभवतः ऊषा एवं प्रत्यूषा का अंकन हैं। सूर्य के हाथों में कन्धों से कुछ ऊपर तक उठे सनाल -पद्म हैं।

१२ वीं शती ई. की सूर्य की एक मनोहारी मूर्ति कन्दवा के कर्दमेश्वर मंदिर के समीपस्थ विरूपाक्ष मंदिर में देखी जा सकती है (चित्र ३८)। प्रस्तुत प्रतिमा सूर्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मूर्ति का महत्वपूर्ण उदाहरण है जो बनावट और विवरण की दृष्टि से बहुत कुछ शुम्भेश्वर मंदिर की सूर्य प्रतिमा के समान है। द्विभुज सूर्य के हाथ खंडित हैं किन्तु हाथों के सनाल - पद्म सुरक्षित हैं। किरीट - मुकुटधारी सूर्य के पैरों में लम्बा बूट शककालीन विशेषता है। उनकी बाहों से उत्तरीय लटक रहा है। मूर्ति का निचला भाग खंडित है किन्तु सारथि अरुण की आकृति सुरक्षित है। सूर्य स्त्री -सेविकाओं से सेवित हैं। दोनों ओर सूर्य पुत्र अश्विनी कुमारों (अश्वमुख) एवं प्रतिमा के ऊपरी भाग में धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाये ऊषा एवं प्रत्यूषा की आकृतियां बनी हैं। प्रभामंडल अत्यंत अलंकृत है।

१२ वीं शती ई. का तीसरा उदाहरण देहलीविनायक मंदिर में है। इस मूर्ति में किरीटमुकुटधारी सूर्य को समभंग में खड़ा एवं दो करों में पूर्ण विकसित पद्म लिये दिखाया गया है। उल्लेखनीय है कि सूर्य यहां चतुर्भुज हैं और उनके दो हाथ खंडित हैं। पूर्ण विकसित कमलाकार प्रभामंडल सुन्दर बन पड़ा है जिसके ऊपर दो मालाधर गन्धर्व एवं दो अन्य आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। सूर्य के पार्श्व में नीचे भी चार आकृतियों का अंकन हुआ है जिनके पर्याप्त खंडित होने के कारण उनकी पहचान संभव नहीं है। प्रहलादघाट स्थित शीतला मंदिर की सूर्य मूर्ति द्विभुज है जिसमें सूर्य के दोनों हाथों में सनाल - पद्म, मस्तक पर किरीटमुकुट, हाथ से लटकता लम्बा उत्तरीय, कमर में धोती तथा घुटने तक लम्बे बूट स्पष्ट हैं। पैरों के मध्य अरुण की आकृति खड़ी है और पार्श्व में दण्डधारी दंड की आकृति है। बनावट की दृष्टि से प्रतिमा १२ वीं शती ई. के कुछ बाद की जान पड़ती है।

सूर्य की आसीन मूर्तियों के कुछ परवर्ती उदाहरण भी मिले हैं। इनमें एक गौरीशंकर मंदिर (त्रिलोचन) तथा दूसरा पंचमेश्वर महादेव मंदिर (मिसिरपोखरा, डी. ४८/३) से प्राप्त हुआ है। गौरीशंकर मंदिर के उदाहरण में चतुर्भुज - सूर्य पद्मासन में बैठे हैं। उनका एक हाथ वरद्मुद्रा में है, जबकि दूसरे और तीसरे हाथों में पद्म तथा चौथे में जलपात्र है। यह मूर्ति पर्याप्त घिसी है। पंचमेश्वर महादेव मंदिर की पद्मासीन मूर्ति में चतुर्भुज - सूर्य पूर्ण विकसित पद्म पर विराजमान हैं। उनके हाथों में अक्षमाला, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। यहां सूर्य के मस्तक के पीछे रश्मियुक्त प्रभामंडल का अंकन हुआ है। उनके पार्श्वों में हाथ जोड़े उपासकों की दो आकृतियां खड़ी हैं।

उपरोक्त सूर्य मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि काशी में सूर्य - पूजा मुख्य रूप से तीन रूपों में प्रचलित थी, प्रतीक रूप में, रथारूढ़ सूर्य आकृति के रूप में और स्वतंत्र (स्थानक एवं आसीन) मूर्तियों के रूप में। ११ वीं - १२ वीं शती ई. की मूर्तियों में अन्यत्र की मूर्तियों की भांति द्विभुज - सूर्य को द्विभुज और करों में सनाल - पद्म से युक्त और सामान्यतः समभंग में दिखाया गया है। किन्तु १३ वीं शती ई. से १६ वीं शती ई. के मध्य के उदाहरणों में सूर्य को चतुर्भुज और अनेकशः विष्णु के आयुधों (शंख, चक्र, गदा) से युक्त दिखाया गया है जो वैदिक परम्परा में सूर्य से विष्णु के संबंधित रहे होने का स्मरण कराता है। चतुर्भुज रूप में सूर्य मूर्ति का निर्माण **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** से समर्थित है। किन्तु आसन मूर्तियों में पारंपरिक उत्कुटकासन के स्थान पर ध्यानमुद्रा में अंकन स्थानीय विशेषता है। इस प्रकार काशी की सूर्य मूर्तियों में वैदिक एवं परवर्ती परम्पराओं का पालन हुआ है। आदित्य एवं प्रतीक रूप में सूर्य अंकन की लोकप्रियता भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। आदित्य नगर (चितईपुर) के शिव मंदिर (१६ वीं शती) की सूर्य पूर्ति में सूर्य के समक्ष पताकाधारी हनुमान की आकृति का उत्कीर्णन हनुमान द्वारा सूर्य से ज्ञान प्राप्त करने की पारंपरिक कथा से संबंधित प्रतीत होता है (चित्र ४०)।

गणेश

दन्तश्च परशुं पद्मं मोदकंच गजाननः
गणेशो मूषिकारूढो विभ्राणः सर्वकामदः।।

रूपमण्डन ५.१५

भारतीय परम्परा में गणेश या गणपति विघ्ननाशक एवं सिद्धिदायक देवता माने गये हैं। सम्भवतः यही कारण है कि वर्तमान में सभी शुभाशुभ कार्यों के पूर्व गणेश की पूजा - अर्चना की जाती है। गणेश को गणपति, गजानन, गणेश्वर, एकदन्त, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, विनायक, वक्रतुण्ड आदि नामों से भी जाना जाता है। गणों का प्रमुख होने के कारण उन्हें गणनायक या गणपति कहा गया।[७] ब्राह्मण धर्म के पांच प्रमुख सम्प्रदायों में गणेश के उपासकों का सम्प्रदाय गाणपत्य सम्प्रदाय के नाम से जाना जाता है। गणेश की पूजा लक्ष्मी और

७- टी० ए० गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खण्ड १, भाग १, पृ. ३५-६३; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ . ३५४-६१; सम्पूर्णानन्द, गणेश, बनारस, संवत् २००१।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुबेर के साथ भी की जाती है। केवल ब्राह्मण धर्म ही नहीं जैन एवं बौद्ध धर्मों में भी गणेश लोकप्रिय रहे हैं। जैन परम्परा में गणेश की मूर्तियां ब्राह्मण परम्परा के अनुरूप हैं जिनमें गजमुख और एक[illegible] गणेश के साथ मूषक -वाहन, नागयज्ञोपवीत तथा करों में अभय (या वरद) - मुद्रा, स्वदन्त, परशु, पद्म, अंकुश और मोदक पात्र दिखाये गये।

गणेश की उत्पत्ति एवं स्वरूप के आधार पर विद्वानों ने उन्हें यक्ष (भारी - भरकम शरीर), नाग (नागयज्ञोपवीत) और शिव (परशु, सर्प, त्रिशूल, पंचमुख हेरम्ब) से संबंधित बताया है। गणेश की मूर्तियों का निर्माण यद्यपि कुषाणकाल से ही होने लगा तथापि उनकी लोकप्रियता आठवीं शती ई. से सभी क्षेत्रों में मिलती है। शिल्पशास्त्रों में गणेश के सामान्य स्वरूप के अतिरिक्त उनके अलग - अलग स्वरूपों का भी निरूपण हुआ है जिसमें हेरम्ब गणपति, शक्ति गणपति, नृत्य गणपति, बीज, बाल व तरुण गणपति, ध्वज गणपति स्वरूप मुख्य हैं। मूर्त उदाहरणों में मुख्यतः सामान्य या एकल, हेरम्ब, शक्ति और नृत्य गणपति स्वरूपों की ही मूर्तियां मिली हैं। स्वतंत्र मूर्तियों के अतिरिक्त शिव अथवा शिव - पार्वती मूर्तियों के साथ भी गणेश आकृतियों का अंकन नटराज (बादामी, एलोरा, कांचीपुरम) कल्याणसुन्दर (भारत कला भवन, वाराणसी) एवं उमा -महेश्वर (खजुराहो, कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा, भुवनेश्वर) स्वरूपों में मिलता है। सप्तमातृका -फलकों पर भी वीरभद्र के साथ गणेश का अंकन हुआ है।

शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में गणपति के लक्षणों का उल्लेख मिलता है। अपराजितपृच्छा (२१२.३५ -३७) में गजमुख और चतुर्भुज गणेश को त्रिनेत्र, एकदन्त तथा व्याल - यज्ञोपवीत एवं मूषक - वाहन से युक्त बताया गया है। उनके करों में स्वदन्त, परशु, पद्म और मोदक होने का उल्लेख है। रूपमंडन (५.१५) में भी चतुर्भुज गणेश के यही लक्षण बताये गये हैं। गणेश की पत्नियों के रूप में ऋद्धि एवं बुद्धि के अतिरिक्त भारती और श्री का भी उल्लेख मिलता है। सामान्य मूर्तियों में त्रिनेत्र-गणपति को आसन या स्थानकमुद्रा में किरीट अथवा करण्डमुकुट तथा अन्य आभूषणों से सज्जित और सर्प या व्याल - यज्ञोपवीत धारण किये रूपायित किया गया है। नृत्य रूप में नटेश मूर्तियों के समान उनके दो हाथ नृत्य की मुद्रा में होते हैं जबकि शक्ति - गणेश रूप में उन्हें एक हाथ से शक्ति का आलिंगन करते हुए दिखाया जाता है। आगम ग्रन्थों में गणेश को चार, आठ, दस और सोलह हाथों वाला बताया गया है। पंचमुख हेरम्ब गणेश रूपमण्डन (५.१६-१७) में मूषक-वाहन वाले तथा करों में वरदमुद्रा, अंकुश, स्वदन्त, कपाल, बाण, पाश एवं गदा से युक्त निरूपित हैं। प्रायः सभी मध्यकालीन कलाकेन्द्रों पर गणेश की मूर्तियां बनीं जिनके प्रमुख उदाहरण ओसियां, खजुराहो, एलोरा, भुवनेश्वर हलेबिड, कन्नौज एवं बिहार, राजस्थान के कलाकेन्द्रों पर देखे जा सकते हैं। मध्यकालीन मूर्तियों में गणेश की स्वतंत्र एकल तथा नृत्यरत एवं शक्ति - सहित आलिंगन मूर्तियों की प्रधानता रही है।

काशी से गणेश की विविध स्वरूपों वाली मूर्तियां प्राप्त हुई हैं, ये मूर्तियां आसन एवं स्थानक दोनों रूपों वाली हैं। कुछ में नृत्यरत गणेश का सुन्दर अंकन हुआ है। गणेश आकृतियों के द्विमुख (सूर्यकुण्ड), त्रिमुख (ढुंढिराज), पंचमुख (दो उदाहरण विश्वनाथगली) एवं सप्तमुख (अमेठी शिव मंदिर, मणिकर्णिकाघाट, १८५७ ई.) उदाहरण भी प्राप्त हुए हैं। पंचगणेश और षोडशगणेश आकृतियों वाले पट्ट भी मिलें हैं। कुछ मूर्तियों में गणेश के साथ ऋद्धि - सिद्धि का भी रूपायन हुआ है। काशी से प्राप्त गणेश की कुछ मूर्तियां शास्त्रीय निर्देशों के अनुरूप बनाई गई हैं किन्तु कुछ ऐसे भी उदाहरण मिले हैं जिनमें पूर्णतया परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। गणेश की द्विभुज, चतुर्भुज और अष्टभुज प्रकार की आकृतियां प्राप्त हुई हैं जिनमें स्थूलकाय, तुंदिल गणेश की शुण्ड मोदकपात्र से मोदक उठाते या मोदक लिये बनाई गई है। कुछ उदाहरणों में गणेश एकदन्त हैं। अधिकांश उदाहरणों में वाहन मूषक है, केवल कुछ उदाहरणों में मूषक अनुपस्थित है।

काशी में गणेश की सातवीं से २० वीं शती ई. के मध्य की विपुल मूर्तियां मिली हैं जो काशी में गणेश - पूजन की परम्परा और उसके विशेष महत्व की साक्षी हैं जिस प्रकार अन्य देवी - देवताओं के पीठों की स्थापना नगर में की गई उसी प्रकार गणेश के पीठों की भी स्थापना हुई। काशी में गणेश की कुल संख्या ५६ मानी गई है जो ५६ विनायक नाम से जाने जाते हैं।[८] इनके अतिरिक्त नगर के विभिन्न मंदिरों से गणेश की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो मंदिरों के प्रवेशद्वारों, मंदिरों के गर्भगृह में पंचायतन देव -आकृतियों के रूप में अथवा मंदिर

८- काशीखंड ५७,५६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के मुख्य देवता या अन्य आकृतियों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। नगर भ्रमण के क्रम में मंदिरों से गणेश की लगभग ३० आसन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। सातवीं से २० वीं शती ई. के मध्य की इन मूर्तियों में चतुर्भुज - गणेश के करों में पद्म, परशु, सर्प, मोदक अथवा मोदकपात्र; या अक्षमाला, परशु, पद्म और पुस्तक अथवा वरदमुद्रा दिखाये गये हैं। कुछ में परशु के स्थान पर अंकुश का भी अंकन हुआ है। यद्यपि शिल्पशास्त्रों में गणेश के साथ पुस्तक का उल्लेख नहीं मिलता पर काशी की १८वीं से २० वीं शती ई. की मूर्तियों में एक हाथ में पुस्तक का प्रदर्शन शिल्पी की सूझ का द्योतक है जो गणेश के बुद्धि - ज्ञान के देवता होने के कारण उनसे संबद्ध किया गया। इसकी पृष्ठभूमि गणेश के व्यासरचित महाभारत के आदि लेखक होने की परम्परा में भी देखी जा सकती है। आयुधों के क्रम में किसी निश्चित परम्परा का पालन नहीं किया गया है। कभी दाहिने हाथ का कोई आयुध बायें में और बायें का दाहिने में भी देखा जा सकता है। इनमें से कुछ आकृतियों में गणेश की शुण्ड सीधी, कुछ में बायें हाथ के मोदक अथवा मोदकपात्र की ओर मुड़ी तथा कुछ में दाहिने हाथ के मोदक अथवा मोदकपात्र का स्पर्श करती दिखाई गई है। दाहिनी ओर शुण्ड वाली आकृतियां परम्परासम्मत नहीं जान पड़ती हैं। आसन मूर्तियों के कुछ उदाहरण महाराज - लीलासन में तथा कुछ पद्मासन में हैं। सामान्यतया इन आकृतियों में गणपति के मस्तक पर सुन्दर जटाओं की केश - सज्जा है अथवा उन्हें मुकुट धारण किये बनाया गया है। कुछ आकृतियों में मुकुट, हार, भुजबन्ध इत्यादि आभूषणों के साथ नाग -उदरबन्ध का भी अंकन हुआ है जो गणेश आकृतियों की एक प्रमुख विशेषता है। आसन आकृतियों में कुछ उदाहरण एकदन्त वाले भी हैं। कुछ उदाहरणों में ऋद्धि, सिद्धि, पूजक आकृतियों और मालाधर गन्धर्वों का भी अंकन हुआ है। आसीन मूर्ति का एक उदाहरण अष्टभुज है। यह उदाहरण राजपुत्र विनायक मंदिर (राजघाट) से प्राप्त हुआ है।

गणेश की आसन मूर्तियां महादेव मंदिर (दुर्गाकुंड), वशिष्ठेश्वर मंदिर (यमघाट), समराजेश्वर मंदिर (ललिताघाट), शिव मंदिर (अस्सी, हनुमानघाट एवं आदित्यनगर), लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट), चिन्ताहरण गणेश एवं ज्ञानकेशव मंदिर (आदिकेशवघाट), हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), चिन्तामणि गणेश मंदिर (पीताम्बरपुरा), शीतला मंदिर (सिद्धेश्वरी), संकठा मंदिर परिसर, शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा), कामाक्ष्या मंदिर (कमच्छा), तिलभाण्डेश्वर मंदिर (तिलभाण्डेश्वर), मान्धातेश्वर मंदिर (ललिताघाट), विघ्नविनायक मंदिर (यमघाट), शिव मंदिर एवं शीतला मंदिर (राजमंदिर), ब्रह्मा मंदिर (ब्रह्माघाट), शिव मंदिर (राजघाट), दुर्गा मंदिर (दुर्गाकुण्ड एवं मणिकर्णिकाघाट), केदार मंदिर (केदारघाट), पंचमेश्वर महादेव मंदिर (सूर्यकुण्ड), शिव मंदिर (टेढ़ीनीम), दुर्गा मंदिर (रामनगर), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली), बिन्दुमाधव मंदिर (पंचगंगाघाट), गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी), नन्देश्वर महादेव मंदिर एवं पंचाक्षेश्वर मंदिर (त्रिलोचनघाट), त्र्यम्बकेश्वर मंदिर (बड़ादेव) एवं त्रिलोचन महादेव मंदिर (त्रिलोचनघाट) से प्राप्त हुई हैं। गणेश की आसन मूर्तियों के ११ वीं - १२ वीं शती ई. के कुछ उदाहरण गंगा किनारे के घाटों पर भी देखे जा सकते हैं। नयाघाट पर अमृतराव पेशवा द्वारा निर्मित एक गणेश मंदिर है जिसमें चतुर्भुजी गणेश मूर्ति प्रतिष्ठित है। बड़ागणेश की वक्रतुण्ड - गणपति मूर्ति में चतुर्भुज गणेश के करों में पद्म - कलिका, अंकुश, पुस्तक एवं मोदक प्रदर्शित हैं। गणेश के पार्श्वों में ऋद्धि - सिद्धि की आकृतियां भी बनी हैं।

गणेश की स्थानक आकृतियों के भी कई उदाहरण प्राप्त हुए हैं। ये उदाहरण भी सातवीं से २० वीं शती ई. के मध्य के हैं। स्थानक मूर्तियों के मुख्य उदाहरण लोलार्केश्वर महादेव तथा अर्कविनायक मंदिर (लोलार्ककुण्ड), कामाक्ष्या देवी मंदिर (कमच्छा), शुष्केश्वर मंदिर (शुकुलपुरा), कपिलेश्वर मंदिर (कपिलधारा), मोक्षेश्वर मंदिर (अवड़े ग्राम), देहलीविनायक मंदिर (देहलीविनायक) एवं लक्ष्मी - नारायण मंदिर (भोंसलाघाट) से प्राप्त हुए हैं। स्थानक मूर्तियां विवरण एवं लक्षणों की दृष्टि से आसन मूर्तियों के समान हैं। स्थानक मूर्तियों के कुछ उदाहरणों में गणेश सामान्यरूप से आभंग में खड़े और कुछ में त्रिभंगमुद्रा में हैं। इन मूर्तियों में गणेश के मस्तक पर मुकुट के स्थान पर एक अलंकृत पट्टिका बंधी है। कुछ उदाहरणों में अन्य आभूषणों के साथ सर्प - यज्ञोपवीत भी दिखाया गया है।

नृत्त मूर्तियों में गणेश को भावपूर्ण मुद्रा में नृत्य करते दिखाया गया है। ये मूर्तियां कामाक्ष्या मंदिर (कमच्छा), हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), चिन्ताहरण गणेश मंदिर (आदिकेशवघाट), कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा), राजपुत्र विनायक मंदिर (राजघाट) तथा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द भैरव मंदिर (हनुमानघाट) से प्राप्त हुई हैं। कपिलेश्वर मंदिर की मूर्ति अष्टभुज है। स्वतंत्र देवकुलिका में स्थापित १७ वीं शती ई. की प्रस्तुत मूर्ति के करों में मोदक, पद्म, पुस्तक, अंकुश, सर्प, पद्म, अक्षमाला एवं मोदकपात्र स्पष्ट हैं। गणेश के समीप ही नृत्य की मुद्रा के अनुरूप ढोल बजाती हुई आकृति भी बनी है (चित्र ४४)। कामाक्ष्या मंदिर (८वीं - ९ वीं शती ई.) , हनुमान मंदिर (९ वीं सती ई.), चिंताहरण गणेश मंदिर (१२ वीं शती ई.) तथा आनन्दभैरव मंदिरों की मूर्तियां सामान्यरूप में नृत्तरत हैं। प्रायः सभी नृत्त आकृतियों में गणपति को दाहिना पैर भूमि से कुछ ऊपर उठाये नृत्य की मुद्रा में दरशाया गया है। उनका एक हाथ नृत्य की मुद्रा में प्रदर्शित है तथा करों में परशु (या त्रिशूल या अंकुश), पद्म तथा मोदकपात्र (या मोदक) द्रष्टव्य हैं।

हेरम्ब गणेश के दो उदाहरण (१९ वीं शती ई.) प्राप्त हुए हैं । ये उदाहरण पंचमुख - विनायक मंदिर (विश्वनाथगली) तथा अन्नपूर्णा मंदिर (विश्वनाथगली) से मिले हैं। दोनों मूर्तियां वर्तमान में पूजित हैं। पंचमुख - विनायक मंदिर के उदाहरण में चतुर्भुज गणेश को दोनों पैर मोड़कर बैठे दिखाया गया है। गणेश के करों में अंकुश एवं सर्प स्पष्ट हैं। उनके अन्य दो कर जांच पर स्थित हैं। हेरम्ब गणेश की दूसरी मूर्ति के तीन शुण्ड सम्मुख भाग में हैं जबकि अन्य दो कुछ पीछे की ओर स्थित हैं। गणपति के करों में पद्म, अंकुश - त्रिशूल, पद्म - सर्प तथा मोदकपात्र देखे जा सकते हैं। उनकी एक शुण्ड पद्म पर और दूसरी मोदकपात्र में हैं। महाराजलीलासन में बैठे गणपति के निकट मूषक आकृति भी बनी है (चित्र ४६)। पहली मूर्ति की अपेक्षा यह मूर्ति अधिक स्वाभाविक बन पड़ी है। सप्तमुख - गणेश की एक मूर्ति मणिकर्णिकाघाट स्थित अमेठी शिव मंदिर से मिली है।

मंगलागौरी के समीप कविराज हरिहर मिश्र के मकान में बाल गणेश की एक मूर्ति सुरक्षित है। चतुर्भुज एवं गजानन -गणेश खड़े हैं और उनका बायां पैर परशु की मुठिया पर टिका है। मुकुट एवं नाग -यज्ञोपवीत से सज्जित गणेश के हाथों में परशु, अंकुश, पात्र एवं मोदक हैं। दाहिने पार्श्व में मोदकपात्र से युक्त एक सेवक आकृति खड़ी है।

देहलीविनायक मंदिर से षोडश - विनायक का भी एक उदाहरण (१८ वीं शती ई.) प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत उदाहरण में दो पंक्तियों में विनायक की कुल १६ आकृतियां उत्कीर्ण हैं। आसीन आकृतियों का यह उदाहरण एक ओर कुछ खंडित एवं पर्याप्त घिसा भी है। इसी प्रकार लक्ष्मीकुण्ड पर कुण्ड की सीढ़ियों पर सुरक्षित एक पट्ट पर पंचगणेश की आकृतियों का अंकन (ल.१२वीं शती ई.) हुआ है। प्रस्तुत उदाहरण में गणेश की क्रम से तीन आसीन आकृतियां हैं। उसके बाद गणेश की उपस्थिति एक गज आकृति के माध्यम से दिखाई गई है। अन्त में पुनः गजानन -गणेश की आसन मूर्ति है। महाराजलीलासन में बैठी चार गणेश आकृतियां शुण्ड से बायें हाथ के मोदकपात्र से मोदक उठा रही हैं। यह मूर्ति भी पर्याप्त घिसी हुई है। पंचगणेश की एक मूर्ति किराडू (राजस्थान) के सोमेश्वर मंदिर से भी प्राप्त हुई है। काशी -पट्टों पर भी पंच -विनायकों के उत्कीर्णन की परम्परा रही है।

इस प्रकार काशी में गणेश मूर्तियों की विविधता से उनकी प्रतिष्ठा और पूजन की प्राचीन परम्परा सिद्ध होती है। उनके निरूपण में पारंपरिक स्वरूपों (एकल, नृत्त एवं हेरम्ब) एवं लक्षणों (मूषक - वाहन, एकदन्त, नाग - यज्ञोपवीत एवं करों में पद्म, परशु, अंकुश, त्रिशूल, पुस्तक, मोदकपात्र) को दिखाया गया है।

कार्त्तिकेय

महाकाव्यों में कार्त्तिकेय को कभी शिव - पार्वती का पुत्र बताया गया है और कभी अग्नि और स्वाहा की संतति कहा गया है। कार्त्तिकेय का कई अन्य नामों से भी उल्लेख हुआ है जिनमें स्कन्द, कुमार, विशाख, महासेन, सुब्रह्मण्य एवं शक्तिधर मुख्य हैं। पतंजलि ने महाभाष्य में स्कन्द और विशाख नाम से दो अलग - अलग देवताओं का उल्लेख किया है। कृत्तिकाओं की सन्तान होने के कारण उन्हें कर्त्तिकेय, छः माताओं का पुत्र होने के कारण षण्मातुर और छः मुखों के कारण षडाननू या षण्मुख कहा गया है।[९] यौधेयगणों के सिक्कों पर इनका योद्धा के रूप में अंकन हुआ है। शिवपुत्र कार्त्तिकेय का जन्म तारकासुर का संहार करने के लिए हुआ था, जिसकी विस्तृत कथा कालिदास के कुमारसंभव में वर्णित है। ऐसा प्रतीत होता है कि कार्त्तिकेय की अवधारणा में कई अलग - अलग देवताओं

९- भगवन्त सहाय, आइकनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दू ऐण्ड बुद्धिस्ट डीटीज, नई दिल्ली, १९७५, पृ. ९९-११७; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ.३६२-६७; कंचन सिन्हा, कार्त्तिकेय इन इंडियन आर्ट एण्ड स्कल्पचर, नई दिल्ली, १९७९।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का योगदान था जिन्हें कुषाणकाल के बाद एकीकृत रूप में कार्त्तिकेय नाम दिया गया। गुप्तकाल में कार्त्तिकेय राष्ट्रीय देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसी कारण इस काल में कार्त्तिकेय प्रकार की मुद्राएं भी प्राप्त होती हैं। गुप्त शासकों ने अपने स्कन्द और कुमार नाम भी रखे। कार्त्तिकेय के प्रतिमा निरूपण से संबंधित प्रारंभिकतम उल्लेख **बृहत्संहिता** (५७.४१) में है जिसका विस्तार **विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अपराजितपृच्छा** और **रूपमंडन** में मिलता है। **अपराजितपृच्छा** (२१२.४०-४२) में षण्मुख कार्त्तिकेय को द्वादशभुज, त्रिनेत्र तथा मयूर वाहन वाला बताया गया है, जिनके हाथों में जलपात्र, खेटक, पाश, धनुष, शृंग, वरदमुद्रा, बाण, शक्ति, खड्ग, अंकुश, दण्ड और अक्षसूत्र प्रदर्शित होंगे। **समरांगणसूत्रधार** और **रूपमण्डन** में भी इन्हीं लक्षणों का उल्लेख हुआ है। **रूपमण्डन** (५.२६-३२) में तरुण रूप वाले कार्त्तिकेय के द्विभुज और चतुर्भुज स्वरूपों का भी निरूपण हुआ है। द्विभुज कार्त्तिकेय शक्ति और कुक्कुट तथा चतुर्भुज कार्त्तिकेय शक्ति, पाश (वाम) एवं वरद और अभयमुद्रा (दक्षिण) से युक्त होंगे। दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में भी कार्त्तिकेय के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मिलता है।

कार्त्तिकेय की प्रतिमा का निर्माण कुषाणकाल में प्रारंभ हुआ जिसके स्वतंत्र उदाहरण मथुरा से और यौधेय शासकों की मुद्राओं पर मिलते हैं। गुप्तकाल में भी कार्त्तिकेय की स्वतंत्र मूर्तियां बनीं। गुप्तकाल के पश्चात कार्त्तिकेय का स्वतंत्र महत्व लगभग समाप्त हो गया और इनकी गणना मुख्यतः शिव -परिवार के देवता के रूप में की जाने लगी। मध्यकालीन मंदिरों पर उत्कीर्ण मूर्तियों में पार्वती या उमा, उमा-महेश्वर और कल्याण - सुन्दर स्वरूपों में गणेश के साथ कार्त्तिकेय का अंकन मिलता है। मध्यकाल में कार्त्तिकेय की स्वतंत्र मूर्तियों के उदाहरण भी मिलते हैं जिन्हें अयहोल, भुवनेश्वर, खजुराहो, मोढेरा एवं एलोरा के मंदिरों पर देखा जा सकता है। इन उदाहरणों में कार्त्तिकेय अधिकांशतः एक या तीन मुखों (मूर्तियों में ६ के स्थान पर सम्मुख दर्शन के केवल तीन मुख ही दिखाये गये हैं) वाले और मयूरवाहन के साथ उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज या षड्भुज कार्त्तिकेय के मुख्य आयुध शक्ति (शूल) और कुक्कुट हैं।

काशी में गुप्तकाल से ही कार्त्तिकेय की मूर्तियों का रूपायन किया गया जिसका एक मनोज्ञ उदाहरण (पांचवीं शती ई.) भारत कला भवन, वाराणसी (क्रमांक १५६) में है। मयूरासीन द्विभुज देवता के करों में फल और शूल हैं (चित्र४७)। मयूर पंखों का फैलाव प्रभामंडल के रूप में हुआ है जो कलात्मक और मनोहारी है। गले में विशिष्ट रक्षा -सूत्र है और केशरचना काकपक्ष शैली में है जो कार्त्तिकेय मूर्तियों की विशिष्टता रही है। किशोर रूप में ऊर्जा सम्पन्न कार्त्तिकेय एकमुख हैं जबकि गुप्तकाल के बाद शास्त्रीय परम्परा की पृष्ठभूमि में कार्त्तिकेय को षण्मुख दिखाया गया है। काशी के मध्यकालीन मंदिरों (१८ वीं - १९ वीं शती ई.) से भी कार्त्तिकेय की कई प्रतिमाएं मिली हैं जिनमें कार्त्तिकेय को मयूरवाहन के साथ खड़े अथवा मयूरासीन दिखाया गया है। इन उदाहरणों में कार्त्तिकेय एकमुख अथवा षण्मुख और द्विभुज, चतुर्भुज तथा द्वादशभुज हैं। उनके हाथों में पारंपरिक आयुध प्रदर्शित हैं। ये उदाहरण त्रिलोचन महादेव (मत्स्योदरी), अमरनाथ मंदिर (लोलार्ककुण्ड), तिलभाण्डेश्वर मंदिर (तिलभाण्डेश्वर), शिव मंदिर (के. २०/९६, राजमंदिर), रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली-चित्र ४८), पंचाक्षेश्वर मंदिर (ए. २/५६, त्रिलोचनघाट), शिव मंदिर (नई सड़क), दुर्गा मंदिर (रामनगर) और कालभैरव मंदिर (भैरवनाथ) से प्राप्त हुए हैं।

उपरोक्त उदाहरणों में त्रिलोचन महादेव मंदिर से प्राप्त मूर्ति प्राचीन है। १२ वीं शती ई. की प्रस्तुत प्रतिमा प्रदक्षिणापथ की पूर्वी भित्ति पर है। इस ॠतुक्षरित उदाहरण में षण्मुख और द्वादशभुज कार्त्तिकेय को आकर्षक रूप में मयूर पर आसीन दिखाया गया है। उनका दाहिना पैर नीचे लटक रहा है जबकि बायां मुड़ा हुआ है। मूर्ति में हाथों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं। कार्त्तिकेय की दूसरी मूर्ति भी वर्तमान में पूजित होने और जल इत्यादि चढ़ाये जाने के कारण पर्याप्त घिस गई है। यह मूर्ति लोलार्ककुण्ड के अमरनाथ मंदिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। सम्मुख दर्शन वाले कार्त्तिकेय मयूर पर आसीन हैं, किन्तु उनके हाथों के आयुध नष्ट हो चुके हैं। तिलभाण्डेश्वर मंदिर की तीसरी कार्त्तिकेय मूर्ति गर्भगृह के बायीं ओर की देवकुलिका में सुरक्षित है। ल. १३ वीं - १४ वीं. शती ई. के प्रस्तुत उदाहरण में एकमुख और चतुर्भुज कार्त्तिकेय को मयूर -वाहन के साथ समभंग में खड़ा दिखाया गया है। मूर्ति में मयूर - पंख का फैलाव उल्लेखनीय है। पर्याप्त घिसी होते हुए भी मूर्ति के दो हाथों में चक्र और पद्म स्पष्ट हैं। कार्त्तिकेय के पार्श्वों में नमस्कारमुद्रा में उपासकों की दो स्थानक आकृतियां बनी हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजमंदिर (के. २०/६) स्थित शिव मंदिर की रथिका (१६१० ई.) में षण्मुख और द्वादशभुज कार्त्तिकेय को समभंग में खड़ा दिखाया गया है। कार्त्तिकेय का मध्य मुख अन्य मुखों की अपेक्षा कुछ बड़ा है। मुख पर मन्दस्मित भाव प्रशंसनीय है। लंबे मुकुट से सज्जित देवता के हाथों में पुष्प, खड्ग, शूल, खेटक, अंकुश, गदा, पद्म, डमरू एवं धनुष स्पष्ट हैं। कार्त्तिकेय लम्बी धोती और माला पहने हैं। मयूर आकृति पीछे की ओर बनी है जिसका पुच्छ भाग स्वाभाविक रूप में दिखाया गया है। १६ वीं शती ई. की ही षण्मुख और द्वादशभुज कार्त्तिकेय मूर्ति का एक अन्य मनोहारी उदाहरण पंचाक्षेश्वर मंदिर से प्राप्त हुआ है। यह मूर्ति मंदिर के शिखर की पश्चिमी रथिका में उकेरी है। मयूरासीन कार्त्तिकेय के दो हाथ जांघ पर स्थित हैं जबकि अन्य हाथों में अंकुश, खट्वांग, कुक्कुट, खड्ग, त्रिशूल और खेटक स्पष्ट हैं। कार्त्तिकेय यद्यपि मयूर पर दोनों ओर पैर लटकाकर बैठे हैं, किन्तु उनकी आकृति सम्मुख दर्शन में बनी है।

२० वीं शती की कार्त्तिकेय मूर्ति का एक उदाहरण रामेश्वर मंदिर में देखा जा सकता है। षण्मुख और द्वादशभुज कार्त्तिकेय मयूर पर आसीन हैं। कुमार के करों में पुस्तक (?), पद्म, खड्ग, त्रिशूल, शूल, फलक, धनुष, डमरू, फल, शंख और गदा स्पष्ट हैं। कला की दृष्टि से यह मूर्ति रुक्ष और स्थिर भाव वाली है। नई सड़क के शिव मंदिर के उदाहरण में कार्त्तिकेय की लघु आकृति उत्तरी प्रवेशद्वार के उत्तरंग पर उत्कीर्ण है। प्रस्तुत उदाहरण में सुन्दर रचना वाली मयूर आकृति पर आसीन कार्त्तिकेय पूर्ववत् षण्मुख और द्वादशभुज हैं। उनके हाथों में शूल, धनुष, बाण, खड्ग, पद्म, त्रिशूल, खेटक और अंकुश स्पष्ट हैं। कालभैरव मंदिर के उदाहरण में षण्मुख कार्त्तिकेय की प्रतिमा खंडित होते हुए भी अपनी विशालता का संकेत देती है। अधिकांश भाग खंडित होने के कारण मूर्ति का विवरण स्पष्ट नहीं है। जटाजूटधारी आकृति के तीन मुख सम्मुख भाग में और तीन पीछे की ओर दिखाये गये हैं। कार्त्तिकेय मूर्ति का एक उदाहरण हनुमानघाट स्थित कांचीकामकोटीश्वर पीठाधीश्वर शंकराचार्य मठ में स्थित मंदिर से मिला है। प्रस्तुत मूर्ति मंदिर के गर्भगृह के प्रवेशद्वार के दाहिनी ओर की रथिका में उकेरी है। काले पत्थर की मूर्ति में द्विभुज कार्त्तिकेय के हाथ अभय एवं वरदमुद्रा में दिखाये गये हैं। मयूरासीन कार्त्तिकेय दक्षिण भारतीय शैली का लम्बा मुकुट और अन्य आभूषण धारण किये हुएं हैं। पंचगंगा घाट पर कार्त्तिकेय का एक छोटा मंदिर भी मिला है जिसमें मयूर पर आरूढ़ कार्त्तिकेय की मूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रस्तुत उदाहरण में षण्मुख कार्त्तिकेय चतुर्भुज हैं। कुमार के दो हाथों में खड्ग और नग्ग हैं जबकि दो हाथ वरद और अभयमुद्रा में हैं।

उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त बिन्दुमाधवघाट की सीढ़ियों की देवकुलिका से भी मयूर पर आसीन कार्त्तिकेय की मूर्ति मिली है। षण्मुख कार्त्तिकेय के हाथों में केवल फल, शूल, फल (?) ही स्पष्ट हैं। इसी प्रकार कबीरचौरा स्थित औघड़नाथ की तकिया की समाधि के पीछे की ओर भी मयूर पर आरूढ़ कार्त्तिकेय मूर्ति का एक उदाहरण सुरक्षित है। पटानी टोला स्थित और महाराजा बड़ौदा द्वारा निर्मित अश्विनीकुमारेश्वर मंदिर की चतुर्भुज कार्त्तिकेय मूर्ति में देवता एक पैर किंचित् झुकाकर खड़े हैं। उनके तीन अवशिष्ट करों में बीजपूरक, पुष्प तथा शक्ति स्पष्ट हैं। पीछे की ओर मयूर आकृति भी बनी है।

कार्त्तिकेय की मूर्तियों के अध्ययन से यह सर्वथा स्पष्ट है कि १८ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की मूर्तियों में स्वरूपगत विभिन्नता के स्थान पर एकरूपता मिलती है। षण्मुख और द्वादशभुज कार्त्तिकेय के साथ मयूर- वाहन तथा हाथों में शूल (या शक्ति) के अतिरिक्त खड्ग, खेटक, धनुष, बाण, कुक्कुट और कभी - कभी त्रिशूल, डमरू एवं सर्प भी दिखाये गये हैं। त्रिशूल, सर्प और डमरू स्पष्टतः शिव के साथ कार्त्तिकेय के संबंध के सूचक हैं। आयुध तथा अन्य पारंपरिक लक्षणों की दृष्टि से मूर्तियां **अपराजितपृच्छा** और **रूपमण्डन** की शास्त्रीय परम्परा से निर्दिष्ट प्रतीत होती हैं।

नवग्रह

भारतीय नक्षत्र विद्या एवं ज्योतिष शास्त्र विश्व का संचालन ग्रहों के अनुसार मानते हैं जिनकी संख्या नौ बतायी गयी है। नवग्रहों के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र (सोम), मंगल (भौम), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु की गणना होती है। नवग्रहों के पूजन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है।[10] **याज्ञवल्क्य स्मृति** (१.२९५ - ९८) में शान्ति, वृष्टि, दीर्घायु, ऐश्वर्य, सुख, समृद्धि आदि के लिए नवग्रहों के पूजन का विधान किया गया है। स्मृतिकार ने ग्रहयज्ञ और ग्रहशान्ति के लिए नवग्रहों की पूजा का विधान किया है। नवग्रह मूर्तियों का

१०- टी० ए० गोपीनाथ.राव, पूर्व निर्दिष्ट, खंड १, भाग २, पृ. ३१८ - २३; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, ४४३-४५।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्वतंत्र और शिलापट्टों पर सामूहिक रूप में (दशावतार और सप्तमातृका पट्टों के समान) अंकन मिलता है। नवग्रह मूर्तियों का निरूपण विष्णुधर्मोत्तर पुराण (६८.१-५), मत्स्यपुराण (९४.२), अग्निपुराण (५१.११), रूपमण्डन (२.१८-२५) अपराजितपृच्छा (२१४.१०-१६), शिल्परत्न और अंशुमद्भेदागम में प्राप्त होता है। ब्राह्मण धर्म के साथ - साथ जैन धर्म में भी नवग्रहों के पूजन की परंपरा लोकप्रिय रही है जिसके उदाहरण जैन कला में देखे जा सकते हैं। तीर्थंकर मूर्तियों की पीठिका और जैन मंदिरों के प्रवेशद्वारों पर नवग्रहों का अंकन भी हुआ है। आचारदिनकर, निर्वाणकलिका (२०.२-७), प्रतिष्ठासारसंग्रह (६.६) जैसे जैन ग्रन्थों में नवग्रहों के प्रतिमालक्षण वर्णित हैं जो पूरी तरह ब्राह्मण परम्परा से प्रभावित हैं।

नवग्रहों में सूर्य प्रधान हैं जिन्हें ग्रहपति भी कहा गया। सूर्य की स्वतंत्र मूर्तियों के उदाहरण ई. पू. से मिलने लगते हैं। किन्तु अन्य आठ ग्रहों के साथ सूर्य का नवग्रह समूह में अंकन मुख्यतः आठवीं शती ई. के बाद मंदिरों के प्रवेशद्वारों के उत्तरंग पर हुआ है। मंदिर निर्माण की परम्परा के साथ नवग्रहों का सामूहिक अंकन भी प्रारंभ हुआ जिसके उदाहरण सभी क्षेत्रों के मध्यकालीन मंदिरों के प्रवेशद्वारों पर देखे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मूर्त स्वरूपों में भी मध्यकाल में परिकर में नवग्रहों का उत्कीर्णन हुआ जिनमें सूर्य और शिव की कल्याण - सुन्दर मूर्तियां मुख्य हैं। १३ वीं - १४ वीं शती ई. के नवग्रहों के स्वतंत्र शिल्पांकन के उदाहरण कोणार्क के सूर्य मंदिर एवं अचलगढ़ (राजस्थान) के शिव मंदिर में देखे जा सकते हैं। नवग्रह - पट्टों के उदाहरणों में सामान्यतः नवग्रहों को द्विभुज और एक जैसे लक्षणों वाला दर्शाया गया है। नवग्रह -पट्टों पर सबसे पहले सूर्य की आकृति बनी होती है जिन्हें उत्कुटकासन में आसीन या समभंग में खड़ा दिखाया जाता है। सूर्य उपानह और वर्म से युक्त तथा दोनों हाथों में पद्म लिये होते हैं। सोम से लेकर शनि तक के अन्य छः ग्रहों को पट्टों पर एक जैसे लक्षणों वाला बनाया गया है। सामान्यतः ये ललितासीन या त्रिभंग में खड़े और द्विभुज हैं। उनके करों में अभय या वरद-मुद्रा तथा फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। अर्धकाय राहु को तर्पण - मुद्रा में तथा केतु को मानव - सर्प विग्रह में दिखाया गया है। कुछ मध्यकालीन उदाहरणों में नवग्रहों को स्वतंत्र लक्षण वाला भी निरूपित किया गया है जिसके कुछ उदाहरण लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित हैं। शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रत्येक ग्रह के अलग - अलग लक्षण बताये गये हैं।

सूर्य - सूर्य से संबंधित अध्याय में सूर्य मूर्तियों के प्रतिमालक्षण का विस्तृत विवरण दिया जा चुका है।

चन्द्र (या सोम) - विष्णु पुराण में एक हाथ में पद्म लिये चन्द्र को दस अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ बताया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (६८.१-४) में चतुर्भुज चन्द्र को तेज से युक्त बताया गया है। उनके रथ के अश्वों की संख्या दस बतायी गयी है। अग्निपुराण में चन्द्र के हाथों में अक्षमाला और कमण्डलु का उल्लेख है (५१.१)। अंशुमद्भेदागम और शिल्परत्न (अध्याय २०) में द्विभुज चन्द्र के हाथों में गदा और वरद्मुद्रा का उल्लेख है। रूपमण्डन (२.२१) में सोम के हाथों में पद्म का उल्लेख है।

मंगल (या भौम) - विष्णुधर्मोत्तरपुराण (६६.२) में मंगल को आठ अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ बताया गया है जबकि अपराजितपृच्छा , शिल्परत्न (अध्याय २५) तथा रूपमण्डन (२.२२) में मंगल का वाहन मेष है। दक्षिण भारतीय परम्परा में चतुर्भुज देवता का एक हाथ अभय या वरदमुद्रा में है और दूसरा शक्ति लिये है अन्य दो हाथों में गदा और शूल हैं।

बुध - बुध को चन्द्रमा का पुत्र भी कहा गया है। शिल्परत्न (अध्याय २५) में बुध को सिंह पर आरूढ़ बताया गया है जबकि अपराजितपृच्छा और रूपमण्डन (२.२२) में उनका वाहन सर्प है। उनके हाथों में वरद्-मुद्रा, खड्ग, खेटक और गदा के प्रदर्शन का उल्लेख है।

बृहस्पति - शिल्परत्न (अध्याय २५) में बृहस्पति चार भुजाओं वाले हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण (२.१२-१६) में आठ घोड़ों के रथ पर आरूढ़ बृहस्पति के हाथों में पुस्तक और अक्षमाला का उल्लेख है। अपराजितपृच्छा तथा रूपमण्डन (२.२३) में बृहस्पति का वाहन हंस है।

शुक्र - शिल्परत्न (अध्याय २५) में चार भुजाओं वाले शुक्र के हाथों में अक्षमाला, दण्ड, कमण्डलु होने का उल्लेख है। ग्रन्थों में शुक्र के दस अश्वों के रथ पर आरूढ़ होने का संदर्भ प्राप्त होता है। रूपमण्डन (२.२३) में शुक्र का वाहन दर्दुर बताया गया है।

शनि - प्रायः सभी ग्रन्थों में शनि को कृष्ण वर्ण बताया गया है। अपराजितपृच्छा (२१४.१८) तथा रूपमण्डन (२.२३) में शनि को महिष पर आरूढ़ बताया गया है। अंशुमद्भेदागम में द्विभुज शनि के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

एक हाथ में दण्ड है जबकि दूसरा हाथ वरद-मुद्रा में है।

राहु -अर्धकाय राहु को विकराल मुख और अर्धचन्द्र लिये हुए तथा सिंहासनस्थ या आठ अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ बताया गया है। शिल्परत्न (अध्याय २५) में सिंहासन पर आरूढ़ राहु के हाथों में खड्ग और खेटक का उल्लेख हुआ है। अपराजितपृच्छा (२१४.१८) और रूपमण्डन (२.२३) में राहु को हवनकुण्ड के मध्य स्थित बताया गया है।

केतु- ग्रन्थों में केतु के कटि के ऊपर का भाग मानवाकार तथा नीचे का भाग सर्पाकार बताया गया है। दस अश्वों वाले रथ पर आरूढ़ केतु के हाथों में गदा का उल्लेख मिलता है। अपराजितपृच्छा (२१४) और रूपमण्डन के अनुसार अर्धसर्प - पुच्छाकृति - धूम्रवर्ण केतु के दोनों हाथ अंजलिमुद्रा में होंगे।

जैन ग्रन्थों में चन्द्र से शनि तक छः ग्रहों को अक्षमाला और जलपात्र के साथ निरूपित करने का संदर्भ है। परन्तु कुछ ग्रन्थों में इनके लिये अलग - अलग लक्षणों का विधान भी मिलता है।[११]

काशी से नवग्रह आकृतियों के स्वतंत्र और मंदिर के प्रवेशद्वारों के उत्तरंगों पर समूह में दोनों ही प्रकार के अंकन मिलते हैं। ११ वीं -१२ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य के ये उदाहरण तारकेश्वर महादेव मंदिर (त्रिलोचनघाट), भीमेश्वर मंदिर (अवड़े गांव), सोरईया महादेव मंदिर (भैरवनाथ), कपिलेश्वर मंदिर (कपिलधारा), हनुमान मंदिर (राजमंदिर), हनुमान मंदिर (हनुमानघाट), कालभैरव मंदिर (भैरवनाथ) से प्राप्त हुए हैं। इन उदाहरणों में सामान्यतः नवग्रहों का समूह में अंकन हुआ है। इनमें मात्र एक उदाहरण को छोड़कर अन्य सभी में कुछ ग्रहों की आकृतियां ही शेष बची हैं। सभी ग्रहों से युक्त ११ वीं - १२ वीं शती ई. के पट्ट का एक उदाहरण अवड़े ग्राम (पंचक्रोशीमार्ग) के भीमेश्वर मंदिर के गर्भगृह के पीछे की भित्ति पर देखा जा सकता है। प्रस्तुत उदाहरण में क्रम से नवग्रहों का अंकन हुआ है। सूर्य से शनि तक के ग्रह आसीनमुद्रा में हैं। सूर्य के हाथों में पद्म है जबकि अन्य ग्रहों के करों में अभयमुद्रा और फल प्रदर्शित हैं। राहु का केवल मुख ही स्पष्ट है जो अन्य आकृतियों की अपेक्षा बड़ा है। केतु का अंकन नारी के रूप में हुआ है।

११ वीं - १२ वीं शती ई. का एक अन्य खण्डित उदाहरण सोरईया महादेव मंदिर से प्राप्त हुआ है जिसमें मात्र दो ग्रह आकृतियां ही शेष हैं। दोनों ही आकृतियां आसीन हैं और उनके हाथों में अभयमुद्रा और फल द्रष्टव्य हैं। १२ वीं शती ई. का एक अन्य उदाहरण रामघाट की सीढ़ियों पर वृक्ष के नीचे देखा जा सकता है। यह भी एक खण्डित नवग्रह -पट्ट है जिस पर केवल बृहस्पति, शुक्र, शनि और केतु की आकृतियां ही शेष हैं। इसी प्रकार तारकेश्वर महादेव मंदिर के उदाहरण में भी केवल तीन ही ग्रहों की आकृतियां देखी जा सकती हैं। कपिलेश्वर महादेव मंदिर के परकोटे की एक देवकुलिका में भी नवग्रह -पट्ट का एक खंडित उदाहरण है जिसमें सूर्य, सोम, मंगल और बुध की आकृतियां शेष हैं। सूर्य के हाथों में पद्म और अन्य तीन ग्रहों के हाथों में अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित हैं। हनुमान मंदिर के उदाहरण (२० वीं शती ई.) में नवग्रहों का अंकन तीन पंक्तियों में हुआ है। प्रस्तुत उदाहरण में नवग्रहों को उनके पारंपरिक वाहनों के साथ बनाया गया है। सभी आकृतियां चतुर्भुज हैं। कुछ के हाथों में पताका और खड्ग स्पष्ट हैं। सूर्य (सप्ताश्व -रथ) तथा राहु (आठ अश्वों वाला रथ) को वाहन के साथ दिखाया गया है। अन्य ग्रहों के साथ मेष, मृग और गज - वाहन स्पष्ट हैं। ये आकृतियां पर्याप्त छोटी और घिसी हुई हैं।

त्रिलोचन महादेव मंदिर के प्रदक्षिणापथ में वृक्ष के नीचे नवग्रहों की स्वतंत्र मूर्तियां सुरक्षित हैं। प्रस्तुत उदाहरण में सभी आकृतियां चतुर्भुज हैं। ग्रहों की स्पष्ट पहचान संभव नहीं है, किन्तु सभी आकृतियां वाहनों पर बैठी हैं। केवल कुछ के आयुध स्पष्ट हैं, उदाहरणार्थ - अश्व पर बैठी आकृतियों के हाथों में त्रिशूल और गदा, सिंह पर बैठी आकृतियों के हाथों में त्रिशूल और पद्म, मेष और सिंह पर बैठी आकृतियों के हाथों में पद्म देखे जा सकते हैं। केतु के कटि के नीचे का भाग सर्पाकार है। इसी प्रकार कालभैरव मंदिर के उदाहरण में सूर्य को सप्ताश्व - रथ पर बैठे दिखाया गया है। सूर्य चतुर्भुज हैं किन्तु केवल दो हाथों के पद्म ही स्पष्ट हैं। चतुर्भुज चन्द्र वृषभ या मेष चालित रथ पर आसीन हैं। उनके हाथों में गदा और शंख देखा जा सकता है। मंगल को मेष पर पद्म और गदा के साथ दिखाया गया है। अन्य हाथों के आयुध अस्पष्ट हैं। बुध को श्वान जैसी आकृति पर अंकुश और त्रिशूल लिये दिखाया गया है। इनके भी दो हाथों के आयुध अस्पष्ट हैं। गज

११- आचारदिनकर, भाग २, पृ. १७८-८४; निर्वाणकलिका २०, ३-६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पर आसीन बृहस्पति के हाथों में अंकुश, त्रिशूल, गदा और शंख स्पष्ट हैं। शुक्र गज पर आरूढ़ हैं जिनके हाथों में खड्ग, गदा, शंख और धनुष हैं। शनि मेष पर आरूढ़ हैं जिनके दो हाथों में त्रिशूल और गदा (?) देखा जा सकता है। राहु को सिंह के रथ पर दिखाया गया है। रथ के चक्र में असुर मुख और मुख के नीचे अर्धचन्द्र बना है। मस्तक विहीन केतु के कटि के नीचे का भाग सर्पाकार है। उनके हाथों में अक्षमाला, खड्ग, फलक और धनुष हैं।

नवग्रह आकृतियों के स्वतंत्र अंकन का एक उदाहरण (१९वीं शती ई.) हनुमानघाट स्थित हनुमान मंदिर से प्राप्त हुआ है। ये आकृतियां एक वृक्ष के नीचे चबूतरे पर स्थित हैं। प्रत्येक आकृति के नीचे उनके नाम लिखे हैं। सभी आकृतियां चतुर्भुज और पैर मोड़कर ध्यान - मुद्रा में बैठी हैं। ग्रहों के मस्तक पर छोटे मुकुट दिखाये गये हैं। ग्रहों के साथ वाहन का न दिखाया जाना आश्चर्यजनक है। सूर्य के हाथों में अक्षमाला, पद्म, ध्वज और वरद्मुद्रा प्रदर्शित हैं। चन्द्र के हाथों में भी सूर्य के समान ही आयुध प्रदर्शित हैं। मंगल के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, चामर (?) और वरद्मुद्रा तथा चेहरे पर मूछें स्पष्ट हैं। बुध के हाथों में वरद्मुद्रा, दण्ड (?), चामर तथा पुस्तक हैं। इनके भी चेहरे पर मूछें तथा शरीर पर आभूषण प्रदर्शित हैं। बृहस्पति के हाथों में ध्वज, पद्म (दो में) और अभयमुद्रा स्पष्ट हैं। शुक्र के तीन करों में छुरिका, पद्म और ध्वज स्पष्ट हैं, जबकि एक हाथ खंडित है। शनि के हाथों में अभयमुद्रा, चक्र (या पद्म), पताका (?) और वरद्मुद्रा द्रष्टव्य हैं। शनि के मुख पर मूछें भी बनीं हैं और रंग काला है। राहु का एक वृत्त के मध्य मात्र मुख भाग बना है। वृत्त के ऊपर सर्पफण के समान सादा छत्र है। राहु के मस्तक पर मुकुट, कानों में झुमके जैसा कर्णाभूषण और चेहरे पर मूछें बनी हैं। मस्तकविहीन पद्मासीन केतु अक्षमाला, खड्ग, खेटक और ध्वज (?) लिए हैं। उनके कमर पर धोती और गले में माला स्पष्ट है। काशी से नवग्रहों की स्वतंत्र आसीन मूर्तियों का एकमात्र यही उदाहरण प्राप्त हुआ है।

नाग

भारतीय लोकधर्म में नाग - पूजन प्रारंभ से ही लोकप्रिय रहा है। भारत के सभी क्षेत्रों से नागों की अनेक स्वतंत्र मूर्तियां मिली हैं जो नाग - पूजन की लोकप्रियता की साक्षी हैं। लोकधर्म के साथ - साथ ब्राह्मण, जैन और बौद्ध धर्मों में भी नागों को उपदेवता के रूप में मान्यता मिली। श्रावण मास की पंचमी के दिन इनकी उत्पत्ति की मान्यता के कारण ही नागपंचमी के रूप में प्रायः सम्पूर्ण भारत में नाग - पूजन की परंपरा है। शिव के साथ नाग का विशेष संबंध है जो काल का सूचक है। कृषि के देवता बलराम के शीर्ष भाग में सर्पफणों का छत्र मिलता है। अनन्तशायी रूप में विष्णु शेषनाग की शय्या पर विश्राम करते हैं। जैन धर्म के तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ के साथ सर्प लांछन के रूप में दिखाया गया है। नागों को दो रूपों में शिल्पांकित करने की परंपरा रही है - या तो पूर्ण नाग के रूप में या मानव - सर्प मिश्रित रूप में। मिश्रित रूप में कटि के नीचे का भाग सर्पाकार दिखाया गया है। नाग मूर्तियों के कुछ विशिष्ट उदाहरण बादामी, भुवनेश्वर (मुक्तेश्वर मंदिर) तथा राणकपुर के चतुर्मुख आदिनाथ मंदिर से मिले हैं।

काशी में नाग - पूजन का विशेष महत्व था। नागपंचमी के दिन आज भी नाग - पूजा की परम्परा व्यवहार में है। नगर से नाग आकृतियों के अंकन कई रूपों में प्राप्त होते हैं। मानवाकार नाग - नागी आकृतियों के अतिरिक्त शिव से संबंधित होने के कारण शिव मंदिरों में नागों का शिल्पांकन विशेष रूप से द्रष्टव्य है। शिवलिंग के साथ नाग आकृतियों का अंकन कई रूपों में हुआ है। कहीं इन्हें शिवलिंग से लिपटे हुए, कहीं शिवलिंग के चारों ओर योनिपट्ट पर रेंगते हुए, कहीं योनिपट्ट से शिवलिंग की ओर बढ़ते हुए तो कहीं शिवलिंग के पार्श्वों में खड़े बल में अंकित किया गया है। शिलापट्ट पर स्वतंत्र रूप से बने शिवलिंगों के पार्श्वों में सर्पाकृतियों के उत्कीर्णन के उदाहरण चिन्तामणि गणेश मंदिर (पीताम्बरपुरा) और केदारघाट की सीढ़ियों पर स्थित एक देवकुलिका में देखे जा सकते हैं। हनुमानघाट स्थित जूना अखाड़े के मंदिर में शिलापट्टों पर प्रचुर संख्या में बनी स्वतंत्र, कुण्डलीयुक्त, फ ा निकाले खड़े तथा फण के नीचे शिवलिंग वाली सर्पाकृतियां देखी जा सकती हैं। भोंसलाघाट स्थित रघुराजेश्वर मंदिर से कुण्डलीयुक्त सर्प की विरल आकृति मिली है जिसके ऊपरी भाग में सर्प का फण बना है (चित्र ६२)। ऐसी सर्पाकृतियों के उदाहरण गुजरात के मंदिरों में बहुतायत से मिलते हैं। उपरोक्त सभी नाग आकृतियां १८ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की उदाहरण हैं। विष्णु के शेषशायी स्वरूप तथा बलराम की आकृतियों में भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाग का अंकन हुआ है।

नाग - नागी युगल आकृति का एक उदाहरण कर्दमेश्वर मंदिर की दक्षिणी भित्ति की रथिका में उत्कीर्ण है। द्विभुज नाग - नागी पद्मपीठ पर ललितासन में पांच फणों के छत्र के नीचे बैठे हैं। इन आकृतियों के दाहिने हाथ में अक्षमाला -अभयमुद्रा है जबकि बायें में जलपात्र है। आसन पर दो पूजक - आकृतियां भी बनी हैं। आभूषणों से सज्जित नाग के मस्तक पर किरीटमुकुट शोभित है। नागी के केश गुच्छकों के रूप में संवरे हैं। कर्दमेश्वर मंदिर की उत्तरी भित्ति की रथिका में एक दूसरी नाग -युगल आकृति भी उकेरी है। यहां द्विभुज नाग - नागी सप्तफणों के छत्र से युक्त हैं और उनके दाहिने हाथ में अभयाक्ष और बायें में जलपात्र हैं। नागी के बायें हाथ में संभवतः फल है। १३ वीं शती ई. की इन नाग आकृतियों के मुख पर प्रसन्नता का भाव अभिव्यक्त है। आभूषणों से सज्जित नाग के केश सुन्दर लटों में और नागी के केश गोल जूड़े में संवरे हैं। नाग - नागी आकृतियों के पार्श्वों में सर्पफणों वाली नाग आकृतियों (सेवक) को नाग - नागी का जलाभिषेक करते दिखाया गया है। पार्श्व की नाग आकृतियों के कमर से नीचे का भाग सर्पाकार है (चित्र ६१)। प्रस्तुत नाग युगल आकृति के समीप ही ललितासन में एक अन्य नाग आकृति भी उत्कीर्ण है। सात सर्पफणों के छत्र वाली प्रस्तुत आकृति विवरण की दृष्टि से पूर्व नाग आकृतियों जैसी ही हैं।

दिक्पाल

दिशाओं के संरक्षक देवों के रूप में दिक्पालों की मान्यता प्राचीन है। पुराणों एवं अन्य परवर्ती ग्रन्थों में अलग - अलग दिशाओं के अलग - अलग लोकपालों अथवा दिक्पालों के नाम मिलते हैं। सामान्यतया इनकी संख्या आठ बताई गई है जिनके नाम इस प्रकार हैं। इन्द्र (पूर्व), अग्नि (दक्षिण - पूर्व), यम (दक्षिण), निर्ऋति (दक्षिण - पश्चिम), वरुण (पश्चिम), वायु (उत्तर - पश्चिम), कुबेर (उत्तर) तथा ईशान (उत्तर - पूर्व)।[१२] बौद्ध एवं जैन धर्मों में भी दिक्पालों के पूजन और शिल्पांकन की परम्परा मिलती है।[१३] लगभग सातवीं शती ई. से सभी क्षेत्रों के ब्राह्मण एवं जैन मंदिरों पर निर्धारित कोणों पर अष्ट - दिक्पालों का नियमित रूप से अंकन मिलता है।

शिल्पशास्त्रीय ग्रन्थों में अलग - अलग दिक्पालों के अलग - अलग लक्षण बताये गये हैं। **अपराजितपृच्छा** (२१३.६-२०) एवं **रूपमण्डन** (२.३१-३८) में दिक्पालों के लिए एक जैसे लक्षणों के उल्लेख हैं जो इस प्रकार हैं - सहस्र नेत्रों वाले गजारूढ़ इन्द्र चतुर्भुज और वरदमुद्रा, वज्र, अंकुश तथा जलपात्र से युक्त बताये गये हैं। इसी प्रकार मेष वाहन वाले अग्नि को ज्वालापुंज से युक्त और वरदमुद्रा, शक्ति, पद्म और कमण्डलु; मृत्यु के देवता यम को महिषारूढ़ और लेखनी, पुस्तक, कुक्कुट तथा दण्ड; श्वान पर आरूढ़ निर्ऋति को खड्ग, खेटक, कर्त्री तथा नरमुण्ड; मकरारूढ़ वरुण को वरदमुद्रा, पाश, पद्म और कमण्डलु; मृगारूढ़ वायु को वरद - मुद्रा, वज्र, पताका तथा कमण्डलु; गज वाहन से युक्त कुबेर को गदा, निधि (निधिपात्र), बीजपूरक और कमण्डलु और ईशान को वृषभवाहन और त्रिशूल, सर्प, नागेन्द्र तथा फल से युक्त बताया गया है।

काशी से मंदिरों पर उत्कीर्ण एवं मंदिरों में रखे वास्तुखण्डों पर बनीं दिक्पालों की आकृतियां प्राप्त हुई हैं। इनमें प्रायः सभी दिक्पालों को अपने निश्चित कोणों या दिशाओं में बनाया गया है। ये उदाहरण शुष्केश्वर महादेव मंदिर (शुकुलपुरा), कपिलेश्वर महादेव मंदिर (प्रहलादघाट), लोलार्केश्वर महादेव मंदिर (लोलार्ककुण्ड), शीतलदास मठ स्थित शिव मंदिर (प्रहलादघाट) तथा दुर्गा मंदिर (रामनगर) से प्राप्त हुए हैं। नवीं - १० वीं शती ई. के शीतलदास मठ स्थित मंदिर के उदाहरण में यम की नग्न और अग्नि की सामान्य आकृति का अंकन हुआ है। १२ वीं शती ई. के शुष्केश्वर महादेव मंदिर में एक स्तंभ पर द्विभुज दिक्पालों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। ये आकृतियां इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान की हैं। ईशान को छोड़कर अन्य सभी दिक्पालों को खड़े किन्तु पारम्परिक क्रम से कुछ अलग बनाया गया है। ईशान त्रिभंग में वृषभवाहन के साथ खड़े हैं और अभयमुद्रा एवं त्रिशूल से युक्त हैं। वायु मृग के साथ तथा कुबेर अभयमुद्रा एवं निधि के साथ उत्कीर्ण हैं। १२ वीं शती ई. की ईशान की एक आकृति ज्ञानवापी मस्जिद के पीछे की ओर सुरक्षित है जिसमें नन्दी के

१२- टी० ए० गोपीनाथ राव, पूर्व निर्दिष्ट, खंड २, भाग २, पृ. ५१५-३८; जे० एन० बनर्जी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. ५१६-२६; रामाश्रय अवस्थी, पूर्व निर्दिष्ट, पृ. २०१-३८।

१३- मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, खजुराहो का जैन पुरातत्व, खजुराहो, १९८७, पृ. ७७-८०।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साथ द्विभंग में खड़े ईशान त्रिशूल तथा जटाजूट से युक्त हैं। १३वीं शती ई. के कपिलेश्वर महादेव मंदिर से एक स्तंभ पर निधि लिये कुबेर और नन्दी के साथ वरदमुद्रा, त्रिशूल, सर्प और जलपात्र से युक्त ईशान की आकृतियां प्राप्त हुई हैं। इसी काल की अग्नि की एक सुन्दर मूर्ति लोलार्केश्वर महादेव मंदिर के कुण्ड की सीढ़ियों पर लगी है। द्विभंग में खड़े अग्नि द्विभुज हैं किन्तु उनके शरीर के चारों ओर अग्नि की लपटें दिखायी गयी हैं (चित्र ५१)। मूर्ति पर्याप्त ऋतुक्षरित हैं एवं मुख भाग खंडित है। दुर्गा मंदिर (१८वीं शती ई., रामनगर) की बाह्य भित्ति पर दिक्पालों का अंकन हुआ है। इनके निर्माण में शिल्पशास्त्रों में उल्लखित निर्देशों का पालन नहीं किया गया है। यहां मकरारूढ़ वरुण को वरदमुद्रा, सर्प, पद्म तथा जलपात्र के साथ, मृगारूढ़ वायु को एक स्थान पर वरदमुद्रा, पताका, पताका तथा जलपात्र के साथ और दूसरे स्थान पर जलपात्र, पताका, अक्षमाला और वरदमुद्रा के साथ, मेष पर आरूढ़ अग्नि (?) को वरदमुद्रा, पताका, त्रिशूल तथा गदा के साथ एवं वृषभारूढ़ ईशान को शूल तथा सर्प (अन्य दो हाथों के आयुध अस्पष्ट) के साथ दिखाया गया है। काशी के मंदिरों (१८वीं - २० वीं शती ई.) पर निर्धारित कोणों पर अष्टदिक्पालों के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय नहीं थी।

हनुमान

रामभक्त और सेवक के रूप में हनुमान के पूजन की परंपरा वर्तमान में भारतवर्ष के सभी क्षेत्रों में समानरूप से लोकप्रिय है। भारत के किसी भी क्षेत्र में हनुमान मंदिर और हनुमान की मूर्तियों के उदाहरण उनकी लोकप्रियता के साक्षी हैं। हनुमान को मारुति, महावीर, बजरंग (या वज्रांग), वायुकुमार, पवनपुत्र जैसे नामों से भी सम्बोधित किया गया है। वस्तुतः भारतीय परंपरा और संस्कृति में हनुमान जैसा दूसरा व्यक्तित्व विरले ही दिखाई देगा जिसमें विद्वता, सेवाभाव, भक्ति, विनम्रता, दृढ़निश्चय तथा अपने अपरिमित या असीमित बल से सर्वथा अनभिज्ञ होने जैसी विशेषतायें एक साथ दिखाई दें। काशी में रामानन्द और तुलसीदास द्वारा रामभक्ति की जो अविरल धारा प्रवाहित की गयी उसके फलस्वरूप हनुमान के शिल्पांकन और पूजन की परंपरा प्रारंभ हुई।

काशी के विभिन्न क्षेत्रों से १८ वीं से २० वीं शती ई. के बीच की हनुमान की विविध स्वरूपों वाली प्रभूत मूर्तियां मिली हैं। मूर्तियों में हनुमान को सर्वदा द्विभुज और स्थानक रूप में सामान्यतः चलायमान और अपने उठे हुए दाहिने या बायें पैर के नीचे किसी खड्ग, खेटकधारी असुर आकृति को दबाये हुए दिखाया गया है। यह स्वरूप असुरों या अन्धकार और बुराई के विनाश के भाव को व्यक्त करता है जिसकी पूर्व परम्परा अपस्मार पुरुष के रूप में दक्षिण भारत में मिलती है। अपस्मार पुरुष सामान्यतः शिव के पैरों के नीचे दिखाया गया है। स्मरणीय है कि हनुमान भी शिव का अवतार स्वरूप हैं। १८ वीं - १९ वीं शती ई. के भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण और रघुराजेश्वर मंदिरों पर कौपीनधारी हनुमान को नमस्कार - मुद्रा में दोनों हाथों के बीच गदा लिये समभंग में खड़ा दिखाया गया है (चित्र २३)। उल्लेखनीय है कि हनुमान का इसी रूप में लक्ष्मी - नारायण मंदिर के शेषशायी मूर्ति में भी अंकन हुआ है। लगभग सभी उदाहरणों में कौपीनधारी हनुमान के गले में माला, सिर पर अलंकृत मुकुट तथा शरीर पर अन्य आभूषण दिखाये गये हैं। बिरदोपुर (गिरि नगर) स्थित दक्षिणाभिमुख हनुमान मूर्ति (१९वीं शती ई.) में केशसज्जा जटा के रूप में बनी है और हनुमान के दोनों कन्धों पर राम - लक्ष्मण की आकृतियां दिखाई गई हैं। हनुमान का दाहिना हाथ मस्तक पर विजयमुद्रा में उठा हुआ है और बायां वक्षस्थल के समीप दिखाया गया है। १८ वीं - १९ वीं शती ई. के रामनगर स्थित दुर्गा मंदिर एवं भोंसलाघाट स्थित लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिरों तथा कुछ अन्य मंदिरों की हनुमान मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य उदाहरणों में सामान्यतः मूर्तियां पूजन में होने के कारण सिन्दूर से पूरी तरह रंगी हुई दिखाई देती हैं। इन उदाहरणों में कपिमुख हनुमान की पूंछ के माध्यम से अलग - अलग प्रकार की आलंकारिक सज्जा दिखाई गई है। कुछ उदाहरणों में राम - लक्ष्मण या केवल एक को पूंछ में आवृत्त दिखाया गया है।

हनुमान की मूर्तियों के सर्वाधिक प्रचलित स्वरूप में उन्हें दोनों कन्धों पर राम -लक्ष्मण की आकृतियों से युक्त या बिना उनकी आकृतियों के एक हाथ में गदा और दूसरे में पर्वत शिखर (चित्र ५२) लिये दिखाया गया है। कभी - कभी हाथ में पताका (गंगामहलघाट - १९ वीं शती ई.) भी दिखाई गई है। इस स्वरूप की कुछ मुख्य मूर्तियां रामनगर के दुर्गा मंदि एवं भोंसलाघाट के लक्ष्मी - नारायण तथा रघुराजेश्वर मंदिरों, हनुमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मंदिर, (विश्वनाथ मंदिर, लालघाट, राजमंदिर), अमेठी शिव मंदिर (मणिकर्णिका), कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा), शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा) से प्राप्त हुई हैं। हनुमान मंदिर (संकटमोचन के नाम से प्रसिद्ध) की मूर्ति में विवरण स्पष्ट नहीं है। वर्तमान में संकटमोचन मंदिर नाम से प्रसिद्ध यह हनुमान मंदिर सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

लक्ष्मी - नारायण एवं रघुराजेश्वर मंदिर पर हनुमान की सर्वाधिक एवं विविधतापूर्ण मूर्तियां हैं जिनमें हनुमान को हाथ जोड़े और हाथों के मध्य गदा पकड़े तथा कटि से लटके खड्ग एवं खेटक, धनुष और तूणीर से युक्त या गदा और पर्वतखण्ड लिये दिखाया गया है। एक उदाहरण में हनुमान खड्ग और खेटकधारी हैं। निःसंदेह ये मूर्तियां हनुमान के शौर्य, भक्ति एवं सेवाभाव को व्यक्त करती हैं।

केवल रामनगर के दुर्गा मंदिर के एक उदाहरण में हनुमान की आसीन मूर्ति मिली है जिसमें उनके हाथों में भक्तिभाव की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से अक्षमाला और भजन में प्रयुक्त वाद्य करताल दिखाया गया है। राम - लक्ष्मण की आकृतियों को कन्धे पर ले जाते हुए हनुमान की मूर्तियां राम - लक्ष्मण के साथ हनुमान के सुग्रीव के पास जाने से संबंधित हैं। रामनगर के दुर्गा मंदिर के राम - दरबार के अंकन में भी नमस्कारमुद्रा में दास भाव के साथ हनुमान का अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में (मुख्यतः २० वीं शती ई.) हनुमान को अपना हृदय चीरते और उसमें बसे राम का दर्शन कराते दिखाया गया है। मणिकर्णिकाघाट तथा कुछ अन्य उदाहरणों में इस स्वरूप का अंकन मिला है। बिन्दुमाधवघाट तथा कुछ अन्य उदाहरणों में हनुमान की अभयमुद्रा वाली मूर्तियां बनी हैं। इस स्वरूप में उनके हाथों में गदा और पर्वत शिखर नहीं दिखाया गया है।

शिवगण

गणों को शिव का सेवक माना गया है। महाभारत (शल्यपर्व ४५.७६) में गण आकृतियों का विस्तार से विवरण मिलता है जहां उन्हें 'पार्षद', भी कहा गया है। शिवगणों को गज, सिंह, वराह, शुक इत्यादि पशु - पक्षियों के मुखवाला बताया गया है। शिल्प में गणों की पशु - पक्षी मुखाकृतियों के उदाहरण प्राप्त होते हैं।[१४] पशु -पक्षी मुखवाली गण आकृतियों का सन्दर्भ मत्स्यपुराण (१८२.६२-६६) में भी प्राप्त होता है। वायुपुराण (६६.२२४-५६) में गणों की उत्पत्ति की कथा मिलती है। गुप्तकाल के कुछ पूर्व से ही गणों के उदाहरण मिलते हैं किन्तु कालान्तर में गणों का उकेरन मुख्यतः शिव मंदिरों पर ही प्राप्त होता है। सामान्यतया मंदिरों पर शिवगणों को द्वारपालों के रूप में या नृत्यरत अथवा संगीत वाद्यों के साथ बनाया गया है। गण आकृतियां प्रवेशद्वारों के साथ - साथ मंदिरों की भित्तियों पर पट्टिका में अथवा रथिका में भी मिलती हैं। इनमें गणों की बौनी आकृतियों को विभिन्न हाव-भाव और मुद्राओं में दिखाया गया है। ऐसी आकृतियों के उदाहरण भूमरा, बादामी, एलोरा और कांचीपुरम के मंदिरों पर अनेकत्र देखे जा सकते हैं।

काशी से नवीं - दसवीं से १२ वीं शती ई. के मध्य की कुछ शिवगण आकृतियां प्राप्त हुई हैं। ये आकृतियां शिव मंदिर (अवड़े ग्राम), महाकालेश्वर मंदिर (त्रिलोचन) तथा हनुमान मंदिर (राजमंदिर) में देखी जा सकती हैं। गुप्तकाल की कुछ गण आकृतियां कन्दवा के कर्दमेश्वर मंदिर के उत्तरी अधिष्ठान के पास सुरक्षित हैं। एक उदाहरण में गण के पेट पर शूकर मुख बना है (चित्र ६३)। अवड़े ग्राम का उदाहरण नवीं - दसवीं शती ई. का है जिसमें नृत्यरत गण की आकृति बनी है। प्रस्तुत उदाहरण में नृत्य की भंगिमा सुन्दर है। इसी मंदिर से १२ वीं शती ई. की गण आकृतियों का एक दूसरा उदाहरण भी मिला है जिसमें एक साथ तीन गण आकृतियों को क्रमशः ढोल बजाते, नृत्य करते तथा माला लिये दरशाया गया है। तीनों ही आकृतियां आकर्षक भंगिमाओं में बनी हैं। नगर से १२ वीं शती ई. की अन्य आकृतियां भी प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक महाकालेश्वर मंदिर से मिली है। प्रस्तुत उदाहरण में द्विभंग में स्थूलकाय गण आकृति एक वास्तुखंड पर बनी है। गण का दाहिना हाथ कंधे के पास कुछ लिये हुए और बायां जांघ पर स्थित है। केश-सज्जा सुन्दर है। हनुमान मंदिर के उदाहरण में एक साथ हाथ जोड़े गण आकृतियां बनाई गई हैं। ये आकृतियां एक वृक्ष के नीचे देवकुलिका में स्थित हैं। यमघाट से वास्तुखंड पर उत्कीर्ण एक अन्य गण आकृति प्राप्त हुई है। प्रस्तुत उदाहरण में द्विभंग में खड़े गण के हाथों में सर्प तथा सर्प -भुजबन्ध भी द्रष्टव्य हैं। मस्तक पर गुप्तकालीन शैली की केश-सज्जा भी स्पष्ट है।

१४- कमल गिरि, 'गणज ऐण्ड देयर रिप्रेजेन्टेशन इन दि कैलाशनाथ टेम्पुल, कांचीपुरम्,' विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल, होशियारपुर, खंड २१, भाग १-२, १६८३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

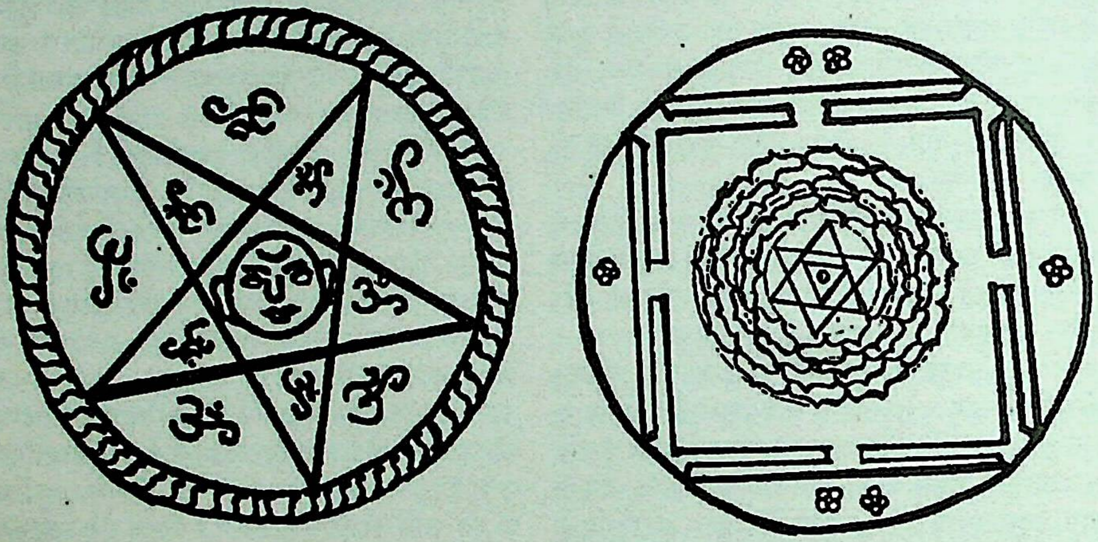

७-८ - सूर्ययंत्र, १६वीं शती, तैलंगस्वामी मठ, पंचगंगाघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अष्टम अध्याय

बौद्ध स्थापत्य और मूर्तियां

गंगा के घाटों पर तथा नगर में ब्राह्मण और जैन मंदिरों तथा देवमूर्तियों की प्रधानता है, जबकि वाराणसी रेलवे स्टेशन से लगभग आठ किलोमीटर की दूरी पर स्थित सारनाथ बौद्ध परम्परा और कला का अतिविशिष्ट केन्द्र है। बुद्ध की प्रथम धर्मोपदेश स्थली होने के कारण सारनाथ न केवल भारत वरन् विश्व के बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए पवित्रतम स्थल है। बोधगया में ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् बुद्ध ने सारनाथ में पंचवर्गीय भिक्षुओं को पहला धर्मोपदेश दिया जिसे बुद्ध का 'धर्मचक्रप्रवर्तन' कहा गया है। एक कुषाणकालीन अभिलेख से ज्ञात होता है कि बुद्ध ने आर्यसत्य चतुष्टय (सर्वदुःखम्, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध और दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा) और अष्टांगिक मार्गों का मूल उपदेश सारनाथ में ही दिया था जिसके माध्यम से प्राणिमात्र के संसार के दुःखों का अंत संभव था। साथ ही उससे शांति, ज्ञान (या संबोधि) और निर्वाण की प्राप्ति भी संभव थी। इस प्रकार बुद्ध की प्रथम उपदेशस्थली और बौद्धसंघ की स्थापना स्थली होने के कारण काशी की धार्मिक - सांस्कृतिक परम्परा में सारनाथ का बुद्ध के समय से लेकर आज तक विशेष महत्व है। यद्यपि वाराणसी नगर के ललिताघांट तथा कुछ अन्य क्षेत्रों से बुद्ध की कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं किन्तु बौद्धकला के अवशेष मुख्यतः सारनाथ से ही मिले हैं।

सारनाथ के स्थापत्य की जानकारी उत्खनन से प्राप्त वास्तुगत अवशेषों से होती हैं जिनमें स्तूप, विहार, मूलगंधकुटी तथा एकाश्मक - वेदिका प्रमुख हैं। सारनाथ बौद्धकला के उदाहरण मौर्य शासक अशोक के समय अर्थात तीसरी शती ई. पू. से प्राप्त होते हैं जिसकी अक्षुण्ण परम्परा ल. १२ वीं शती ई. तक गहड़वाल शासक गोविन्दचन्द्र (१११४-११५४ ई.) की बौद्ध मतावलम्बी रानी कुमारदेवी के काल तक मिलती है। कुमार देवी ने धर्मचक्रजिनविहार नाम से एक विशाल बौद्ध बिहार का निर्माण करवाया। अशोक ने सारनाथ में स्तूप और विशाल सिंहशीर्ष स्तंभ के माध्यम से तीसरी शती ई. पू. में जिस समृद्ध कला परम्परा की स्थापना की उसका कुषाणकाल में पल्लवन हुआ तथा गुप्तकाल (५ वीं - छठी शती ई.) में स्तूपों (धमेख), विहारों तथा मूर्तियों के निर्माण के साथ उस कला को पूर्णता प्राप्त हुई।

सारनाथ के स्थापत्य में धमेख स्तूप (धर्मचक्र स्तूप) का विशेष महत्व है, यद्यपि यहां से अन्य स्तूपों के उदाहरण भी मिले हैं (चित्र ५४)। धमेख स्तूप २७.२० मीटर व्यास और ३८.१५ मीटर ऊंचाई वाले स्थापत्य का उदाहरण है जो लगभग ११.२० मीटर की ऊंचाई तक चारों ओर पुष्प, लता - वल्लरियों एवं पक्षी अलंकरण वाले शिलापट्टों से आवृत्त है। गुप्तकालीन बौद्ध साहित्य में स्तूपों के ऊपर पहरावनी चढ़ाने का विवरण मिलता है जिसे 'देवदूष्य' कहते थे। धमेख स्तूप के शिलापट्टों पर 'देवदूष्य' की ही सजावट बनाई गई है। ये अलंकृत शिलापट्ट काशी की अलंकृत पाषाण - कला के उदाहरण हैं। धमेख स्तूप का प्राचीन नाम स्थिरपाल और बसन्तपाल के लेख के अनुसार धर्मचक्र - स्तूप था जो बुद्ध के धर्मोपदेश स्थली को इंगित करता है। तत्पश्चात् यह 'धमाख' और 'धमेख' नामों से जाना गया।

सारनाथ से आधा किलोमीटर दक्षिण - पश्चिम में एक ऊंचा ईटों का ढूहा है जिसे चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा - विवरण में स्तूप कहा है! वर्तमान में यह चौखण्डी स्तूप के नाम से जाना जाता है। चीनी यात्री ने इसकी ऊंचाई ९० मीटर बताई है।. चौखण्डी स्तूप के ऊपर एक अठपहल मुगलकालीन बुर्जी बनी हुई है।.इस स्तूप का निर्माण राजा टोडरमल के पुत्र राजा गोवर्धन ने अकबर की आज्ञा से सन् १५८८ ई. में करवाया था। बुर्जी से प्राप्त लेख में हुमायूं द्वारा यहां रात्रि निवास की स्मृति में इसके निर्माण का उल्लेख मिलता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। स्तूप का चौखंडी नाम प्राचीन नाम है। धमेख स्तूप के समीप ही अशोक द्वारा निर्मित धर्मराजिका स्तूप स्थित था जिसकी वर्तमान में केवल बुनियाद मात्र शेष है। सारनाथ की दो प्रसिद्ध मूर्तियां इसी स्तूप के निकट से प्राप्त हुई हैं। इनमें पहली कनिष्क के समय की विशाल बोधिसत्व मूर्ति है और दूसरी धर्मचक्रप्रवर्तन-मुद्रा वाली विश्व प्रसिद्ध गुप्तकालीन बुद्ध मूर्ति है। ह्वेनसांग ने सारनाथ के विशाल संघाराम में १५०० बौद्ध भिक्षुओं की उपस्थिति का उल्लेख किया है। पाल शासकों द्वारा भी सारनाथ में स्थापत्य का निर्माण करवाया गया था।

सारनाथ के उत्खनन से प्राप्त विहारों का भी स्थापत्य की दृष्टि के महत्व है। ये विहार कालक्रम की दृष्टि से कुषाणकाल से मध्यकाल के मध्य के उदाहरण हैं। इनमें 'धर्मचक्र - विहार' का निर्माण कन्नौज की बौद्ध धर्मानुरागी महारानी कुमारदेवी ने करवाया था जो कन्नौज के गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्रदेव (१२ वीं शती ई. का पूर्वार्ध) की रानी थीं। इन विहारों में प्रवेशद्वार, भिक्षुओं के रहने के लिये कक्ष, आंगन, बरामदा तथा कुंआ प्राप्त हुए हैं। एक विहार से विशाल सभागार भी मिला है जिसे प्रत्युस्थानशाला कहते थे। धर्मराजिका - स्तूप से कुछ दूर उत्तर दिशा की ओर मूलगंधकुटी है जो वर्तमान में मुख्य मंदिर के रूप में जाना जाता है।

मूलगंधकुटी के दक्षिणी चैत्य के नीचे सम्राट अशोक द्वारा बनवाई गई मौर्यकालीन एकाश्मक वेदिका का उदाहरण भी प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत वेदिका से लेख भी मिले हैं। अशोक द्वारा निर्मित मौर्यकालीन स्तंभ का अवशेष भी सारनाथ से मिला है जिसका शीर्ष भाग वर्तमान में सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है। प्रस्तुत स्तंभ पर मौर्यकालीन, कुषाणकालीन और गुप्तकालीन लेख हैं। अशोक का स्तंभ लेख उसकी राजाज्ञा है जिसमें उसने बौद्धसंघ में फूट डालने वालों को चेतावनी दी है। शुंगकाल (दूसरी - पहली शती ई. पू.) के अवशेषों के बारे में विस्तृत जानकारी नहीं मिलती है। किन्तु धर्मराजिका स्तूप के निकट पहली शती ई. पू. के कुछ ऐसे वेदिका स्तंभ मिले हैं जिनसे शुंगकाल में पूर्ववर्ती स्तूप के चारों ओर निर्माण कार्य का संकेत मिलता है।

सारनाथ की गुप्तकालीन मूर्तियां निःसंदेह भारतीय कला की सर्वश्रेष्ठ कृतियां हैं जिनमें शैली का परिष्कार और ओज स्पष्ट है। ध्यानमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा, भूमिस्पर्शमुद्रा में बैठी और अभय एवं वरदमुद्रा में खड़ी बुद्ध की भावपूर्ण मूर्तियों में आध्यात्मिक चिन्तन की अभिव्यक्ति श्रेष्ठतम स्तर पर हुई है। इन मूर्तियों में हल्के और इकहरे बदन वाली बुद्ध आकृतियों का आवयविक अनुपात, शारीरिक सौष्ठव और ओज प्रशंसनीय है। पारदर्शक वस्त्र तथा आकृतियों में लता - वल्लरियों का लयात्मक प्रवाह उनकी ऊर्जा और स्वरूप - सौन्दर्य दोनों को व्यक्त करते हैं। बुद्ध के आध्यात्मिक चिन्तन और अन्तर्दृष्टि के भाव की सहज अभिव्यक्ति इन कृतियों की भावभूमि को एक दूसरे ही स्तर पर ले जाती है जो सारनाथ की गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों का निजस्व रहा है।

पहली शती ई. में कुषाणकाल में बौद्धधर्म हीनयान और महायान सम्प्रदायों में विभक्त हो गया। फलस्वरूप बौद्धकला प्रतीकवाद से निकलकर मानव मूर्तियों के निर्माण के महत्वपूर्ण चरण में प्रवेश कर गयी। कुषाणकाल में ही मथुरा और गंधार में सर्वप्रथम बुद्ध की मानव मूर्तियों का निर्माण हुआ। कनिष्क के शासनकाल के तीसरे वर्ष में मथुरा के भिक्षुबल ने सारनाथ में लाल चित्तीदार पत्थर में बोधिसत्व की एक विशाल प्रतिमा स्थापित करवाई। इस मूर्ति के शीर्ष भाग में काशी की अलंकृत पाषाण - कला का उदाहरण छत्र द्रष्टव्य था। प्रस्तुत मूर्ति एवं छत्र दोनों ही सारनाथ के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित हैं। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त मूर्ति के अतिरिक्त अन्य मूर्तियां मुख्य रूप से चुनार के हल्के पीले रंग के बलुये पत्थर में उकेरी गई हैं। गुप्तकाल में चन्द्रगुप्त द्वितीय के अंतिम शासन वर्षों से कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त और परवर्ती गुप्त शासकों (कुमारगुप्त द्वितीय और बुधगुप्त) के काल में मुख्यतः पांचवीं शती ई. में सारनाथ में श्रेष्ठतम बौद्ध मूर्ति नें का निर्माण हुआ। ह्वेनसांग ने सातवीं शती ई. के यात्रा - वृत्तान्त में सारनाथ में हर्षवर्धन के समय में (६००-६४६ ई.) भी कलात्मक निर्माण कार्य का संकेत दिया है। १०१७ ई. में महमूद गजनवी ने बनारस पर आक्रमण कर सारनाथ को काफी क्षतिग्रस्त किया था।

सारनाथ के मौर्यकालीन पुरावशेष काशी की बौद्ध कला के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। उल्लेखनीय है कि अशोक का सारनाथ सिंहशीर्ष स्तंभ वर्तमान में अपनी स्वाभाविक और ओजपूर्ण रचना, प्रभावशाली पशु

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकृतियों के अंकन और शताब्दियों से सुरक्षित चमकदार आलेप के कारण भारत के राष्ट्रीय चिन्ह के रूप में गौरव प्राप्त कर रहा है। अशोक द्वारा निर्मित स्तंभों में एक विकास क्रम दिखाई देता है जिसकी पराकाष्ठा - सारनाथ सिंहशीर्ष में मिलती है। एक ओर यह सिंहशीर्ष अशोक के चक्रवर्तित्व को प्रकट करता है तो दूसरी ओर बुद्ध की चतुर्दिक फैली 'धम्मवाणी' को। मौर्यकालीन चमक का यह अद्वितीय उदाहरण मौर्यकाल के पूर्व या कालान्तर में नहीं मिलता। कुछ विद्वान इस चमक को ईरानी प्रभाव भी मानते हैं। प्रस्तुत सिंहशीर्ष के पांच प्रमुख भाग हैं। सर्वप्रथम ऊपर की ओर धर्मचक्र, पीठ से पीठ मिलाये बैठी चार सिंह आकृतियां, पशुओं के मध्य निर्मित चार चक्र तथा अन्त में चार पशुओं क्रमशः अश्व, गज, वृषभ और सिंह से युक्त गोल चौकी है। इन आकृतियों के नीचे उल्टी पद्म अथवा घट आकृति है और अन्त में सादी यष्टि है। प्रस्तुत स्वरूपं केवल कला ही नहीं अपितु धर्म अभिप्राय की भी सशक्त अभिव्यक्ति है। फलक स्थित सिंह -संघाट में शिल्पी ने मौर्य शिल्प का सर्वस्व प्रस्तुत कर दिया है। सिंह आकृतियों की ओजस्विता तथा जीवन्तता प्रशंसनीय है। स्तंभ पर बनी सभी पशु आकृतियां जीवन्तता और अर्थवत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। फलक पर बनी पशुओं एवं चक्र की आकृतियों को विद्वानों ने अलग - अलग दृष्टियों से विवेचित किया है।[1] अश्व, गज, वृषभ और सिंह बुद्ध के जीवन से संबंधित विषयों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं। गज बुद्ध के जन्म, अश्व महाभिनिष्क्रमण, वृषभ धर्मचक्रप्रवर्तन तथा सिंह शाक्य सिंह होने के सूचक हैं।

सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित धर्मचक्रप्रवर्तन - मुद्रा वाली बुद्ध की पद्मासीन मूर्ति गुप्तकाल ही नहीं वरन् सम्पूर्ण भारतीय कला की एक अद्वितीय रचना है (चित्र ५५)। प्रस्तुत मूर्ति में बाह्य (कायिक) और अभ्यन्तर (आध्यात्मिक) मान्यताओं को पूर्ण सन्तुलित रूप में संयोजित और अभिव्यक्त किया गया है। भारतीय मान्यताओं और स्वरूपात्मक लक्षणों का सन्तुलन तथा आध्यात्मिक चिन्तन का भाव बुद्ध के लोककल्याणकारी स्वरूप की सशक्त अभिव्यक्ति है। बुद्ध के मुख पर आध्यात्मिक शांति और करुणा का भाव है। आसन पर मध्य में स्थित धर्मचक्र के दोनों पार्श्वों में दानदाताओं की एवं अन्य आकृतियां बनी हैं जो मानों बुद्ध के धर्मोपदेश का लाभ उठा रही हैं। पारदर्शी वस्त्र बुद्ध के शारीरिक सौष्ठव की अभिव्यक्ति में पूर्णतया समर्थ है। इस मूर्ति में गंधर्व द्वय से वेष्टित अलंकृत प्रभामंडल अलौकिक है जिसके अलंकरण में काशी की पाषाण उकेरन की दक्षता और भव्यता दोनों प्रतिबिम्बित है।

धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा वाली मूर्ति के अतिरिक्त सारनाथ से बुद्ध की भूमिस्पर्शमुद्रा में भी कई मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। साथ ही बुद्ध की कई मानवाकार स्थानक मूर्तियां भी मिली हैं जिनमें उन्हें अभयमुद्रा में अभय प्रदान करते रूपायित किया गया है (चित्र ५६)। उपरोक्त सभी मूर्तियां सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित हैं। कुछ स्थानक प्रतिमायें भारत कला भवन, वाराणसी में भी सुरक्षित हैं। ये मूर्तियां गुप्त शैली के ओज और जीवन्तता की उदाहरण हैं। इनमें से कुछ मूर्तियां छत्रयुक्त भी हैं। इन मूर्तियों में काशी के मूर्तिकारों की विलक्षण प्रतिभा अभिव्यक्त हुई है।

सारनाथ में गुप्तकाल में ही बौद्ध देववाद का अतिशय विस्तार हुआ जिसमें काशी के शिल्पियों का भी महत्वपूर्ण योगदान था। इसी समय बुद्ध -चरित और उनसे संबंधित महत्वपूर्ण घटनाओं (जन्म, महाभिनिष्क्रमण, संबोधि और परिनिर्वाण) को साथ - साथ एक ही फलक पर उत्कीर्ण करने की परम्परा लोकप्रिय हुई। कथात्मक विषयों का सूक्ष्मता के साथ उत्कीर्णन इन मूर्तियों की दुर्लभ विशेषतायें हैं। ऐसे कुछ फलकों पर केवल चार दृश्य - जन्म, संबोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन और निर्वाण ही प्रदर्शित हैं जबकि कुछ में बुद्ध जीवन से संबंधित आठ घटनाओं का अंकन किया गया है। इन घटनाओं के अंकन में कोई निश्चित क्रम नहीं दिखाई देता है। सारनाथ संग्रहालय में प्रदर्शित एक फलक पर क्रमशः बुद्ध के जन्म, मारघर्षण और साथ में संबोधि तथा निर्वाण की घटनाएं उकेरी हैं। ऊपर बुद्ध के भिक्षादान तथा नालगिरी गज के आख्यान उकेरे हैं। इसी फलक पर तीसरे खंड में स्वर्ग से बुद्ध के अवतरण और इसके पार्श्व में श्रावस्ती के चमत्कार का दृश्यांकन है जिसमें बुद्ध अनेक -बुद्ध के रूप में प्रदर्शित हैं। सबसे ऊपरी खंड में धर्मचक्रप्रवर्तन और उसके पार्श्व में निर्वाण दृश्य हैं। फलकों की श्रृंखला में एक अन्य फलक पर तीन खंडों में बुद्ध चरित का दृश्यांकन हुआ है। ऊपर से प्रथम खंड में भूमिस्पर्शमुद्रा और धर्मचक्रप्रवर्तन-

१- द्रष्टव्य, वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला, वाराणसी, १९७७, पृ. ११८ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुद्रा में बुद्ध की आकृतियां बनी हैं। मध्य के खंड में महाभिनिष्क्रमण और सम्बोधि के दृश्यांकन तथा निचले खंड में बुद्ध की माता मायादेवी के गर्भ में श्वेत हस्ति के प्रवेश के माध्यम से बुद्ध जन्म के प्रसंग उत्कीर्ण हैं।

सातवीं शती ई. में सारनाथ में प्रचुर बौद्ध मूर्तियां बनीं जिनमें बोधिसत्व मंजुश्री एवं सिद्धैकवीर की मूर्तियां महत्वपूर्ण हैं। बोधिसत्व मंजुश्री परम्परानुरूप सुन्दर अलंकरणों से सुशोभित हैं। प्रस्तुत मूर्ति में मंजुश्री का दाहिना हाथ खंडित है किन्तु बायें में पद्म स्पष्ट है। मूर्ति द्विदल - पद्म पर स्थानकमुद्रा में है जिसके दोनों ओर सनाल - पद्म पर दो देवियां निरूपित हैं। इसी काल में सारनाथ में मैत्रेय, नीलकंठ अवलोकितेश्वर तथा वज्रसत्व मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। सारनाथ की मूर्ति शैली और लक्षणों का विस्तार पूर्वी भारत की बिहार और बंगाल की पालकालीन बौद्ध मूर्तियों में सुरक्षित है।

नवीं शती ई. में भी सारनाथ में बौद्ध मूर्तियों के निर्माण की परम्परा विकसित होती रही। इस काल की भूमिस्पर्शमुद्रा में बनी बुद्ध की एक मूर्ति वर्तमान में सारनाथ संग्रहालय में प्रदर्शित है। १२ वीं शती ई. में सारनाथ में जम्भल, वसुधारा तथा तारा की कई मूर्तियां बनीं जिनमें मध्यकालीन कलात्मक विशेषताएं लक्षणों एवं भंगिमाओं तथा अलंकरण की प्रधानता में द्रष्टव्य हैं। बौद्ध मूर्ति कला की दृष्टि से षडाक्षरी लोकेश्वर, षडाक्षरी महाविद्या, लोकनाथ, नीलकंठ एवं उच्छुष्म जम्भल की मूर्तियां काशी की अनुपम मध्यकालीन बौद्ध मूर्तियां हैं। इस प्रकार काशी में सारनाथ बौद्धकला की चेतना का प्रारंभ से ही प्रेरणा -स्रोत रहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नवम अध्याय

जैन मंदिर और मूर्तियां

जैन ग्रन्थों में काशी और उसकी राजधानी के रूप में वाराणसी का अनेकशः उल्लेख हुआ है। मध्यकाल में काशी के विभिन्न क्षेत्रों में जैन मंदिरों का निर्माण हुआ और उनमें छोटे - बड़े आकार की प्रभूत जैन मूर्तियां प्रतिष्ठित की गईं। जैन परम्परा में २४ तीर्थंकरों या जिनों की मान्यता है जिनमें से चार तीर्थंकरों का जन्म काशी में हुआ था। संभवतः यही कारण है कि जैन परम्परा में काशी का विशेष महत्व है। अयोध्या के बाद सर्वाधिक तीर्थंकरों की जन्मस्थली होने का श्रेय भी काशी को ही प्राप्त है। सातवें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और २३ वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ था। आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जन्म वाराणसी से पन्द्रह किलोमीटर पूर्व गंगा के किनारे स्थित चन्द्रपुरी में हुआ और ११ वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ की जन्मस्थली सिंहपुरी थी जिसकी सम्भावित पहचान सारनाथ से की गयी है।[१] सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ को केवलज्ञान भी वाराणसी में ही प्राप्त हुआ था। जैन ग्रन्थों के अनुसार तीर्थंकरों के पंचकल्याणकों से सम्बद्ध स्थान तीर्थस्थल बन जाते हैं।[२] २४ तीर्थंकरों में से केवल अंतिम दो तीर्थंकरों - पार्श्वनाथ और महावीर की ही ऐतिहासिकता निर्विवाद है।[३] जैन परम्परा में काशी के महत्व के कारण ही गुप्तकाल से काशी में जैन मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ जिसके उदाहरण राजघाट तथा वाराणसी के विभिन्न स्थलों से मिले हैं। काशी से मिली प्रारंभिक जैन मूर्तियां (गुप्तकाल से १२ वीं शती ई.) वर्तमान में भारत कला भवन, वाराणसी, राज्य संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व संग्रहालय, सारनाथ में सुरक्षित हैं। वक्षःस्थल में श्रीवत्स और सिर पर त्रिछत्र तीर्थंकर मूर्तियों की मुख्य विशेषताएं रही है। तीर्थंकरों को केवल दो ही मुद्राओं में निरूपित किया गया। ये दोनों ही ध्यान और तपस की मुद्राएं हैं। तीर्थंकर या तो ध्यान-मुद्रा में बैठे या कायोत्सर्ग में सीधे खड़े दिखाये गये हैं।

कुषाणकाल में ऋषभनाथ के साथ कन्धों पर लटकती जटाओं, पार्श्वनाथ के साथ सात सर्पफणों के छत्र और नेमिनाथ के साथ बलराम और कृष्ण की आकृतियों का अंकन प्रारंभ हुआ। अन्य तीर्थंकरों की पहचान अभिलेख में दिये गये नामों के आधार पर की गई है। तीर्थंकरों के साथ अष्टप्रातिहार्य,[४] विशिष्ट लांछन और यक्ष - यक्षी की कल्पना छठी - सातवीं शती ई. में की गई। काशी की प्रारंभिक जैन मूर्तियों में महावीर की सिंह-लांछनयुक्त गुप्तकालीन ध्यानस्थ मूर्ति और यक्ष एवं यक्षी (अम्बिका) की आकृतियों से वेष्टित सातवीं शती ई. की नेमिनाथ की मूर्ति विशेषतः उल्लेखनीय है (चित्र-५७)। वाराणसी एवं राजघाट से प्राप्त ये दोनों ही ध्यानस्थ जिन मूर्तियां भारत कला भवन (क्रमांक १६१, २१२) में सुरक्षित हैं। सातवीं से १२ वीं शती ई. के बीच की पार्श्वनाथ, विमलनाथ एवं कुछ अन्य तीर्थंकरों की मूर्तियां काशी के संग्रहालयों तथा १४ वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की अनेक तीर्थंकर एवं कुछ यक्ष - यक्षी प्रतिमायें स्थानीय जैन मंदिरों में सुरक्षित हैं, जिनका विस्तृत अध्ययन यहां अभीष्ट है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काशी में गुप्तकाल से २० वीं

१- सागरमल जैन, 'जैन परम्परा में काशी' युग - युगों में काशी, वाराणसी, १९८६, पृ. २७८ - ८४; मारुतिनंदन प्रसाद तिवारी, 'काशी की जैन कला', उत्तर प्रदेश (काशी अंक), पृ. २२-२४।

२- पंचकल्याणक -च्यवन (गर्भ में आगमन), जन्म, दीक्षा, कैवल्यप्राप्ति और निर्वाण- प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन की पांच विशिष्ट घटनाओं से संबंधित हैं।

३- जैन ग्रन्थों में वर्णित वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरों के नाम निम्नलिखित हैं - ऋषभनाथ या आदिनाथ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांशनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ (श्वेताम्बर परम्परा में मल्लिनाथ नारी तीर्थंकर हैं), मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर। उल्लेखनीय है कि जैन देवकुल में इन तीर्थंकरों को उपास्य देवों के रूप में सर्वाधिक प्रतिष्ठा प्राप्त है, जिन्हें हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि में 'देवाधिदेव' भी कहा है।

४- अष्टप्रातिहार्यों की सूची में अशोक वृक्ष, दिव्यध्वनि, सुरपुष्प - वृष्टि, त्रिछत्र, सिंहासन, चामरधर, प्रभामंडल एवं दुन्दुभि सम्मिलित हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शती ई. तक निरन्तर जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ जिनमें तीर्थंकर प्रतिमाओं का प्राधान्य है। तीर्थंकरों में ऋषभनाथ, अजितनाथ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, विमलनाथ, शान्तिनाथ, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की मूर्तियां मिली हैं। काशी के जैन मंदिरों में सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की सर्वाधिक मूर्तियां हैं जिसका कारण काशी का सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होना था। इन दोनों तीर्थंकरों से सर्प विशेषरूप से सम्बद्ध रहा है। इनके मस्तकों पर सर्पफणों के छत्र दिखाए गये हैं। काशी शिव की नगरी रही है। शिव के विभिन्न नामों में हमें अहीश और नागेश नाम भी मिलते हैं। सम्भवतः काशी में नाग - पूजन की परम्परा के कारण ही वाराणसी में जन्मे सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ तीर्थंकरों के साथ नाग को सम्बद्ध किया गया। स्वस्तिक - लांछन से युक्त सुपार्श्वनाथ के मस्तक के ऊपर १,५ या ९ सर्पफणों तथा सर्प - लांछन से युक्त पार्श्वनाथ के मस्तक के ऊपर ३,७ या ११ सर्पफणों के छत्रों के प्रदर्शन की परम्परा साहित्य और शिल्प दोनों से ज्ञात है। काशी के जैन मंदिरों के उदाहरणों में पार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्पफणों का छत्र और पीठिका पर सर्प - लांछन लगभग नियमित रूप से दिखाया गया है जबकि सुपार्श्वनाथ की मूर्ति में सर्पफणों का छत्र कुछ उदाहरणों में नहीं भी प्रदर्शित हुआ है। ऐसे उदाहरणों में सुपार्श्वनाथ की पहचान पीठिका पर उत्कीर्ण स्वस्तिक -लांछन तथा लेख में दिये गये नाम के आधार पर की गई है। काशी के जैन मंदिरों की १४ वीं से २० वीं शती ई. के बीच की तीर्थंकर मूर्तियों में कुछ अपवादों के अतिरिक्त सामान्यतः अष्टप्रातिहार्यों और यक्ष - यक्षी को नहीं दिखाया गया है। इन उदाहरणों में सामान्यतः तीर्थंकरों को ध्यानमुद्रा में आसीन और कभी - कभी कायोत्सर्ग में दिखाया गया है। तीर्थंकरों के लांछन परम्परा के अनुरूप पीठिका पर उत्कीर्ण हैं। १० वीं - ११ वीं शती ई. तक तीर्थंकर मूर्तियां विकास की पूर्णता प्राप्त कर लेती हैं जिनमें अष्टप्रातिहार्यों एवं तीर्थंकरों के स्वतंत्र लांछनों के साथ ही उनके पारम्परिक यक्ष - यक्षी युगल, नवग्रह, शान्ति देवी तथा परिकर में कुछ अन्य आकृतियां बनाई गईं। काशी की परवर्ती तीर्थंकर मूर्तियों में उपर्युक्त विशेषताओं का न दिखाया जाना सर्वथा आश्चर्यजनक है। केवल कुछ उदाहरणों में (भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर एवं भदैनी स्थित सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर) जिन - संयुक्त एवं स्वतंत्ररूप से यक्ष - यक्षियों की मूर्तियां उकेरी गयीं। इनमें कुबेर या सर्वानुभूति और मातंग यक्ष तथा चक्रेश्वरी, काली, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों का निरूपण हुआ है।

काशी की जैन मूर्तियां श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं से संबंधित हैं। ये मूर्तियां कृष्ण और श्वेत संगमरमर और कभी - कभी धातु में उकेरी गई हैं। व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर इन मूर्तियों की काल सीमा वि. सं. १०४० (९८३ ई.) से वि. सं. २०२० (१९६३ ई.) के बीच निर्धारित की जा सकती है।

जिनप्रभ सूरि कृत **कल्पप्रदीप** या **विविधतीर्थकल्प** (१४ वीं शती ई.) के **वाराणसीकल्प** में काशी के पार्श्वनाथ मंदिर का उल्लेख हुआ है।[५] वर्तमान में भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर की तीर्थंकर मूर्तियों के पीठिका लेखों में दी गयी तिथियों (११ वीं - १६ वीं शती ई.) से भी **कल्पप्रदीप** के सन्दर्भ की पुष्टि होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस स्थान पर ११ वीं - १२ वीं शती ई. में कोई पार्श्वनाथ मंदिर था। **कल्पप्रदीप** की एक अन्य महत्वपूर्ण सूचना के अनुसार देव - वाराणसी जहां विश्वनाथ का मंदिर था वहीं २४ तीर्थंकरों का सामूहिक अंकन करने वाले पट्ट (चतुर्विंशति -जिनपट्ट) की भी पूजा होती थी। बनारसी दास (१७ वीं शती ई.) ने अपनी आत्मकथा अर्द्धकथानक (१७ वीं शती ई.) में भी बनारस स्थित पार्श्वनाथ मंदिर का उल्लेख किया है।[६] सारनाथ स्थित श्रेयांसनाथ मंदिर के अतिरिक्त काशी के अन्य सभी मंदिर सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ को समर्पित हैं। ये मंदिर श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के हैं।[७] विशप हेब्बर के अनुसार १९ वीं शती ई. में काशी में जैन पर्याप्त संख्या में थे।

काशी के जैन मंदिर नागर शैली के हैं। सम्मुख योजना में ये मंदिर अर्धमंडप, मण्डप और गर्भगृह से युक्त हैं। गर्भगृह में सामान्यतः मुख्य तीर्थंकर के अतिरिक्त अन्य कई तीर्थंकरों की भी मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। तीर्थंकर मूर्तियां सामान्यतः गर्भगृह में बनीं स्वतंत्र

५- विविधतीर्थकल्प (जिनप्रभ सूरि कृत), सं० मुनी श्री जिन विजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १०, कलकत्ता, बम्बई, १९३४।
६- मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास, द्वितीय संस्करण, वाराणसी, १९८५, पृ. १९८।
७- द्रष्टव्य, मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, 'काशी की जैनकला', पृ. २३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदियों पर रखी हैं। ये मूर्तियां अधिकांशतः एकाकी और पार्श्ववर्ती आकृतियों से रहित हैं। सुपार्श्वनाथ को समर्पित तीन मंदिर (एक श्वेताम्बर और दो दिगम्बर) भदैनी मुहल्ले में गंगा तट पर स्थित हैं। श्वेतांबर मंदिर विक्रम सं. १८२५ (१७६८ ई.) का है जिसे शाह गोवर्धन के पुत्र सर्वपद सूरियों ने बनवाया था। दिगंबर मंदिर विक्रम सं. १९१२ (१८५५ ई.) में गणेशीलाल के पुत्र प्रभुदास, अरिहंतदास, जिनेश्वरदास एवं मुनीश्वरदास द्वारा बनवाया गया था। पार्श्वनाथ मंदिर मैदागिन, गोलघर, नरिया, भेलूपुर, खोजवां और रामघाट में हैं। मैदागिन का दिगम्बर मंदिर लगभग १२५ वर्ष पूर्व बिहारी लाल जैन द्वारा बनवाया गया था। गोलघर का दिगंबर मंदिर पंचायत मंदिर है। खोजवां, नरिया और भेलूपुर के मंदिर भी दिगम्बर संप्रदाय के हैं। रामघाट का मंदिर श्वेताम्बर मंदिर है। भेलूपुर में पार्श्वनाथ के तीन मंदिर हैं जिनमें दो दिगम्बर और एक श्वेताम्बर है। दिगम्बर मंदिरों में एक विक्रम सं. १८२५ (१८६८ ई.) का है जिसका निर्माण वाराणसी के खड्गसेन उदयराज ने करवाया था।

काशी के जैन मंदिरों की प्राचीनतम मूर्ति भेलूपुर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर की विक्रम सं. १०४० (९८३ ई.) की ऋषभनाथ की विशाल मूर्ति है (चित्र ५८)। ध्यानमुद्रा में पद्म पर आसीन ऋषभनाथ की प्रस्तुत मूर्ति में सिंहासन के सूचक सिंह आकृतियों के मध्य वृषभ लांछन की आकृति बनी है। सिंहासन के नीचे सिंह आकृतियां अत्यन्त उग्ररूप में पैर उठाये दिखायी गयी हैं जो उत्तर भारत की तीर्थंकर मूर्तियों की सामान्य विशेषता रही है। मध्ययुगीन तीर्थंकर मूर्तियों के समान ही यहां भी सिंहासन के नीचे नवग्रहों का अंकन हुआ है। सूर्य से शनि तक सभी सात ग्रहों को ललितमुद्रा में विराजमान और एक हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त करते और दूसरे में संभवतः कोई पात्र लिये दिखाया गया है। अन्यत्र की भांति यहां न तो सूर्य को उत्कुटकासन में दिखाया गया है और न ही परम्परा के अनुरूप उनके दोनों हाथों में सनाल - पदम का प्रदर्शन हुआ है। राहु को परम्परा के अनुरूप अर्धकाय और केतु को अर्धसर्पाकार रूप में हाथ जोड़े हुए दिखाया गया है। सिंहासन के प्रत्येक छोर पर दो - दो आकृतियां बनी हैं। दाहिनी ओर चतुर्भुज चक्रेश्वरी यक्षी और गजलक्ष्मी की आकृतियां उकेरी हैं। ज्ञातव्य है कि चक्रेश्वरी ऋषभनाथ की यक्षी है। मानवदेहधारी गरुड पर आरूढ़ चक्रेश्वरी का नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है जबकि अन्य तीन हाथों में चक्र, गदा और शंख प्रदर्शित हैं। गजलक्ष्मी के दो ऊर्ध्व करों में पद्म हैं जिनके ऊपर गज आकृतियां बनी हैं। देवी का नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है जबकि बायें में फल है। सिंहासन के बायें छोर पर २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ की द्विभुज यक्षी अम्बिका और किसी जैन यक्ष की आकृतियां आकारित हैं। दिगम्बर परम्परा के शिल्पशास्त्रों के अनुरूप ही अम्बिका के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि और गोद में बालक दिखाया गया है।[८] नीचे की यक्ष आकृति के एक हाथ में पद्म और दूसरे में फल हैं। तीर्थंकर के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह अंकित है और उनकी केश - रचना गुच्छकों के रूप में है। मूलनायक के साथ दोनों पार्श्वों में चामरधारी - सेवक, सिर के ऊपर त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक और उड्डीयमान मालाधारी गन्धर्व - युगल की आकृतियां बनी हैं। साथ ही तीर्थंकर के अभिषेक के लिए जलकलशधारी दो गजारूढ़ आकृतियां भी दिखाई गई हैं। उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन तीर्थंकर मूर्तियों में उपर्युक्त विशेषतायें सभी उदाहरणों में मिलती हैं। परिकर में तीर्थंकरों की चार कायोत्सर्गमुद्रा में खड़ी लघु आकृतियां भी देखी जा सकती हैं। तीर्थंकर मूर्तियों का निर्वस्त्र होना उनके दिगम्बर परम्परा से संबंधित होने का सूचक है।

१० वीं - ११ वीं शती ई. की कई अन्य जैन मूर्तियां भी मिली हैं जिनमें तीर्थंकरों के साथ ही जैन युगलों की भी मूर्तियां हैं। ल. १० वीं शती ई. की दो तीर्थंकर मूर्तियां क्रमशः प्रहलादघाट स्थित शीतला मंदिर में और ललिताघाट की सीढ़ियों पर दीवार में लगी हुई हैं। दोनों उदाहरणों में तीर्थंकरों को निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग में निरूपित किया गया है। शीतला मंदिर की मूर्ति में कन्धों पर लटकती जटाओं के आधार पर तीर्थंकर की पहचान ऋषभनाथ से की जा सकती है। ऋषभनाथ के दोनों पार्श्वों में ध्यानस्थ तीर्थंकरों की दो लघु आकृतियां भी उकेरी हैं। ऊपर की ओर मालाधारी गन्धर्वों की दो आकृतियां देखी जा सकती हैं। अन्य कोई प्रातिहार्य नहीं दिखाया गया है। ललिताघाट की दूसरी तीर्थंकर मूर्ति के घुटनों के नीचे का भाग पूरी तरह खंडित है। सम्भवतः खंडित पीठिका भाग पर ही तीर्थंकर का लांछन उत्कीर्ण रहा होगा जिसके अभाव में तीर्थंकर की

८- प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७६; प्रतिष्ठातिलकम ७.२२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पहचान संभव नहीं है। मूलनायक के दोनों पार्श्वों में चामरधारी सेवक, सिर के पीछे प्रभामंडल, ऊपर दुन्दुभिवादक, अशोक वृक्ष की पत्तियां और दो मालाधारी गन्धर्वों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। मूलनायक के दोनों पार्श्वों में ध्यानमुद्रा में विराजमान तीर्थंकरों की लघु आकृतियां भी उकेरी हैं।

ल. १० वीं शती ई. की दो जैन - युगल मूर्तियां भी प्रहलादघाट स्थित शीतला मंदिर में देखी जा सकती हैं। ज्ञातव्य है कि खजुराहो, देवगढ़, मथुरा तथा अन्य कई दिगम्बर स्थलों पर जैन - युगलों का अंकन विशेष लोकप्रिय रहा है। जैन - युगल मूर्तियों में सामान्यतः एक वृक्ष के नीचे स्त्री - पुरुष युगल को स्वतंत्र आसनों पर विराजमान और एक हाथ से अभय या वरदमुद्रा व्यक्त करते और दूसरे से गोद में आसीन बालक को पकड़े हुये दिखाया गया है। कभी - कभी युगलों के एक हाथ में फल या कलश है और कुछ में बालक केवल स्त्री की गोद में दिखाया गया है। वृक्ष के ऊपरी भाग में तीर्थंकर की लघु आकृति के उत्कीर्णन के माध्यम से उनके जैन परम्परा से संबंधित होने का संकेत दिया गया है। साथ ही मूर्ति के ऊपरी भाग में मालाधारी गन्धर्वों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। कुंभारिया, दिलवाड़ा एवं ओसियां के श्वेताम्बर स्थलों पर २४ तीर्थंकरों के माता - पिता का सामूहिक अंकन किया गया है जिनमें माता की गोद में बालक और आकृतियों के नीचे उनके नाम दिये गये हैं।[६] दिगम्बर स्थलों पर ऊपर वर्णित विशेषताओं वाले स्वतंत्र जैन - युगलों का अंकन मिलता है। इन जैन - युगलों की अलग - अलग पहचान की गई है किन्तु संभवतः इनका अभिप्राय भी तीर्थंकरों के माता - पिता का निरूपण ही था। शीतला मंदिर की जैन - युगल मूर्तियों के दोनों ही उदाहरण लक्षण की दृष्टि से समान हैं। एक उदाहरण में स्त्री - पुरुष दोनों की गोद में बालक दिखाया गया है जबकि दूसरे में बालक केवल स्त्री की गोद में देखा जा सकता है। पुरुष के एक हाथ में फल प्रदर्शित है। दोनों ही उदाहरणों में स्त्री - पुरुष ललितासीन हैं जिनके मध्य में वृक्ष एक विभाजक के रूप में उत्कीर्ण है। वृक्ष के ऊपर तीर्थंकर की छोटी आकृति और दोनों ऊपरी सिरों पर मालाधारी गन्धर्वों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

१० वीं शती. ई. के अंत की नेमिनाथ की एक मनोज्ञ मूर्ति भदैनी स्थित १६ वीं शती ई. के सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में सुरक्षित है (चित्र ५६)। मूर्ति में नेमिनाथ ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर आसीन हैं। पीठिका से लटकने वाले आसन पर नेमिनाथ का शंख -लांछन उत्कीर्ण है। मूर्ति का ऊपरी भाग पूरी तरह खंडित है केवल प्रभामंडल का कुछ अंश और पार्श्ववर्ती चामरधारी सेवकों की आकृतियां ही सुरक्षित हैं। गुच्छकों के रूप में बनी केश - रचना उष्णीष के रूप में आबद्ध है। सिंहासन छोरों पर द्विभुज यक्ष और यक्षी की आकृतियां बनी हैं। दक्षिण पार्श्व की यक्ष आकृति के हाथों में धन का थैला और कलश स्पष्ट हैं जबकि यक्षी के एक हाथ में आम्रलुम्बि स्पष्ट है जो अम्बिका की विशिष्टता है। यक्षी के दूसरे हाथ में पुत्र के स्थान पर संभवतः धन का थैला दिखाया गया है जो परम्परा निर्दिष्ट नहीं है।

संवत् ११५३ (१०९६ ई.) की चार तीर्थंकर मूर्तियां भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में प्रतिष्ठित हैं। सभी उदाहरण काले पत्थर में उत्कीर्ण हैं। इनमें तीर्थंकर सिंहासन पर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। परिकर में २३ ध्यानस्थ और पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग (निर्वस्त्र) तीर्थंकरों की लघु आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार इन मूर्तियों में मूलनायक सहित कुल २६ तीर्थंकर आकृतियां उकेरी हैं। चार उदाहरणों में से तीन में सिंहासन के मध्य में उत्कीर्ण धर्मचक्र के दोनों ओर मृग -लांछन की दो आकृतियां और एक उदाहरण में वृषभ - लांछन की दो आकृतियां बनी हैं जिनके आधार पर उनकी पहचान क्रमशः सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ (मृग-लांछन) और प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ (वृषभ -लांछन) से की जा सकती है। सिंहासन के मध्य सभी उदाहरणों में अंकुश, अभयमुद्रा और पद्मधारिणी चतुर्भुजा शान्तिदेवी की आकृति बनी है। साथ ही सिंहासन के सूचक सिंहों के दोनों ओर दो गज आकृतियों का अंकन विशेषतः ध्यातव्य है। सिंहासन पर शान्तिदेवी और गज आकृतियों का अंकन मुख्यतः गुजरात और राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों की विशेषता रही है जिन्हें ओसियां (महावीर मंदिर एवं देवकुलिका), घाणेराव (महावीर मंदिर), सादड़ी (पार्श्वनाथ मंदिर), कुम्भारिया एवं दिलवाड़ा (विमलवसही, लूणवसही) की श्वेताम्बर तीर्थंकर मूर्तियों में नियमित रूप से देखा जा सकता है। तीर्थंकरों के शीर्षभाग में त्रिछत्र, कलशधारी गज आकृतियां और अशोक - वृक्ष तथा दुन्दुभि या तुरहीवादन करती (दिव्यध्वनि की सूचक) आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष और यक्षी की आकृतियां

६- यू० पी० शाह, पेरेन्ट्स ऑफ दि तीर्थंकरज, बुलेटिन ऑफ दि प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई, अंक ५,१९५५-५७, पृ. २४।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं दिखाई गई हैं। समान विवरणों वाली काले पत्थर की मृग - लांछन युक्त सं. ११७७ (११२० ई.) की शान्तिनाथ की एक अन्य मूर्ति भी भेलूपुर के दिगम्बर जैन मंदिर में देखी जा सकती है।

भेलूपुर स्थित पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में ही सं. ११८८ (११३१ ई.) की काले पत्थर की दो विशाल ध्यानस्थ मूर्तियां भी प्रतिष्ठित हैं जिनमें कोई भी प्रातिहार्य नहीं दिखाया गया है। एक उदाहरण में पीठिका पर सर्प और मस्तक पर नौ सर्पफणों का छत्र उत्कीर्ण है जिसके आधार पर तीर्थंकर की पहचान पार्श्वनाथ से की जा सकती है। दूसरे उदाहरण में पीठिका पर उत्कीर्ण स्वस्तिक लांछन के आधार पर यद्यपि तीर्थंकर की पहचान सुपार्श्वनाथ से की जा सकती है किन्तु मस्तक पर सर्पफणों के छत्र का न दिखाया जाना आश्चर्यजनक है।

भेलूपुर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में सं. १३३५ (१२७८ ई.) की पीतल की दो छोटी तीर्थंकर मूर्तियां (६x५ से. मी. तथा ७.५ x४ से. मी.) भी सुरक्षित हैं जिनमें सात सर्पफणों के छत्र से आवेष्टित पार्श्वनाथ को ध्यानमुद्रा में दिखाया गया है। इसी मंदिर में १३ वीं - १४ वीं शती ई. की सफेद संगमरमर में उकेरी एक तीर्थंकर मूर्ति भी प्रतिष्ठित है। कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े तीर्थंकर के साथ कोई प्रातिहार्य या लांछन नहीं दिखाया गया है।

पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होने के कारण भेलूपुर के श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन मंदिरों में न केवल विभिन्न क़ालों की पार्श्वनाथ की मूर्तियां ही रखी गईं वरन् पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती की कुछ स्वतंत्र मूर्तियां भी स्थापित की गईं। काशी के जैन मंदिरों की तीर्थंकर मूर्तियों में केवल कुछ ही उदाहरणों में सिंहासन छोरों पर यक्ष और यक्षी युगलों का अंकन हुआ है। इस दृष्टि से सं. १५४८ (१४९१ ई.) की भेलूपुर के पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर की पद्मावती यक्षी की दो मूर्तियां विशेष महत्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियां राजस्थान के जीवराज पापड़ीवाल द्वारा स्थापित की गई हैं। पद्मावती यक्षी के निरूपण में स्पष्टतः दिगम्बर ग्रन्थों की परम्परा का पालन किया गया है। एक उदाहरण में यक्षी दोनों पैर मोड़कर और दूसरे में महाराज - लीलासन में बैठी है। चतुर्भुजा - पद्मावती के मस्तक पर तीन सर्पफणों का छत्र दिखाया गया है जिसके ऊपर सात सर्पफणों के छत्र वाले पार्श्वनाथ की छोटी ध्यानस्थ मूर्ति बनी है। ज्ञातव्य है कि यक्ष - यक्षी की स्वतंत्र मूर्तियों में शीर्षभाग में संबंधित तीर्थंकरों के उत्कीर्णन की परम्परा रही है। एक मूर्ति में यक्षी के आसन के समीप उसका पारम्परिक वाहन कुक्कुट भी दिखाया गया है। पद्मासीन यक्षी के तीन हाथों में पद्म, अंकुश और पद्म स्पष्ट हैं जबकि दूसरे उदाहरण में तीन हाथों में अंकुश, पद्म और अक्षमाला की ही पहचान संभव है।

प्रतिष्ठासारसंग्रह एवं प्रतिष्ठासारोद्धार में कुक्कुट या कुक्कुट - सर्प - वाहन वाली पद्मावती का चतुर्भुजी, षड्भुजी और चतुर्विंशतिभुजी स्वरूपों में ध्यान किया गया है। उसके हाथों में अंकुश, पद्म, अक्षसूत्र और पाश का मुख्य आयुधों के रूप में उल्लेख हुआ है। यक्षी के मस्तक पर तीन सर्पफणों के छत्र दिखाने का भी विधान मिलता है।[१०]

पद्मावती यक्षी के प्रतिष्ठावर्ष (सं. १५४८ =१४९१ ई.) की पांच ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियां भी भेलूपुर के ही पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में सुरक्षित हैं। श्वेत संगमरमर में उकेरी इन तीर्थंकर मूर्तियों में पीठिका पर लांछन और अष्टप्रातिहार्य नहीं दिखाये गये हैं। केवल सर्पफणों के छत्र के आधार पर उनकी पहचान की जा सकती है। तीन उदाहरणों में शीर्षभाग में नौ सर्पफणों का छत्र और दो उदाहरणों में सात सर्पफणों के छत्र दिखाये गये हैं जिनके आधार पर शास्त्रीय परम्परा की दृष्टि से तीर्थंकरों की पहचान क्रमशः सुपार्श्वनाथ (नौ सर्पफण) और पार्श्वनाथ (सात सर्पफण) से की जा सकती है। किन्तु मूर्त उदाहरणों में पार्श्वनाथ के साथ सात सर्पफणों के छत्र के स्थान पर कहीं - कहीं नौ सर्पफण भी दिखाये गये हैं। लगभग इसी समय की या कुछ बाद की सात सर्पफणों वाली पार्श्वनाथ की एक और ध्यानस्थ मूर्ति भी इस मंदिर में सुरक्षित है। इस मंदिर में सं. १६५५ (१५९८ ई.) की काले पत्थर में बनी पांच सर्पफणों वाली दो अन्य ध्यानस्थ मूर्तियां भी सुरक्षित हैं जिनकी पहचान पांच सर्पफणों के आधार पर सुपार्श्वनाथ से की जा सकती है। इसी मंदिर की सं. १६६४ (१६०७ ई.) की श्वेत संगमरमर की दो अन्य ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियों में से एक उदाहरण में पीठिका पर पार्श्वनाथ का सर्प - लांछन और मस्तक पर नौ सर्पफणों का छत्र प्रदर्शित है। प्रातिहार्य या यक्ष - यक्षी नहीं दिखाये गये हैं।

१०- प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६७-७१: प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७४: मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी, जैन प्रतिमाविज्ञान, पृ. २३५-३६।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भेलूपुर में खड्गसेन उदयराज लमेचवाल द्वारा बनवाया गया सं. १९२५ (१८६८ ई.) का एक दूसरा दिगम्बर जैन मंदिर भी है जिसमें केन्द्रीय तथा पार्श्ववर्ती वेदिकाओं पर तीर्थंकरों की सं. १९२५ (१८६८ ई.) की दस से अधिक तीर्थंकर मूर्तियां सुरक्षित हैं (चित्र ६०)। इनमें तीर्थकंरों को बिना प्रातिहार्यो के ध्यानमुद्रा में आसीन दिखाया गया है। काले रंग के संगमरमर में उकेरी इन तीर्थंकर मूर्तियों में वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का अंकन स्पष्ट है। दो उदाहरणों में शंख -लांछन के आधार पर नेमिनाथ, एक में पीठिका पर सर्प -लांछन और मस्तक पर ११ सर्पफणों के छत्र तथा दो अन्य में सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर पार्श्वनाथ से पहचान संभव है। इस प्रकार पार्श्वनाथ की कुल तीन मूर्तियां हैं। अन्य उदाहरणों में वृषभ, गज, कूर्म एवं सिंह लांछनों के आधार पर क्रमशः ऋषभनाथ, अजितनाथ, मुनिसुव्रत (२० वें तीर्थंकर) और महावीर से पहचान संभव है।

भेलूपुर के पार्श्वनाथ श्वेताम्बर मंदिर में श्वेत संगमरमर में बनी कई तीर्थंकर मूर्तियां सुरक्षित हैं। मूल वेदिका की सभी पांच ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियों का पीठिका भाग और उन पर खुदा लेख बाद में लगाये गये प्लास्टर के नीचे छिप गया है। केवल मध्य की सर्प-लांछन और नौ सर्पफणों के छत्रवाली तीर्थंकर मूर्ति की पहचान पार्श्वनाथ से की जा सकती है। एक अन्य उदाहरण में पीठिका पर महावीर का सिंह लांछन भी देखा जा सकता है। यद्यपि मूल वेदिका की तीर्थंकर मूर्तियों के पीठिका लेख प्लास्टर में छिपे हुए हैं किन्तु समीपवर्ती रथिका की तीर्थंकर मूर्ति की पीठिका पर सं. १६७१ (१६१४ ई.) का लेख देखा जा सकता है। मृग-लांछन के आधार पर मूर्ति की पहचान १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ से की जा सकती है।

भदैनी में सुपार्श्वनाथ के दो दिगम्बर और एक श्वेताम्बर मंदिर हैं जिनमें विक्रम सं. १८२५ (१७६८ ई.) से सं. १९५२ (१८९५ ई.) के मध्य की कई तीर्थंकर मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। भदैनी में सुपार्श्वनाथ के श्वेताम्बर मंदिर में संगमरमर में उकेरी तीन तीर्थंकर मूर्तियां देखी जा सकती हैं। ध्यानमुद्रा में विराजमान तीर्थंकरों के साथ कोई प्रातिहार्य या लांछन नहीं दिखाया गया है। मध्य की तीर्थंकर मूर्ति की पीठिका पर विक्रम सं. १८२५ (१७६८ ई.) का लेख है। यद्यपि मस्तक पर सर्पफणों का छत्र नहीं दिखाया गया है किन्तु पीठिका लेख में सुपार्श्वनाथ का नाम स्पष्ट है। पार्श्ववर्ती तीर्थंकर मूर्तियों की पीठिका पर विक्रम सं. १८७३ (१८१६ ई.) का लेख है।

भदैनी स्थित सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर के एक उदाहरण में श्वेत और काले संगमरमर में उकेरी विक्रम सं. १९१३ (१८५६ ई.) की पांच तीर्थंकर मूर्तियां, एक जिन चौमुखी (या प्रतिमासर्वतोभद्रिका) तथा गर्भगृह के बाहर के आले पर सुपार्श्वनाथ के पद्मासनस्थ यक्ष और यक्षी की मूर्तियां देखी जा सकती हैं। सभी उदाहरणों में पीठिका लेख में विक्रम सं. १९१३ (१८५६ ई.) की तिथि दी गई है। श्रीवत्स से युक्त और उष्णीष के रूप में आबद्ध केश - रचना वाली ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियों के साथ प्रातिहार्य और यक्ष - यक्षी नहीं दिखाये गये हैं। काले संगमरमर की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी मूर्तियां श्वेत संगमरमर में बनी हैं। तीन उदाहरणों में पीठिका के मध्य में स्वस्तिक - लांछन और लेख में सुपार्श्वनाथ का नाम दिया है। इन उदाहरणों में सुपार्श्वनाथ के शीर्ष भाग में सर्पफणों के छत्र का न दिखाया जाना आश्चर्यजनक है। एक उदाहरण में पीठिका पर अंकित शंख -लांछन के आधार पर तीर्थंकर की पहचान नेमिनाथ से की जा सकती है। पांचवीं तीर्थंकर मूर्ति के मस्तक पर सात सर्पफणों का छत्र है जो पार्श्वनाथ से संबंधित है।

संवत् १९१३ (१८५६ ई.) की एक जिन -चौमुखी मूर्ति में चारों ओर तीर्थंकरों की चार निर्वस्त्र कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। चौमुखी का ऊपरी भाग मंदिर शिखर के रूप में निर्मित है। चौमुखी मूर्ति में किसी भी तीर्थंकर के साथ कोई लांछन नहीं दिखाया गया है, अतः यह कह पाना संभव नहीं है कि इस चौमुखी मूर्ति में किस तीर्थंकर का निरूपण अभीष्ट था। यहां उल्लेखनीय है कि जैन कला में कुषाणकाल से ही चौमुखी -जिन मूर्तियों का अंकन मिलने लगता है जिसके कई उदाहरण मथुरा से मिले हैं। इन मूर्तियों के पीठिका लेखों में उन्हें जिन - चौमुखी, चतुर्मुख - जिन प्रतिमा और प्रतिमासर्वतोभद्रिका कहा गया है जिसका अर्थ है ऐसी प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है। कुषाणकालीन जिन -चौमुखी मूर्तियों में एक ही शिलाखंड के चारों ओर चार अलग - अलग तीर्थंकरों की मूर्तियां बनी हैं। आगे चलकर जिन -चौमुखी मूर्तियों में चारों ओर एक ही जिन की चार आकृतियां भी बनाई गईं। सुपार्श्वनाथ मंदिर का उपर्युक्त उदाहरण संभवतः दूसरी कोटि की चौमुखी मूर्ति का उदाहरण है जिसमें एक ही

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन की चार आकृतियां दिखाई गई हैं।

उपर्युक्त मंदिर के गर्भगृह के बाहर के आले की यक्ष - यक्षी मूर्तियों में यक्ष को द्विभुज और यक्षी को चतुर्भुजा दिखाया गया है। पद्मासन में बैठी वृषभ-वाहन वाली यक्षी के तीन हाथों में फल, घण्टा और खड्ग प्रदर्शित हैं जबकि एक हाथ वरदमुद्रा में है। सुपार्श्वनाथ की यक्षी काली के निरूपण में दिगम्बर परम्परा का पालन किया गया है, जिसमें वृषभारूढ़ा काली के करों में घंटा, त्रिशूल (या शूल), फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है।[११] सुपार्श्वनाथ के सिंह- वाहन वाले मातंग यक्ष के हाथों में शूल और दंड दिखाया गया है। यहां भी स्पष्टतः दिगम्बर परम्परा के शास्त्रीय ग्रन्थों का पालन किया गया है जिनमें सिंह- वाहन वाले मातंग यक्ष को द्विभुज और करों में दंड और शूल (या वज्र) से युक्त निरूपित किया गया है।[१२]

भदैनी स्थित सुपार्श्वनाथ के दूसरे दिगम्बर जैन मंदिर में सं. १९५२ (१८९५ ई.) की लगभग १० तीर्थंकर मूर्तियां हैं जो श्वेत और काले संगमरमर में निर्मित हैं और दो अलग - अलग वेदियों पर प्रतिष्ठित हैं। इन वेदियों पर सं. १९६३ (१९०६ ई.) एवं सं. २०३० (१९७३ ई.) की भी कुछ तीर्थंकर मूर्तियां हैं। इस मंदिर की लगभग १० वीं शती ई. की शंख-लांछन और यक्ष - यक्षी से युक्त नेमिनाथ की छोटी मूर्ति की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। सं. १९५२ से सं. २०३० के सभी उदाहरणों में तीर्थंकरों को बिना किसी प्रातिहार्य के ध्यानमुद्रा में आसीन दिखाया गया है। श्रीवत्स से शोभित तीर्थंकर मूर्तियां लम्बकर्ण, उष्णीष और गुच्छकों के रूप में बनी केश - रचना वाली हैं। केन्द्रीय वेदिका की काले पत्थर की तीन मूर्तियों में से दो के आसन पर स्वस्तिक अंकित है जिसके आधार पर सर्पफणों के अभाव में भी सुपार्श्वनाथ से उनकी पहचान की जा सकती है। तीसरी मूर्ति के आसन पर सर्प अंकित है जो पार्श्वनाथ का लांछन है। केन्द्रीय वेदिका की ही श्वेत संगमरमर की सं. १९५२ (१८९५ ई.) की चार ध्यानस्थ मूर्तियों में से दो की पीठिका पर सुपार्श्वनाथ का स्वस्तिक -लांछन बना है किन्तु सर्पफणों का छत्र यहां भी नहीं दिखाया गया है। तीसरी मूर्ति के मस्तक पर सुपार्श्वनाथ का लक्षण पांच सर्पफणों का छत्र बना है। चौथी मूर्ति के आसन पर चन्द्र अंकित है जिसके आधार पर मूर्ति की पहचान चन्द्रप्रभ से की जा सकती है। मंदिर की सं. १९६३ (१९०६ ई.) की काले पत्थर की कायोत्सर्ग मूर्ति में तीर्थंकर दिगम्बर परम्परा के अनुरूप निर्वस्त्र हैं। मूर्ति के आसन पर वृषभ -लांछन अंकित है जिसके आधार पर इसकी पहचान ऋषभनाथ से की जा सकती है। पार्श्ववर्ती वेदी की सं. १९५२ (१८९५ ई.) की दो ध्यानस्थ मूर्तियों में पीठिका पर सर्प- लांछन और मस्तक पर सात सर्पफणों का छत्र देखा जा सकता है जिसके आधार पर मूर्ति की पहचान पार्श्वनाथ से की जा सकती है। मंदिर की पार्श्ववर्ती वेदिका की सं. १९५२ की दो अन्य ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्तियों में आसन पर आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का लांछन अर्धचन्द्र बना है। सं. २०३० (१९७३ ई.) की ध्यानस्थ तीर्थंकर मूर्ति की पीठिका पर अंकित सिंह - लांछन के आधार पर मूर्ति की पहचान २४ वें तीर्थंकर महावीर से की जा सकती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काशी में लगभग छठी से २०वीं शती ई. के मध्य जैन मूर्तियों के निर्माण की अविरल परम्परा चलती रही। वर्तमान मंदिरों की जैन मूर्तियां १० वीं से २० वीं शती ई. के मध्य की हैं जिनमें अधिकांशतः तीर्थंकरों का अंकन हुआ है। सुपार्श्वनाथ और पार्श्वनाथ की जन्मस्थली होने के कारण काशी से इन तीर्थंकरों की सर्वाधिक मूर्तियां मिलती हैं। इन तीर्थंकरों के शीर्षभाग में सामान्यतः पांच या सात सर्पफणों के छत्र दिखाये गये हैं। तीर्थंकर मूर्तियों में कुछ अपवादों को छोड़कर सामान्यतः यक्ष - यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। भदैनी के सुपार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में सुपार्श्वनाथ के मातंग -यक्ष और काली-यक्षी का अंकन प्राचीन शास्त्रीय परम्परा से निर्दिष्ट है।

११- प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३०; प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६१

१२- सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३५; प्रतिष्ठातिलकम् ७.७. पृ. ३३३

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दशम अध्याय

धर्मेतर मूर्तियां

काशी में धर्म से इतर लोक जीवन और व्यवहार से सबंधित मूर्तियां भी अनेकशः बनीं जो विषय की विविधता एवं कला दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियां नवीं - १० वीं शती ई. से १९ वीं - २० वीं शती ई. के मध्य की हैं। सामान्यतया ये आकृतियां साधु अथवा योगी, उपासक एवं उपासिका, द्वारपाल, राजा - रानी, सामान्य स्त्री - पुरुष, काम संबंधी अंकन, अप्सराओं एवं सामान्य तथा काल्पनिक पशु आकृतियों से संबंधित हैं। शिल्पशास्त्रों में भी मंदिरों पर ऐसी आकृतियों के निर्माण के संदर्भ प्राप्त होते हैं। ऐसी आकृतियां मंदिरों के खंडित अंश या सुरक्षित मंदिरों के विभिन्न भागों पर उत्कीर्ण हैं। मंदिरों के अतिरिक्त गंगा के किनारे विभिन्न घाटों पर भी स्वतंत्र देवकुलिकाओं में ऐसी मूर्तियां देखी जा सकती हैं।

मूर्तियों में सबसे अधिक संख्या साधु या योगी आकृतियों की है। साधु आकृतियों को विभिन्न मुद्राओं में अथवा विभिन्न क्रियाओं में संलग्न दिखाया गया है। साधु आकृतियों को देखने से स्पष्ट है कि ये किसी एक सम्प्रदाय से नहीं वरन् अलग - अलग सम्प्रदायों से संबंधित हैं। इस बात की पुष्टि उनकी भिन्न - भिन्न केश - सज्जा और वस्त्रों से होती है। कुछ साधु आकृतियों के केश लम्बे अथवा सामान्य जटा वाले हैं, तो कुछ मुण्डित मस्तक और कुछ टोपधारी हैं। कुछ के चेहरे पर लम्बी दाढ़ी है। इसी प्रकार कुछ आकृतियां मात्र कौपीन धारण किये हुए हैं तो कुछ बाघम्बरधारी हैं और कुछ मृगचर्म ओढ़े हैं। कुछ साधु आकृतियों को धोती पहने भी दिखाया गया है। कुछ आकृतियों के माथे पर एक विशेष प्रकार का तिलक है जो उनके वैष्णव सम्प्रदाय से संबंधित होने का सूचक है। इसी प्रकार कुछ के कानों में कुंडल है जो संभवतः नाथ सम्प्रदाय से संबंधित जान पड़ती हैं। कुछ साधु आकृतियां वीणा बजाते (दुर्गा मंदिर, रामनगर), कुछ सारंगी अथवा ढोल बजाते (रघुराजेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट), माला जपते (दुर्गा मंदिर, रामनगर एवं रघुराजेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट), कुछ साधनारत (लक्ष्मी - नारायण मंदिर, भोंसलाघाट) और कुछ हाथ ऊपर उठाये योग की मुद्रा में (त्र्यम्बकेश्वर महादेव मंदिर, बड़ादेव) सामान्य रूप से बैठी (कामेश्वर महादेव मंदिर, मत्स्योदरी) अथवा दंड पर एक हाथ रखे ध्यान में दिखायी गयी हैं। कपिलेश्वर महादेव मंदिर (कपिलधारा) से एक ऐसी आकृति मिली है जिसके एक हाथ में माला, मस्तक पर जटाजूट तथा मुकुट, गले में हार तथा हाथ और पैरों में कड़े हैं। साधु अथवा योगी आकृतियों में कुछ आकृतियां आचार्यो की जान पड़ती हैं जिनमें आचार्यो को उपदेश देने की मुद्रा में दिखाया गया है। ऐसी आकृतियों के साथ हाथ जोड़े भक्तगणों की आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। आचार्य आकृतियों के निकट आधार (स्टैंड) पर जलपात्र भी दिखाया गया है (लक्ष्मी - नारायण मंदिर, भोंसलाघाट, दुर्गा मंदिर, रामनगर)। आचार्यों को अभय एवं वरदमुद्रा में भी बनाया गया है (कामाख्या मंदिर, कमच्छा)। एक आचार्य आकृति यज्ञ करते हुए उत्कीर्ण है जो हवनकुण्ड में समिधा डाल रही है। आचार्य के पीछे तथा आसन के सम्मुख हाथ जोड़े आकृतियां खड़ी हैं। दूसरी मुण्डित - मस्तक पद्मासीन आकृति ज्ञानमुद्रा तथा वरदमुद्रा में प्रदर्शित है। आचार्य स्वरूप की ही एक आकृति (संभवतः धन्वन्तरि) में आसन पर बैठे धन्वन्तरि को खरल में कोई औषधि घोटते हुए दिखाया गया है।

मंदिरों से कुछ द्वारपालों की आकृतियां भी प्राप्त हुई हैं जिन्हें दंड लिये या अन्य आयुधों के साथ बनाया गया है। इनमें से १२ वीं शती ई. की एक आकृति मोक्षेश्वर मंदिर (अवड़े ग्राम) से प्राप्त हुई है। मंदिर के प्रवेशद्वार पर उत्कीर्ण प्रस्तुत आकृति द्विभंग में संभवतः दण्ड लिये खड़ी है। मस्तक पर जटा और जांघ पर सुन्दर वस्त्र का अंकन हुआ है। द्वारपाल के निकट एक स्त्री आकृति खड़ी है। १२ वीं शती ई. की एक दण्डधारी द्वारपाल आकृति सोरईया महादेव मंदिर (भैरवनाथ) से भी प्राप्त हुई है। १३ वीं - १४ वीं शती ई. की एक द्वारपाल आकृति स्वर्लीनेश्वर मंदिर (प्रहलादघाट) से मिली है। इसमें कन्धे पर दंड रखे द्वारपाल के मस्तक पर भारी गोल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जूड़े का अंकन हुआ है। द्वारपाल के समीप ही दाहिने हाथ में पात्र लिए एक स्त्री की भी आकृति उत्कीर्ण है जिसके मस्तक पर द्वारपाल के समान केश - सज्जा है। रामनगर के दुर्गा मंदिर के प्रवेशद्वार पर भी द्वारपाल आकृति बनी है। धोती, उत्तरीय, मुकुट तथा अन्य आभूषणों से सज्जित एक ओर की आकृति चतुर्भुज है जिसके करों में जलपात्र, शंख, पद्म तथा दण्ड शोभित हैं जो वैष्णव द्वारपाल के लक्षण हैं। दूसरी ओर की चतुर्भुज आकृति के करों में भी यही आयुध हैं किन्तु उनका क्रम बदल गया है। उसके करों में क्रमशः दण्ड, पद्म, शंख और जलपात्र प्रदर्शित हैं। लक्ष्मी - नारायण मंदिर, भोंसलाघाट से जलपात्र तथा दण्डधारी द्वारपाल की एक आकृति मिली है।

कुछ उपासिका आकृतियां भी प्राप्त हुई हैं जिनमें उपासिकाओं को हाथ जोड़कर बैठे दिखाया गया है। ऐसी उपासिका आकृतियां चिन्ताहरण गणेश मंदिर (आदिकेशवघाट) एवं नारकेश्वर मंदिर (त्रिलोचनघाट) से प्राप्त हुई हैं। स्वतंत्र रूपवाली आकृतियों में बहंगी लिये एक ऐसी आकृति भी प्राप्त हुई है जिसमें बहंगी में मुखाकृतियां दिखाई गई हैं। यह दृश्य श्रवण कुमार के कथा प्रसंग से भी संबंधित हो सकता है। प्रस्तुत उदाहरण, शिव मंदिर (अवड़े ग्राम) से प्राप्त हुआ है। कपिलेश्वर मंदिर (१६५५ ई., कपिलधारा) और रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट) से कीचक की भी कुछ आकृतियां मिली हैं।

राजा - रानी की भी कुछ आकृतियां मिली हैं जिनमें राजा - रानी को हाथी पर सज्जित हौदे में बैठकर जाते दिखाया गया है। गज आकृति झूल एवं आभूषणों से सज्जित है। दुर्गा मंदिर के एक ऐसे उदाहरण में केवल राजा की आकृति ही गज पर हौदे में बैठी है। सामने महावत की और पीछे हाथ जोड़े सेवक की आकृतियां बनी हैं। सामने महल का दृश्य है। संभवतः यह राजा के महल में आगमन का दृश्य है। दुर्गा मंदिर से ही एक ऐसी आकृति भी मिली है जिसमें सिंहासन पर बैठे राजा को चार सेवक उठा कर ले जा रहे हैं। राजा संभवतः पूजा के लिये जा रहा है जिसके हाथ में जलपात्र एवं घण्टी है। राजा की एक आकृति लक्ष्मी - नारायण मंदिर (भोंसलाघाट) से भी प्राप्त हुई है। यहां छत्रधारी राजा का पैर पकड़े एक सेवक आकृति प्रदर्शित है। रघुराजेश्वर मंदिर (भोंसलाघाट) के एक उदाहरण में हाथी पर रखे हौदे में राजा - रानी दोनों बैठे हैं। उनके पार्श्वों में चामरधारिणी एवं संगीत - वाद्य बजाती आकृतियां भी बनी हैं।

रामनगर के दुर्गा मंदिर पर मल्लयुद्ध का एक दृश्य भी उत्कीर्ण है। ऊपर - नीचे क्रम से आमने - सामने पहलवानों की दो - दो आकृतियां बनी हैं जो मल्लयुद्ध की मुद्रा में हाथ उठाये तैयार खड़ी हैं। चारों आकृतियां कौपीनधारी हैं। इसी मंदिर से एक असुर की मानव के कन्धे पर बैठी आकृति भी प्राप्त हुई है। चतुर्भुज एवं शृंगधारी आकृति के करों में खड्ग, कैंची, खेटक (?) एवं शिरस् प्रदर्शित हैं। दुर्गा मंदिर से कुछ काल्पनिक आकृतियां भी प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक मेषमुखी और दूसरी वराहमुखी मानव आकृतियां हैं। वराहमुखी आकृति सिंह पर आरूढ़ है जिसके करों में खड्ग, खेटक, वरद द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार कुछ सैनिकों की आकृतियां (लक्ष्मी - नारायण मंदिर) भी प्राप्त हुई हैं जिन्हें खड्ग, खेटक के साथ दिखाया गया है।

सामान्य स्त्री - पुरुष आकृतियों को बालक के साथ खड़े अथवा अश्व पर सवार दिखाया गया है। कुछ में पुरुष या स्त्री के हाथ में जलपात्र भी प्रदर्शित है। स्त्री - पुरुष आकृतियों को नृत्य करते हुए और संगीत वाद्य बजाते हुए भी बनाया गया है। १२ वीं शती ई. का एक सुन्दर उदाहरण अवड़े ग्राम के नागनाथ मंदिर से मिला है। ये संगीतरत आकृतियां गर्भगृह के वितान पर बनी हैं। नृत्य करती पुरुष आकृतियों के उदाहरण शीतला मंदिर (त्रिलोचन) से भी प्राप्त हुए हैं।

पशु आकृतियों में कुछ काल्पनिक पशुओं के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं। शीतला मंदिर (प्रहलादघाट) से एक सिंह - व्याल की आकृति मिली है जो आक्रामक - मुद्रा में बनी है। व्याल आकृति के पैरों से एक आकृति लटकी हुई है जिसकी ओर आक्रामक - मुद्रा में सिंह मुख बना है। दुर्गा मंदिर (रामनगर) में गज एवं सिंह आकृतियां मंदिर के चारों ओर पंक्ति में बनी हुई हैं। ये आकृतियां पर्याप्त अलंकृत रूप में बनाई गई हैं और शासक के शौर्य को व्यक्त करती हैं। एक सिंह आकृति को दो गज आकृतियों पर खड़े दिखाया गया है। सिंह का एक पैर गज की पीठ पर और दूसरा गज की शुण्ड पर है। लक्ष्मी - नारायण (भोंसलाघाट) मंदिर से एक सपक्ष सिंह की आकृति भी मिली है। अश्व की एक ऐसी सज्जित आकृति मिली है जिसके पार्श्व में दण्ड है। यह दृश्य अश्वमेध यज्ञ से संबंधित है।

काम शिल्प

काशी के मंदिरों से काम शिल्प के बहुत कम उदाहरण मिले हैं। पाषाण निर्मित दो उदाहरण राजघाट के शिव मंदिर से मिले हैं जबकि काष्ठ में बने कई उदाहरण समराजेश्वर मंदिर (नेपाली मंदिर - ललिताघाट) में देखे जा सकते हैं। इन उदाहरणों में पुरुष द्वारा स्त्री को काम क्रिया के लिए प्रशस्त करते, पुरुष को स्त्री के पयोधरों का स्पर्श करते और स्त्री को स्वयं को विवस्त्र करते, पुरुष का जननेन्द्रीय पकड़े तथा काम - क्रिया में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रत दिखाया गया है। इनमें से कुछ आकृतियां योग की मुद्राओं में कामरत दिखाई गई हैं। एक उदाहरण में झुकी हुई स्त्री के मस्तक से लिंग का स्पर्श कराती पुरुष आकृति का अंकन हुआ है। उल्लेखनीय है कि इनमें से कुछ उदाहरणों में दो स्त्रियों का एक साथ अंकन हुआ है चाहे वे सहायिका के रूप में वहां उपस्थित हैं अथवा काम - क्रिया के लिये। ऐसे उदाहरण खजुराहो की कला में भी देखे जा सकते हैं।

अप्सरा

अप्सरा आकृतियां सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति और नवयौवना मानी गई हैं। अप्सराओं को देवांगना, देवकन्या, सुरसुन्दरी तथा अलसकन्या नामों से भी सम्बोधित किया गया है। अप्सराओं को गन्धर्वों से संबंधित बताया गया है। वैदिक साहित्य में अप्सराओं के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। वायुपुराण और हरिवंशपुराण में इनके सात वर्ग बताये गए हैं और इन्हें दो वर्गों - दैविक तथा लौकिक में विभाजित किया गया है। काशीखण्ड में ३५ करोड़ अप्सराओं का उल्लेख मिलता है किन्तु केवल १०६० को ही प्रमुख बताया गया है। अप्सरायें चामर युक्त बताई गई हैं। विश्वनाथ मंदिर के उदाहरण में अप्सरा के पार्श्वों में स्थानक पुरुष आकृतियों का भी अंकन हुआ है। ललिताघाट की देवकुलिका में विवस्त्रजघना अप्सरा मूर्ति स्थित है। कपिलेश्वर मंदिर की अप्सरा आकृति का एक हाथ पार्श्व में बैठी आकृति के मस्तक पर दिखाया गया है। दूसरे पार्श्व में एक योगी तथा चामरधर आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। इसी प्रकार लोलार्ककुण्ड की सीढ़ियों के किनारे की भित्ति पर भी एक अप्सरा आकृति है जिसकी मुद्रा स्वाभाविक है और उसके कन्धे पर गोल जूड़ा प्रदर्शित है। इस मंदिर से १३ वीं - १४ वीं शती ई. का भी एक उदाहरण प्राप्त हुआ है। यह अप्सरा की आदमकद मूर्ति है जो परिचारिका के साथ खड़ी है। मूर्ति पर्याप्त खंडित है।

अप्सराओं के पुत्तली नाम से ज्ञात उदाहरण दुर्गा मंदिर (रामनगर), गंगा मंदिर (सिद्धेश्वरी), अमेठी शिव मंदिर (मणिकर्णिकाघाट), शिव मंदिर (पीताम्बरपुरा), नन्देश्वर महादेव मंदिर (त्रिलोचन) एवं रामेश्वर मंदिर (विश्वनाथगली) से प्राप्त हुए हैं। सामान्यतया इन सभी उदाहरणों में पुत्तलियों को मंदिर के वरण्ड भाग पर बनाया गया है। ये आकृतियां विभिन्न संगीत वाद्यों को बजाती हुई बनाई गई हैं जो इनके संगीत से सम्बद्ध होने का प्रमाण हैं। पुत्तलियों को वीणा, मंजीरा, ढोल, सारंगी, तुरही, दुकड़िया एवं बांसुरी जैसे वाद्यों को बजाते हुए दिखाया गया है (चित्र ६४-६५)। कुछ पुत्तलियां नृत्य की आकर्षक मद्राओं में भी उत्कीर्ण हैं। कुछ अंकधारिणी पुत्तलियां भी प्राप्त हुई हैं जिन्हें गोद में बालक लिये बनाया गया है। प्रायः ये सभी पुत्तलियां १८ वीं - १९ वीं शती ई. की वेशभूषा में लंबा चोगा (राजस्थानी), कसा पायजामा और ओढ़नी धारण किये हुए हैं। विभिन्न आभूषणों के साथ कुछ के माथे पर राजस्थानी बोड़ला और कुछ के मस्तक पर मुकुट और नाक में नथ देखी जा सकती है। संभवतः ये आकृतियां राजस्थानी शिल्पकारों द्वारा निर्मित हैं। मणिकर्णिका के शिव मंदिर पर बनी आकृतियों के जोधपुर के शिल्पियों द्वारा निर्माण किये जाने से भी इसकी पुष्टि होती है। यही कारण है कि उनमें राजस्थानी वेश - भूषा द्रष्टव्य है।

अप्सराओं का नृत्य और संगीत से विशेष संबंध है। नृत्य और संगीत से अप्सरायें देवताओं का मनोरंजन करती हैं। शिल्पशास्त्रों में अप्सराओं के मुख के भावों और हाथ की मुद्राओं के आधार पर उनके कई प्रकार उल्लिखित हैं। संस्कृत साहित्य में संभवतः इन्हीं अप्सराओं का सन्दर्भ पुत्रिका या पुत्तली नाम से भी प्राप्त होता है जो अप्सराओं से पर्याप्त समानता रखती हैं। शिल्पशास्त्रों में अप्सरा या देवांगना आकृतियों के मंदिर की जंघा अथवा मण्डोवर भाग पर उत्कीर्ण करने का भी उल्लेख मिलता है। संभवतः यही कारण है कि मध्यकालीन मंदिरों पर हमें अप्सरा आकृतियों के उदाहरण बहुतायत में प्राप्त होते हैं। खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क, हलेबिड के मंदिर अप्सरा मूर्तियों की दृष्टि से विशेषतः उल्लेखनीय हैं।

काशी में अप्सरा आकृतियों के स्वतंत्र और मंदिरों पर उकेरे दोनों प्रकार के उदाहरण प्राप्त हुए हैं। मंदिरों पर बने अधिकांश उदाहरण १८ वीं - २० वीं शती ई. के हैं। ये उदाहरण स्थानीय भाषा में पुत्तली नाम से ज्ञात हैं। १० वीं -११ वीं शती ई. की अप्सरा मूर्ति का एक सुन्दर उदाहरण तिलभाण्डेश्वर मंदिर से प्राप्त हुआ है। यह उदाहरण मंदिर परिसर में वृक्ष के नीचे एक देवकुलिका में स्थित है। प्रस्तुत उदाहरण में अप्सरा को सुन्दर त्रिभंगी - मुद्रा में दिखाया गया है। अप्सरा का दाहिना हाथ पार्श्व में खड़े अनुचर के कन्धे पर स्थित है और बायां वृक्ष की डाली पकड़े हुए है। अनुचर आकृति हाथ जोड़े खड़ी है। ११वीं - १२ वीं शती की अन्य अप्सरा आकृतियां नारकेश्वर मंदिर (त्रिलोचनघाट), विश्वनाथ मंदिर (विश्वनाथगली), कपिलेश्वर मंदिर (कपिलधारा) तथा ललिताघाट स्थित एक देवकुलिका से प्राप्त हुई हैं। नारकेश्वर मंदिर की मूर्ति तिलभाण्डेश्वर मंदिर के उदाहरण से मिलती - जुलती है जिसमें अप्सरा द्विभंग में खड़ी है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

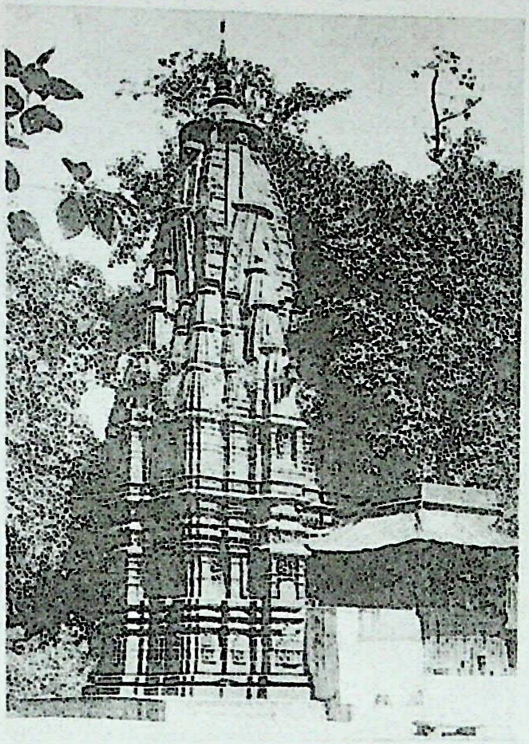

१- कर्दमेश्वर मंदिर,
१२वीं शती, कंदवा

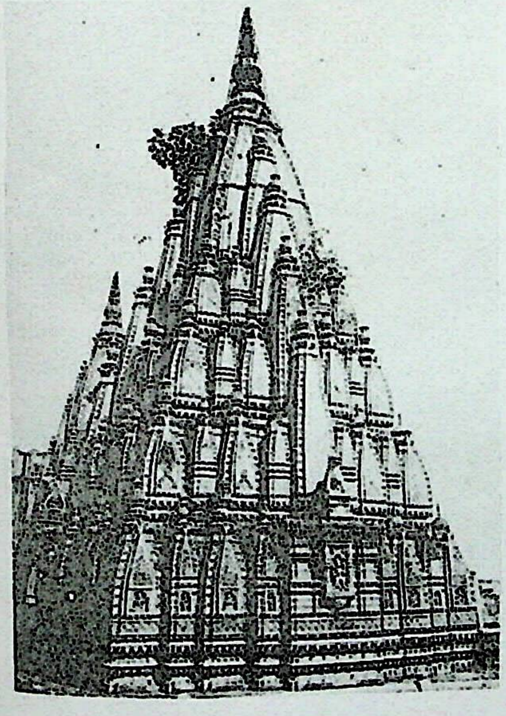

२- लक्ष्मी -नारायण मंदिर, १७९५ई०, भोंसलाघाट

३- शिव मंदिर, १९वीं शती, गोदौलिया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

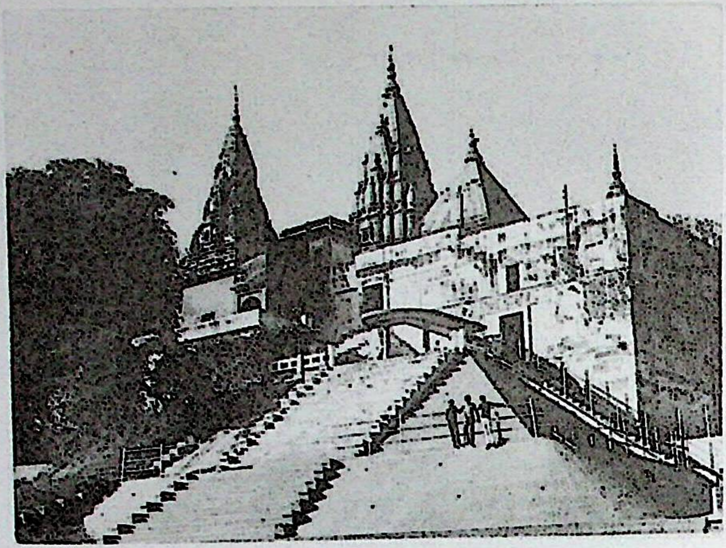

४- आदिकेशव मंदिर, १९वीं शती, आदिकेशवघाट

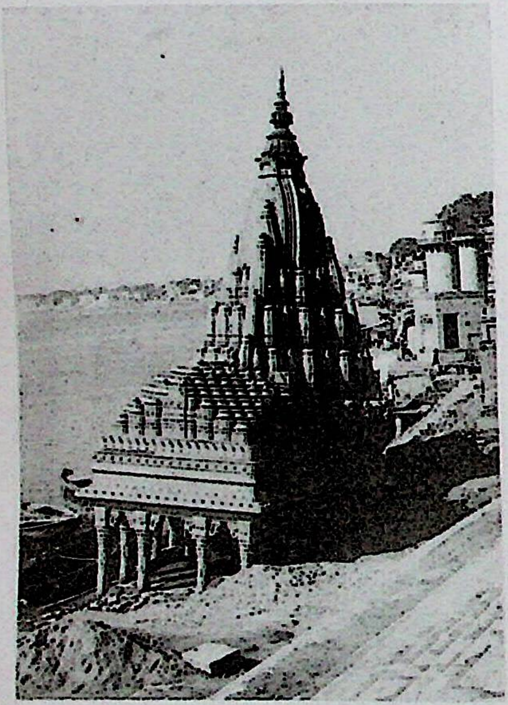

५- शिव मंदिर, १९वीं शती, मणिकर्णिकाघाट

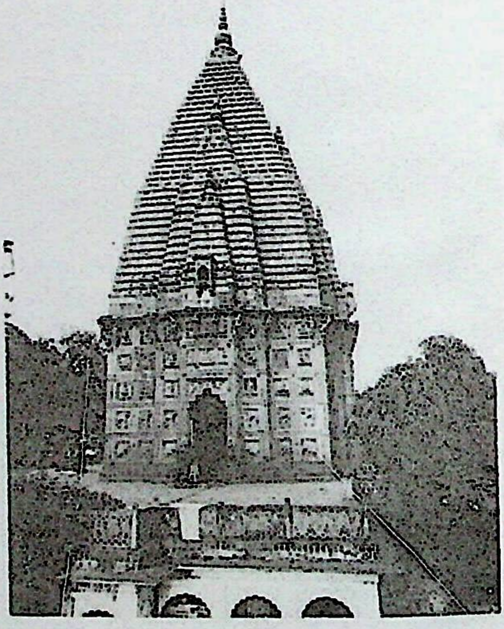

६- दुर्गा मंदिर, १८०० ई०, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

७- समराजेश्वर मंदिर, १९वीं शती, ललिताघाट

८- एकमुख शिवलिंग, ५वीं - ६ठी शती, देहलीविनायक

९- ज्योतिर्लिंग, ११वीं - १२वीं शती, ललिताघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०- पंचमुख शिवलिंग, १८वीं शती, त्रिलोचन महादेव मंदिर, मत्स्योदरी

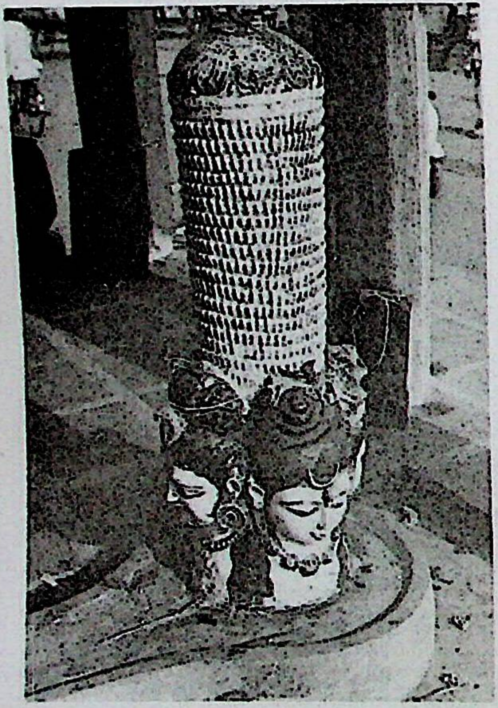

११- चतुर्मुख सहस्त्र शिवलिंग, १९वीं शती, राजघाट मार्ग

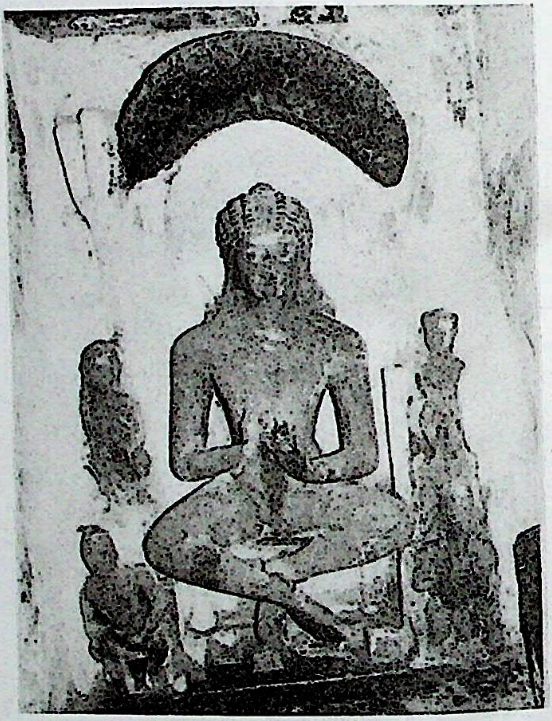

१२- दक्षिणामूर्ति शिव, गुप्तकाल, तिलभाण्डेश्वर मंदिर, तिलभाण्डेश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१३- उमा-महेश्वर, ल० सातवीं शती, लोलार्ककुण्ड

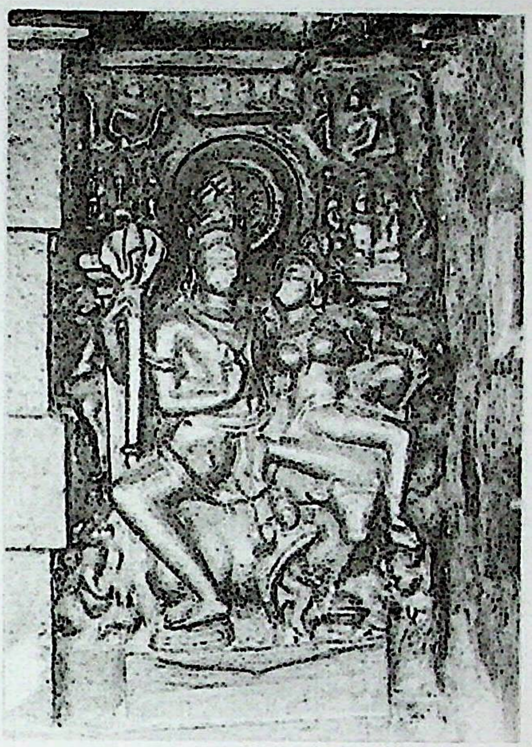

१४- उमा-महेश्वर, १२वीं शती, कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

१५- कल्याण - सुन्दर,
१२वीं शती, देवकुलिका,
मणिकर्णिकाघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१६- अन्धकारि, १३वीं - १४वीं शती, कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

१७- भैरव, १९वीं शती, समराजेश्वर मंदिर, ललिताघाट

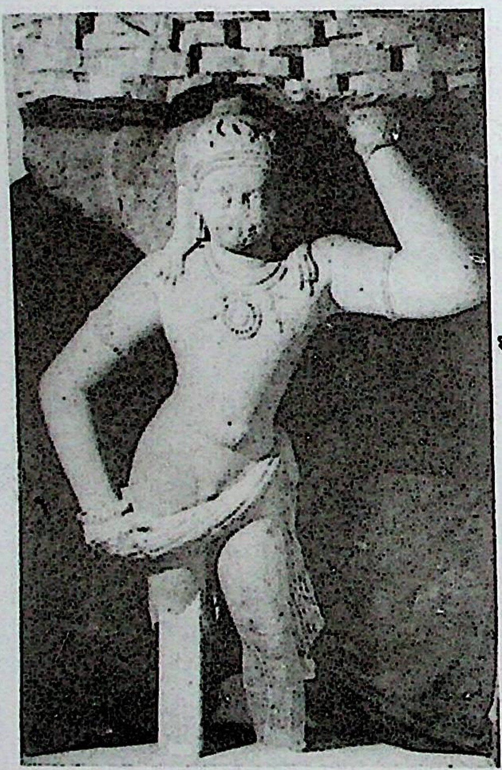

१८- गोवर्धनधारी कृष्ण,
गुप्तकाल, बकरियाकुण्ड

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१९- विष्णु, ल०सातवीं शती, लोलार्केश्वर मंदिर, लोलार्ककुण्ड

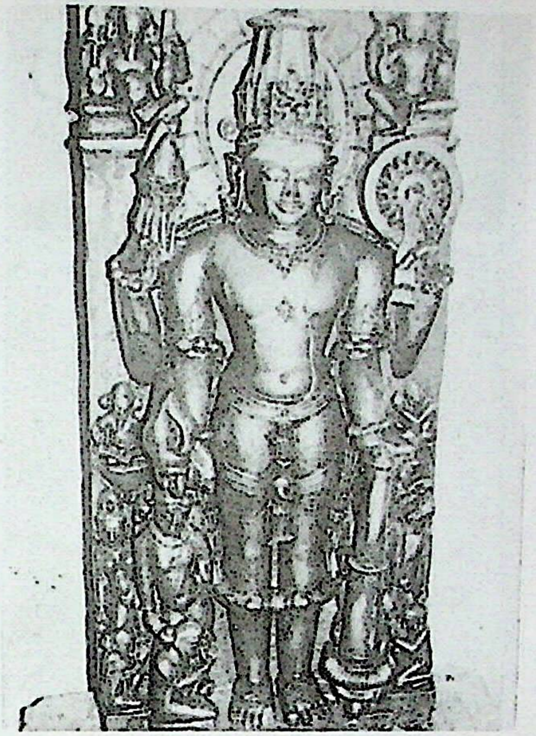

२०- विष्णु, ११वीं शती, राम मंदिर, मानसरोवर

२१- विष्णु, ११वीं शती,
शुष्केश्वर मंदिर, शुकुलपुरा,
संप्रति भारत कला भवन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२२- विष्णु, ११वीं - १२वीं शती, द्वारिकाधीश मंदिर, शंकुधारा

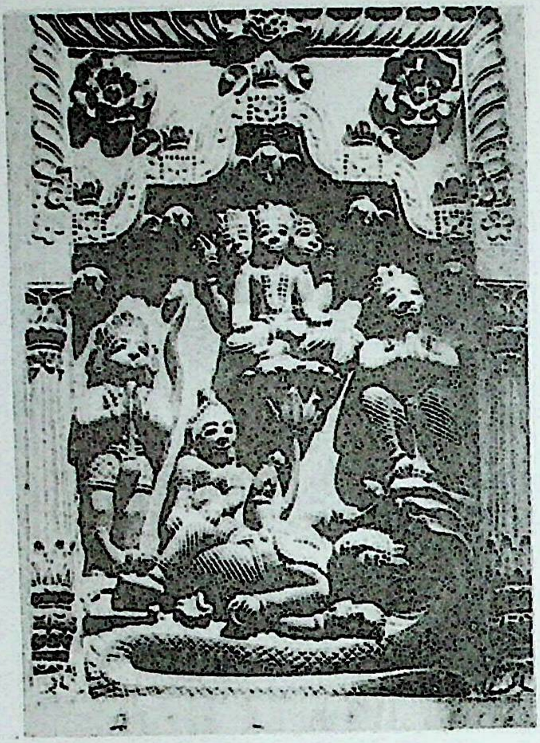

२३- शेषशायी विष्णु, १९वीं शती, रघुराजेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट

२४- शेषशायी विष्णु,
१८००ई० दुर्गा मंदिर, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२५- विष्णु (मत्स्यावतार), दुर्गा मंदिर, रामनगर

२६- भूवराह, दुर्गा मंदिर, रामनगर

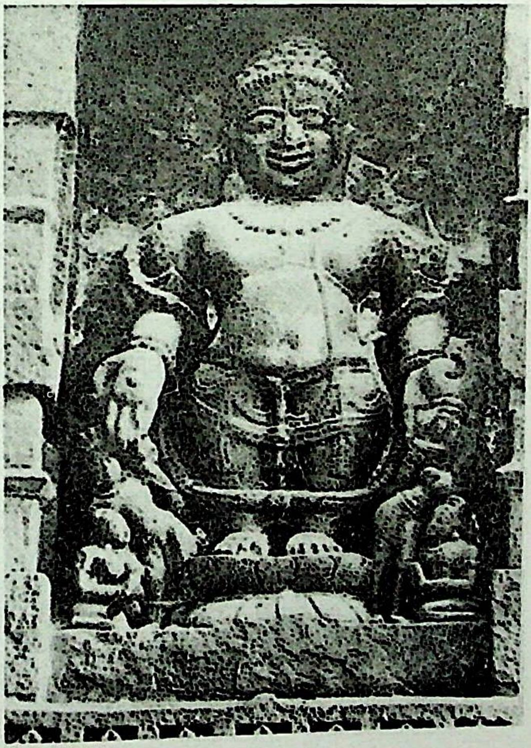

२७- वामन विष्णु,
१३वीं शती, कर्दमेश्वर मंदिर,
कंदवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

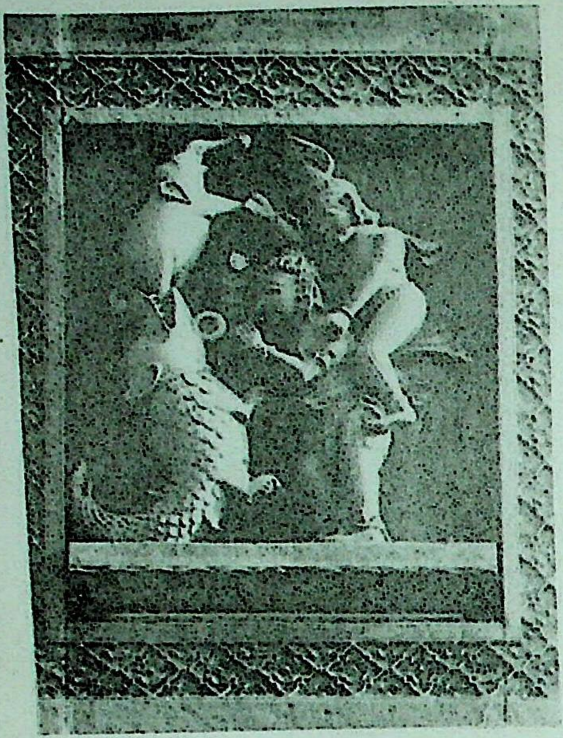

२८- गजेन्द्रमोक्ष, दुर्गा मंदिर, रामनगर

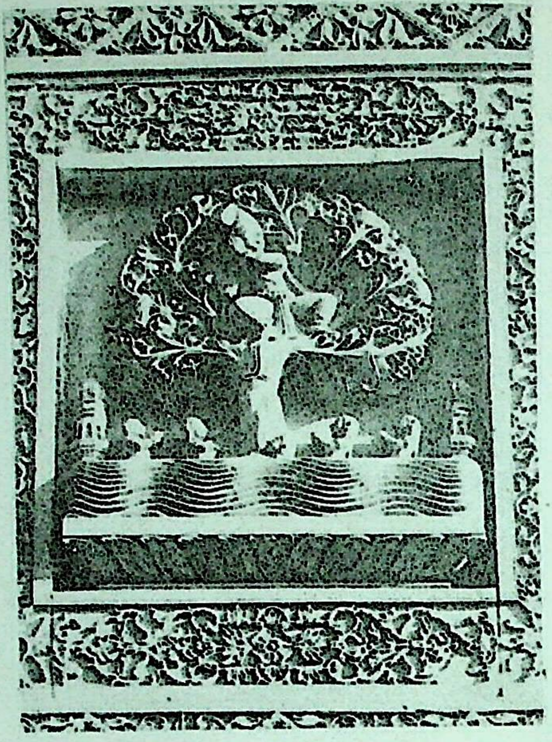

२९- चीरहरण, दुर्गा मंदिर, रामनगर

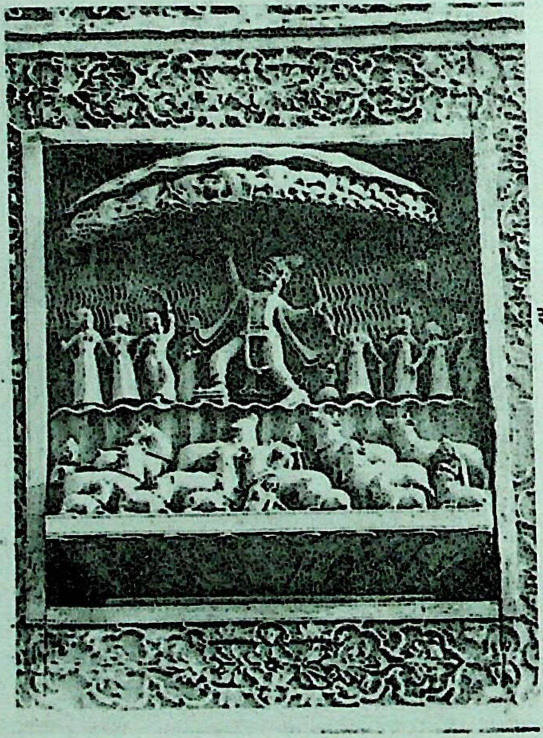

३०- गोवर्धनधारी कृष्ण, दुर्गा मंदिर, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

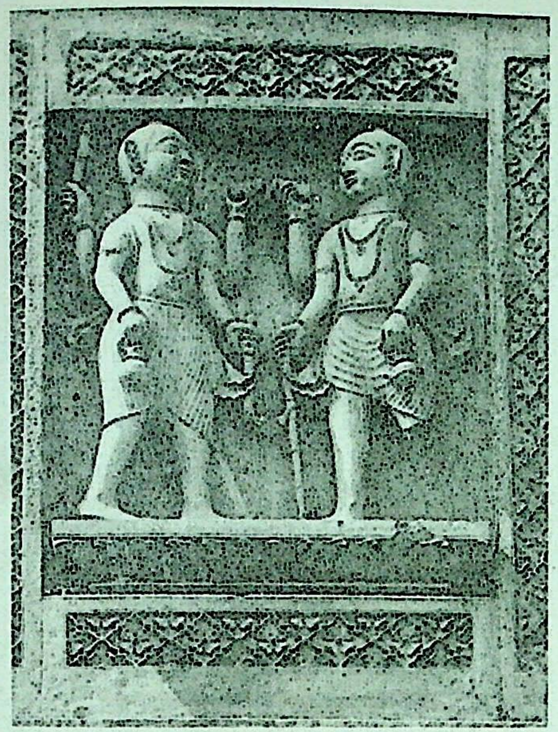

३१- नर - नारायण, दुर्गा मंदिर , रामनगर

३२- बलराम द्वारा यमुनाकर्षण, दुर्गा मंदिर, रामनगर

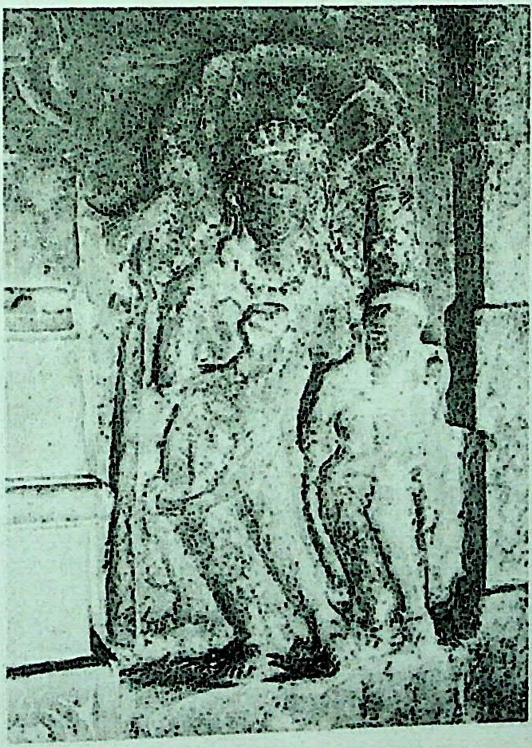

३३- बलराम - रेवती, १२वीं शती, कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

३४- परशुराम - सहस्रबाहु युद्ध, दुर्गा मंदिर, रामनगर

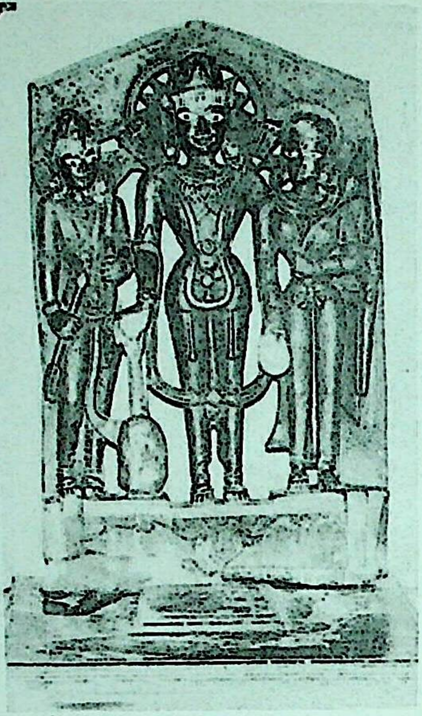

३५- राम-सीता-लक्ष्मण, ल० १५८२ ई०, कंगनवाली हवेली, पंचगंगाघाट

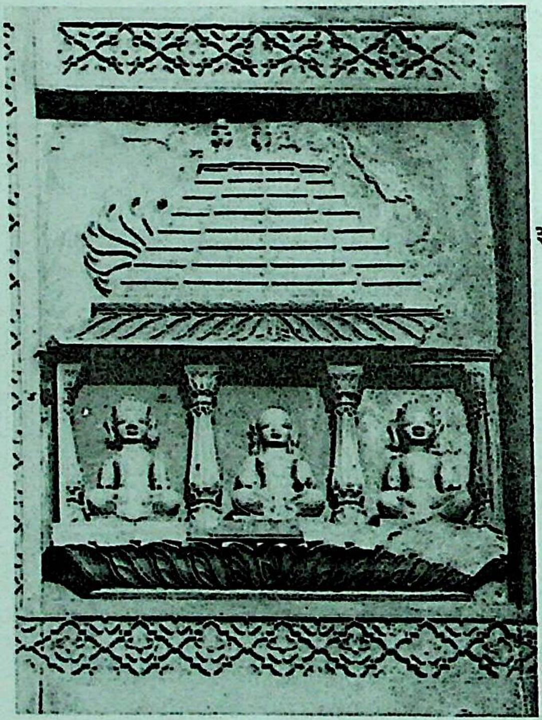

३६- बलभद्र - सुभद्रा - जगन्नाथ, दुर्गा मंदिर, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

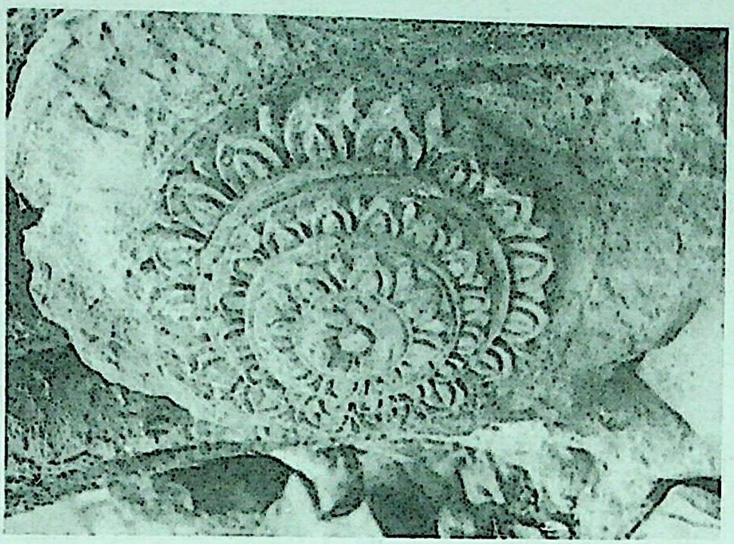

३७- आदित्य, १२वीं शती, सूर्यकुण्ड

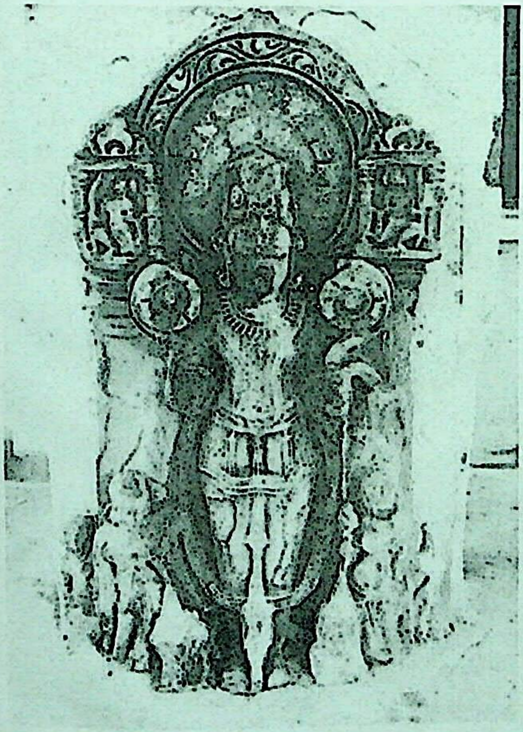

३८- सूर्य, १२वीं शती, विरूपाक्ष मंदिर, कंदवा

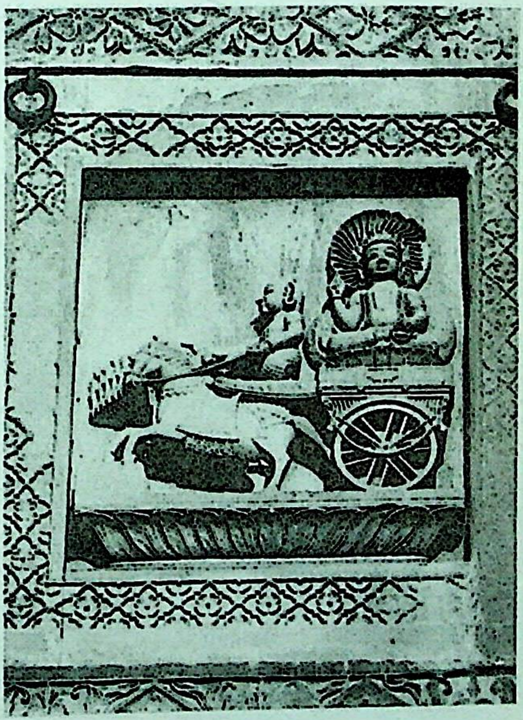

३९- सूर्य, दुर्गा मंदिर, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४०- सूर्य, २०वीं शती,
शिवमंदिर, आदित्यनगर

४१- पार्वती, सातवीं शती, लोलार्केश्वर मंदिर, लोलार्ककुण्ड

४२- महिषमर्दिनी, ११वीं शती, वाराणसी, संप्रति भारत कला भवन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

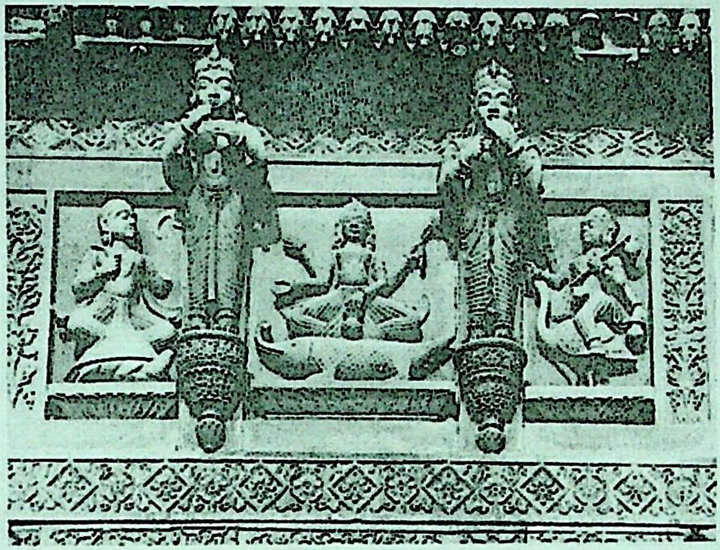

४३- यमुना - गंगा - सरस्वती, दुर्गा मंदिर, रामनगर

४४- नृत्त गणेश, १९वीं शती, कपिलेश्वर महादेव मंदिर, कपिलधारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

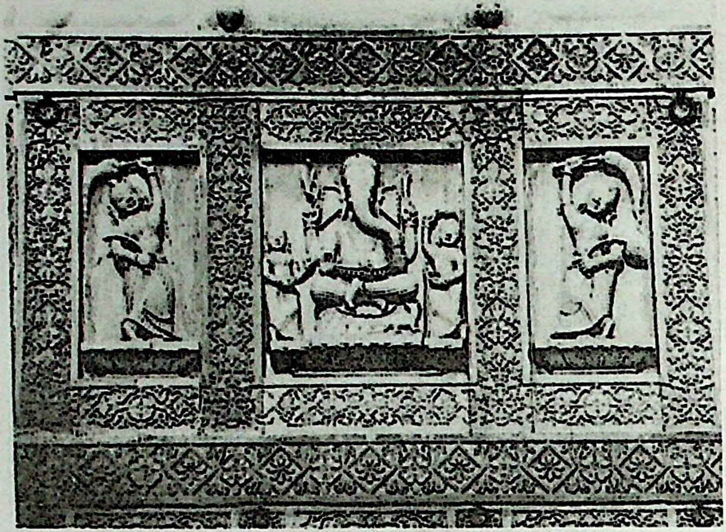

४५- गणेश, दुर्गा मंदिर, रामनगर

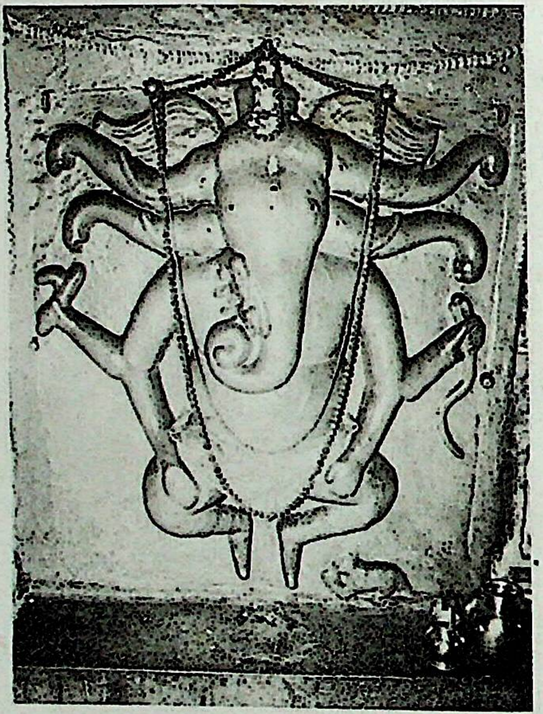

४६- हेरम्ब गणेश, १९वीं शती, पंचमुखी गणेश मंदिर, विश्वनाथगली

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४७- कार्त्तिकेय,५वीं शती,वाराणसी, संप्रति भारत कला भवन,वाराणसी

४८- कार्त्तिकेय, १९वीं शती, रामेश्वर मंदिर, विश्वनाथगली

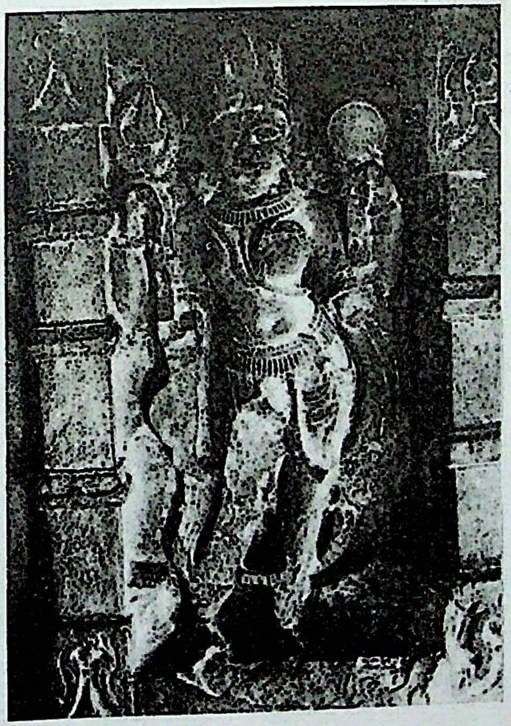

४९- अर्द्धनारीश्वर, १३वीं शती,
कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

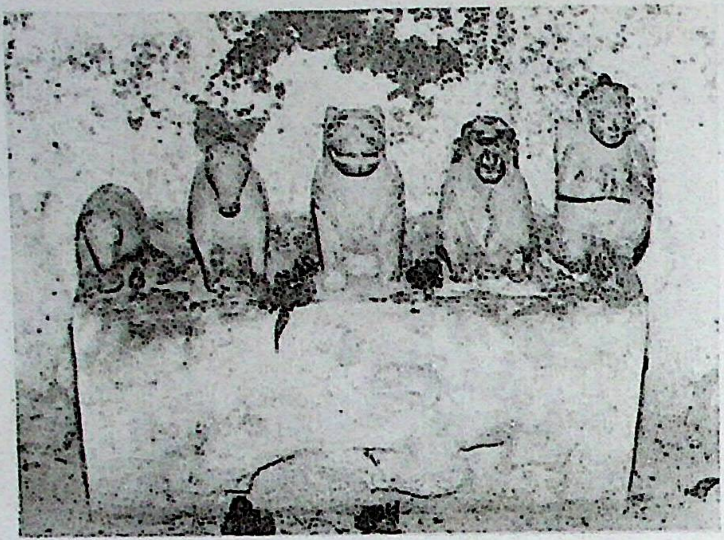

५०- पंचदेवपट्ट, १९वीं शती, पंचदेवता मंदिर, आदिकेशवघाट

५१- अग्नि, १२वीं शती, लोलार्ककुण्ड

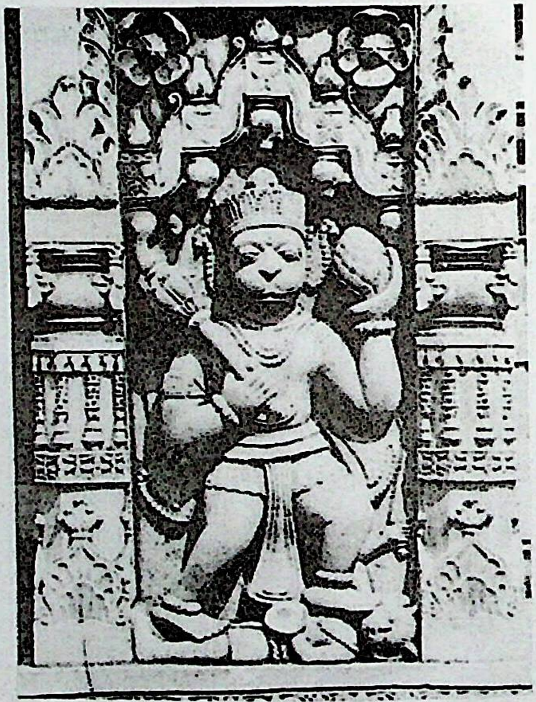

५२- हनुमान, १९वीं शती, रघुराजेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

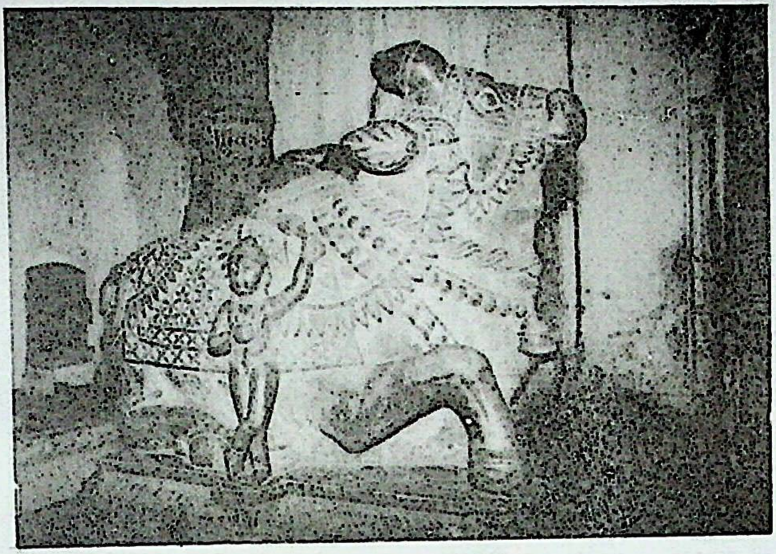

५३- नन्दी, १९वीं शती, रामेश्वर मंदिर, विश्वनाथगली

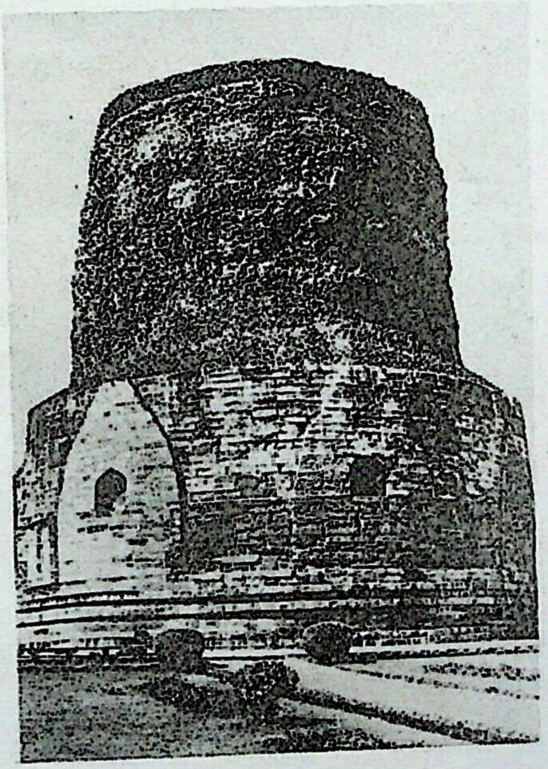

५४- धमेख स्तूप, गुप्तकाल, सारनाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

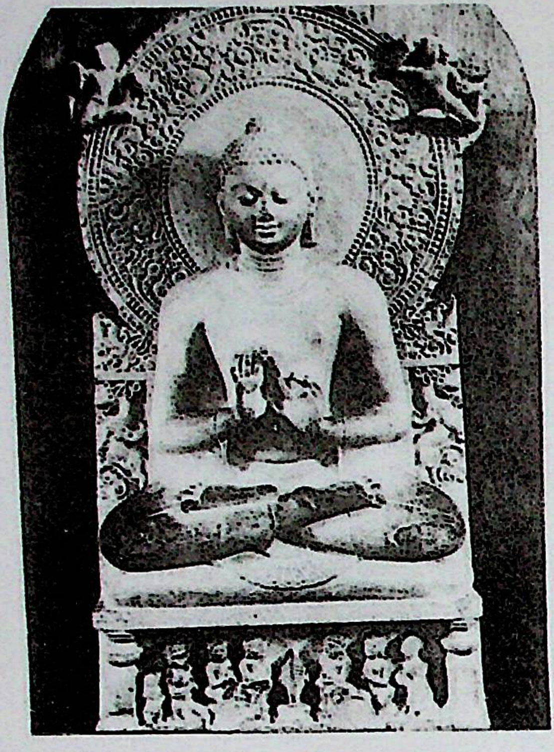

५५- बुद्ध (धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा), गुप्तकाल, सारनाथ

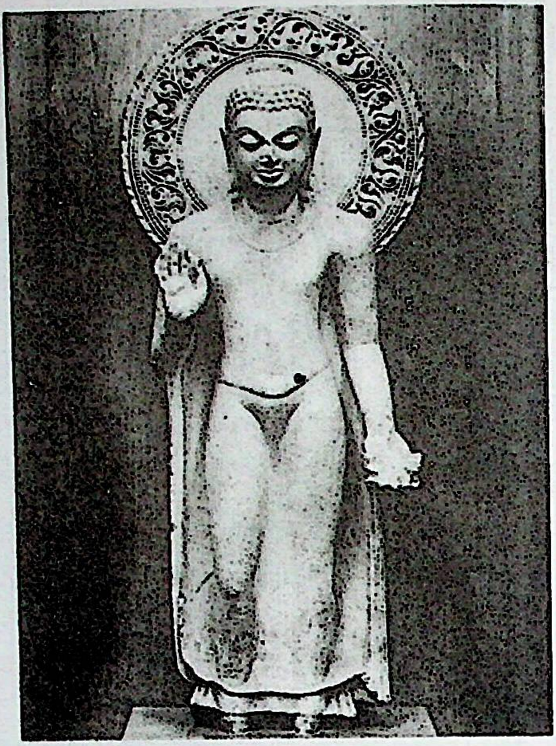

५६- बुद्ध, गुप्तकाल, सारनाथ

५७- नेमिनाथ, ल० सातवीं शती, राजघाट, संप्रति भारत कला भवन, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

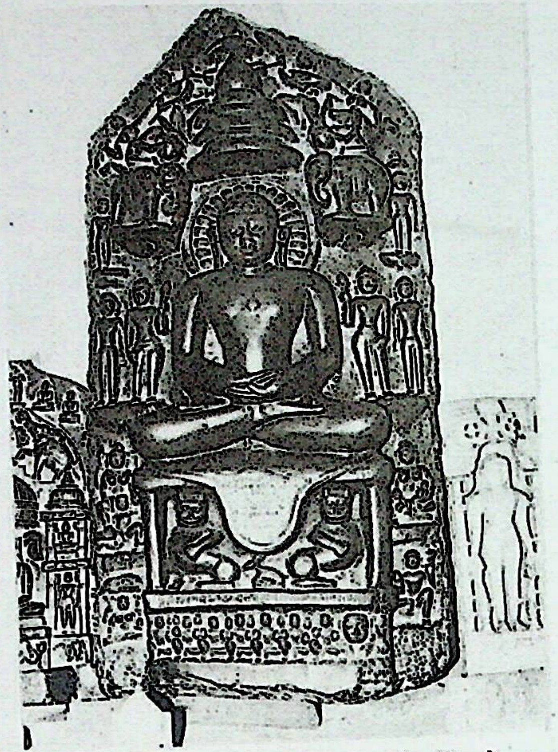

५८-ऋषभनाथ, ९८३ ई०, पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मंदिर, भेलूपुर

५९- नेमिनाथ, १०वीं शती, दिगंबर जैन मंदिर, भदैनी

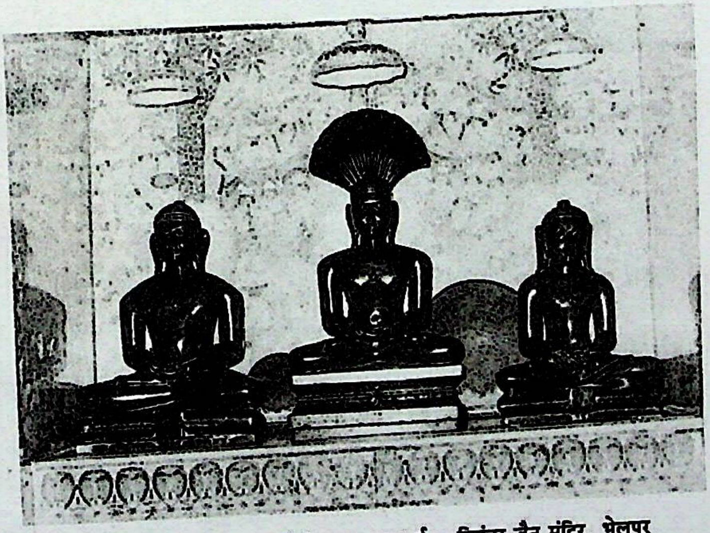

६०- पार्श्वनाथ एवं अन्य तीर्थंकर, १८६८ ई०, दिगंबर जैन मंदिर, भेलूपुर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

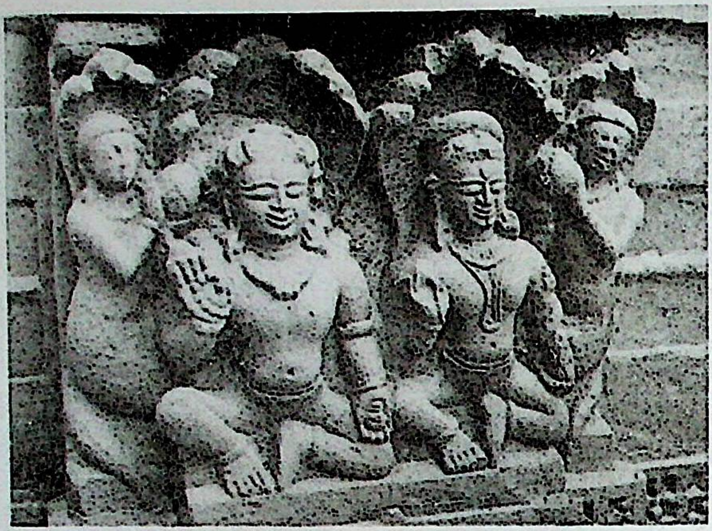

६१- नाग - नागी, १३वीं शती, कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

६२- नाग शिलापट्ट, १९वीं शती, रघुराजेश्वर मंदिर, भोंसलाघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

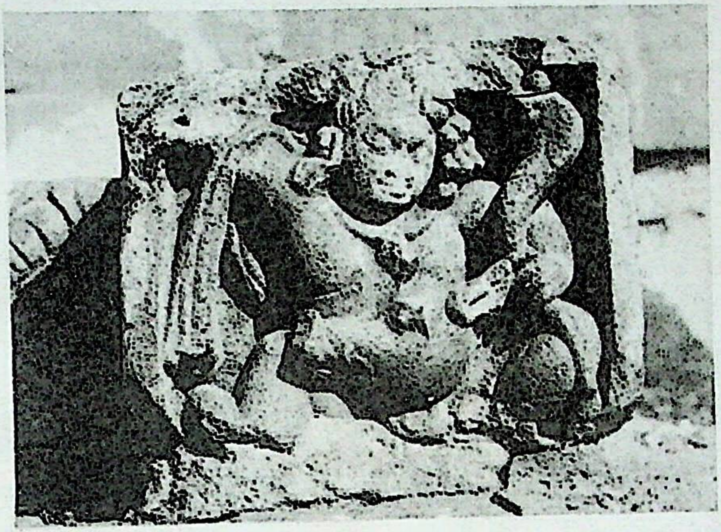

६३- शिवगण, गुप्तकाल (?), कर्दमेश्वर मंदिर, कंदवा

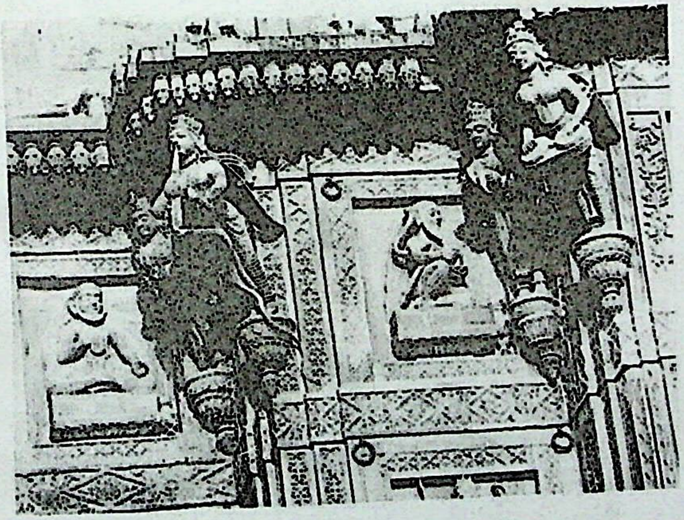

६४- पुत्तलियां, दुर्गा मंदिर, रामनगर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

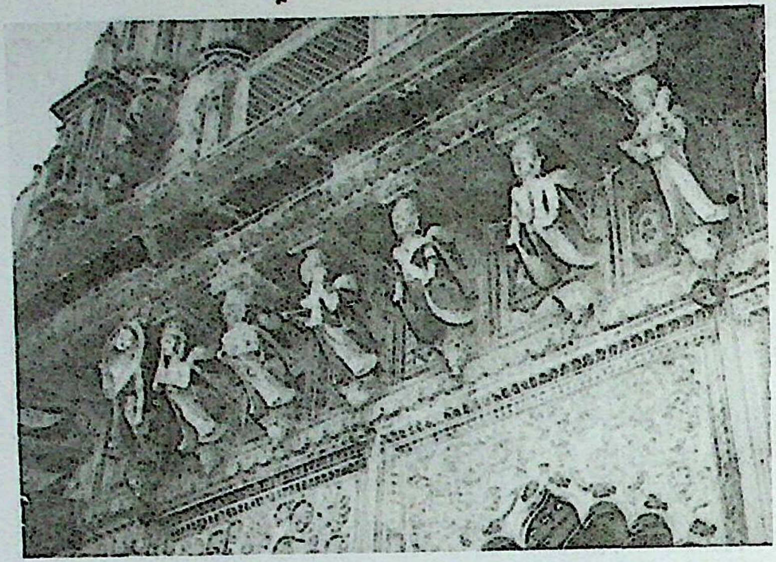

६५- पुत्तलियां, अमेठी शिव मंदिर, मणिकर्णिका

६६- काम अंकन, १९वीं शती, समराजेश्वर मंदिर, ललिताघाट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिला सांस्कृतिक समिति
वाराणसी

RATNA OFFSET LTD. DESIGN

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi